



। श्रेष्ठि देवचन्द्र लालभ्रातृ-जैनपुस्तकोद्धार-ग्रन्थाङ्कः ५१ ।

श्रीमद्भट्टारकश्रीविजयसेनसूरिप्रसादितपण्डितश्रीमच्छुभविजयगणिसङ्कलित-प्रश्नोत्तरमय-

## प्रश्नरत्नाकराभिधः श्रीसेनप्रश्नः ।



प्रसेधिका-श्रेष्ठि देवचन्द्र लालभ्रातृ जैनपुस्तकोद्धारकोशागारसंस्था-प्रसेधिकारकः-शाह नगीनभाई घेलाभाई जह्वेरी, अस्य कार्यवाहकः ।  
अयं ग्रन्थो मोहमयीपत्तने “मुम्बई वैभव” मुद्रणप्रासादे सर्व्हेटस ऑफ इंडिया सोसायटीज् बिल्डिंग, मेढर्ट रोड.

गिरगांव द्वारा मुद्रापितः प्रकाशितश्च स्वयं ।

श्रीवीरनिर्वाणात् २४४५.

विक्रमनृपस्य १९७५.

कार्दस्तस्य सन् १९१९.

प्रथमसमये प्रतय १०००. ]

निष्कय एकरूप्यकः ।

[ मुम्बय्याम्.

अस्य पुनर्मुद्रणाया सर्वेधिकारा एतद्भाण्डागारकार्यवाहकाणामायत्ताः स्थापिताः ।

All Rights Reserved by the Trustees of the Fund.

Printed by Chintaman Bakharam Deolo, at the Bombay Vaidhar Press, Servants of India Society's Building,  
Sandhurst Road, Girgaon, Bombay.

Published by Shah Nagunbhai Ghelabhai Javari, No 426 Javari Bazar, Office of Sheth D L J P. Fund,  
for Sheth Devchand Lalbhai Jain, Pustakoddhar Fund, Bombay

॥ अहंद्भयो नमः ॥

## ॥ प्रश्नोत्तरत्वाकराभिधानसेनप्रश्नस्य प्रस्तावना ॥

विदितमेतद्गर्हतानां विदुषां यदुत सर्वोऽपि संघस्तावत् चतुर्वर्णकीर्णोऽपि अव्याबाधसुखमयमध्यपदमभिलाषको मार्ग तस्य यथाशक्ति सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकमनुशीलयति, सम्यग्दर्शनाद्यात्मके च मार्गे तदैव स्यात् याथातथ्येन स्थैर्यं यदि न स्यात् जीवादिपदार्थबोधे शंकासंहाशन्यं, सति च तस्मिन् सम्यक्त्वस्य निर्मूलकापेक्षणेन सांशयिकमिथ्यात्वस्य भवप्रपञ्चमहीरुहबीजस्यैव प्रादुर्भावो झटिति, प्रादुर्भावे च मिथ्यात्वे कलिबीजे क सम्यग्ज्ञानकल्पवृक्षाक्षुरः क चाज्ञानावृते इवासज्ज्ञानावृते जीवसौधे सच्चारित्रनृपमीलनानन्दः, तथा च कोतस्य एवानाबाधः स्वभावानन्दः ? ततः सुष्ठूच्यते 'मूलं दारं पट्टाणं आहारो भायणं निही' अत एव सत्स्वपि निष्कलङ्कवाधामितज्ञानरत्नाकरश्रीमद्गुणभृत्प्रणीतेषु वाङ्मयेषु श्रीमद्भद्रबाहुस्वामिप्रभृतिश्रुतकेवल्यदिपूज्यतमेर्विततेषु शास्त्रसंदोहेषु सम्यक्त्वमोहनीयकर्मणुवेदनोद्भूतभव्यमनःशङ्कशङ्कुसमुद्धारस्यावश्यकत्वात् विनेने पूज्येः श्रीमद्विजयसेनसूरिन्द्रः प्रयासः, स च तादृशो नाभविष्यत् फलेग्रहिः यदि श्रीमन्तः शुभविवजया नासंग्रहीष्यन् तत्रभवदयिप्रश्नोत्तराणि, अत एव चास्याभिधा सेनप्रश्न इति प्रश्नोत्तररत्नाकर इति च, आद्यायाः कर्तृनामाङ्कितत्वात् पश्चिमायाश्च अभिधेयानुसारिनामत्वात्, प्रयतिते चैवं नहि सर्वाः शङ्काः शास्त्रोक्तीरनुसृत्यैव समाधातु शक्या इति यद्यपि बहुषु प्रश्नोत्तरेषु शास्त्रोक्तीरनुश्रित्य समाहितं तथापि अनेकत्र स्पष्टतथाविधशास्त्रोक्त्यसद्भावमालोक्य परम्परया केषुचित् स्थलेषु च स्वमनीषाप्रामात्रेणापि समाहित, तत एव अत्र क्वचित् कदाचित् स्यादनाभोगविलसितं नोदासितव्यं धीधनैः अनाभोगस्य छद्मस्थानां स्वाभाविकत्वात्, न चैवं सति नोपादेयोऽय ग्रन्थः कचन कचनानाभोगविलासादिति, यतः शास्त्रोक्तीः परम्परा चानुगम्य जिहितानामुत्तराणां सुतरामुपादेयेत्वात् नानाश्वासगन्धोऽपि तथाविधेषु स्थलेषु स्वमनीषोन्मेषेऽपि न तथाविधानां विषयश्रितां संभवत्यनाभोगविलसितता तथापि स्यात् क्वचित् कथंचित् क्षन्तव्यं धीधनैः न हि सत्पुरुषाश्चन्द्रे कुरङ्गं कलङ्कतया निश्चिन्वन्तोऽपि तदीयमौम्यमहिमवशीकृतान्तःकरणा विजहति विधूयमां अत्र तु कलङ्कसंभावन्येवैतत्परीहारो विहाय हासपोषं





। अहम ।

## । अथ श्रीसेनप्रश्ने साक्षीभूतग्रन्थाः ।

| नंबर | नाम                     | पत्रांक   | नंबर | नाम                   | पत्रांक                     |
|------|-------------------------|---|------|-----------------------|-----------------------------|
| १    | आवश्यकबृहद्ब्रह्मसूत्रः | १-८-१३-१५-८२-८९   | ८    | व्यवहारवृत्तिः        | ३                           |
| २    | प्रज्ञापनावृत्तौ        | २-६-६-७-९-१५-१८-१९-२०-२३-२८<br>३०-३५-५४-५५-५९-७९-८५-९२<br>१०३-१०३-१०४-११२-११२ | ९    | आवश्यकनिर्युक्तिः     | ३-१५-२४-४६-८०-८१-८५-९०      |
| ३    | तीर्थकल्पादिः           | २   | १०   | मगवतीवृत्तिः          | ३-५-६-७-९-११-१४-१४-१७-१९-२० |
| ४    | सामाचारी                | २-२२-५९-८०-१०६-१०६-१०८  |      |                       | २०-२५-३०-४२-४४-४४-४९-५०-५३  |
| ५    | जीवाभिगमवृत्तिः         | २-४-९-२४-३४-३४-५५-८३-८५-८६<br>१०३-१०३   |      |                       | ५५-५८-५९-७१-७४-७५-८२-८४-८९  |
| ६    | ऋषिदत्ताकथादिः          | २   |      |                       | ८९-९२-९९-१०३-१०३-११४        |
| ७    | आवश्यकवृत्तिः           | २-९-१९-२०-३२-३३-३७-४६-५५-५९<br>७१-७२-७२-८०-९६-१०९                             |      |                       | ३-४६-४७-७५-९५               |
|      |                         |   | ११   | कल्पकिरणावली          | ३                           |
|      |                         |   | १२   | कल्पसूत्रावचूरी       | ४                           |
|      |                         |   | १३   | पौषयविधिप्रकरण        | ४                           |
|      |                         |   | १४   | कल्याणकस्तोत्रं       | ४-९-१७-२४-३४-३९-५३-५३-९८    |
|      |                         |   | १५   | जम्बुद्वीपप्रज्ञप्तिः | १०३-११२                     |

| नं० | नाम                           | पत्रांक  |
|-----|-------------------------------|--|
| २८  | जिनभद्राणिष्कृतबृहत्संग्रहः ५ | ५-४५-५३-५६-५६-५२-८९  |
| २९  | क्षेमिण्डलवृत्तिः             | ५-८-१३-१३-१४-३२-३७-४४-५३-५९  |
| ३०  | श्राद्धविधिः                  | ७०-९०-९१-९५-१०४-१०५-११०  |
| ३१  | स्थानाङ्गसूत्रं               | ६-६-१९-३६-४८-७५-९०-९६-१०३-११४  |
| ३२  | दशैकालिकवृत्तिः               | ६-९-१९-८४-९७   |
| ३३  | पाक्षिकसूत्रवृत्तिः           | ६-८९   |
| ३४  | योगविधिः                      | ६-६०-७२  |
| ३५  | आवश्यकहारिभ्यां               | ७-२४-२६-४३-४६-४७-५२-८९-९५  |
| ३६  | योगशास्त्रवृत्तिः             | ७-१०-१७-१७-१८-१९-२७-४४-४८-५६-५२-५७-५९-७२-७७-८३-८३-८४-१०६-१०९-११३-११४ |
| ३७  | संघाचारवृत्तिः                | ७-६०   |
| ३८  | विहरमाणजिनैकविंशतिस्थानकं ७   |  |
| ३९  | जिनप्रभसूक्ततदीपावलिकाकल्पः ७ |  |

| नं० | नाम                        | पत्रांक   |
|-----|----------------------------|---|
| १६  | जम्बूद्वीपसंग्रहः          | ४-१०  |
| १७  | जम्बूद्वीपसमाप्तः          | ४   |
| १८  | उपदेशरत्नाकरः              | ४   |
| १९  | महानिशीथम्                 | ४ १९-२१-४३-४४-४४-५५-५७-५९-८४-९९-१०१                       |
| २०  | विचाराद्युतसंग्रहः         | ४-९-२०-५५-८२  |
| २१  | जीतव्यवहारः                | ४   |
| २२  | प्रवचनसारोद्धारवृत्तिः     | ५-७-२१-३५-४४-४७-५४-५९-६२-७६-८३-८५-८८-९०-९५-९५-१०२-१०६-१११ |
| २३  | बुद्धश्रीशत्रुघ्नसमाहारस्य | ५-५-४१-५८-९९  |
| २४  | शान्तिनाथचरित्रं           | ५-५३  |
| २५  | हेमवीरचरित्र               | ५-६४-५१-७८-९९-१०४   |
| २६  | स्तोत्रम्                  | ५   |
| २७  | समवसरणस्तोत्रम्            | ५   |

| नं० | नामानि  | पत्रांक            | नं० | नामानि                          | पत्रांक                     |
|-----|---|--------------------|-----|---------------------------------|-----------------------------|
| ४०  | जीर्णचरित्रादिः                                 | ८                  | ५५  | यतिदिनचर्या                     | १२-६८                       |
| ४१  | वन्दारुवृत्तिः                                  | ८-५१-५८-११४        | ५६  | सिद्धपंचाशिकादिः                | १२-३७                       |
| ४२  | ज्ञातार्थमकथा                                   | ८-५२-९०-९०-९१      | ५७  | पद्मचरित्रं                     | १२-१३-१३-९९                 |
| ४३  | कल्पसूत्रस्य स्थविरावली                         | ८-११               | ५८  | संग्रहानिः                      | १३-१५-३२-४९-५५-५१-५८-७४-११४ |
| ४४  | प्रशमरतिः                                       | ८-८५               | ५९  | उत्तराध्ययनवृत्तिः              | १३-८४-९२-१०६                |
| ४५  | नन्दिसूत्रानुवादः ( देवर्दिगोणिक्षमाश्रमणकृतः ) | ८                  | ६०  | पाण्डवचरित्रं                   | १३-१३                       |
| ४६  | कर्मग्रन्थवृत्तिः                               | ९-१७-८५-१०२        | ६१  | हैमीयनेमिचरित्रादिः             | १३                          |
| ४७  | बृहत्कल्पभाष्यम्                                | ९-२२-२५-४४-४८-५२   | ६२  | निशीथचूर्णी                     | १४-१४-१७-५४-९४              |
| ४८  | आन्द्रप्रतिक्रमणसूत्रवृत्तिः                    | ९-१७-२४-४४-१०५-१०६ | ६३  | पाराशरस्मृत्यादि                | १४                          |
| ४९  | परमावश्यकवृत्तिः                                | ९                  | ६४  | हैमव्याकरणम्                    | १४                          |
| ५०  | ज्योतिष्करण्डकप्रकर्षार्णम्                     | १०                 | ६५  | शाकटायनमतम्                     | १४                          |
| ५१  | कल्पसूत्रम्                                     | १०-२६-७४-९६-१०८    | ६६  | सिद्धान्तविषमपदपर्यायः          | १४                          |
| ५२  | श्रीपार्श्वनाथचरित्रादिः                        | १०                 | ६७  | लिङ्गानुशासनविवरणम्             | १४                          |
| ५३  | प्रतिक्रमणगर्भहेतुः                             | १०-५९-७७           | ६८  | नन्द्यध्ययनटीका                 | १५                          |
| ५४  | भाष्यगाथावचूर्णिः                               | ११-५४-१०४          | ६९  | देवेन्द्रनारकेन्द्रसूत्रवृत्तिः | १६                          |
|     | ओषधिनिर्युक्ति                                  | १२-५४-८०           |     |                                 |                             |

नं० न० नामानि

पत्रांक

नं० नामानि

पत्रांक

|                                       |                            |
|---------------------------------------|----------------------------|
| ७० चतुर्थकर्मग्रन्थः                  | १६                         |
| ७१ राजप्रभ्रीयवृत्तिः                 | १६-८४-८६                   |
| ७२ उपवेशमालावृत्तिः                   | १७-१९-७३                   |
| ७३ आचाराङ्गवृत्तिः                    | १७-२०-२०-२०-३८-४३-५४-८०-८५ |
| ७४ सप्ततिसप्तस्थानकम्                 | ८९-१७-५५-९६-१०३            |
| ७५ वसुदेवहिण्डी                       | १८-३४-४५-४६-५५-५५-१०४      |
| ७६ वशवैकालिकबुधवृत्तिः ( हारिग्रीया ) | १९-५९-५०-५०-८२             |
| ७७ आवश्यकचूर्णी                       | १९-२४-३२-४६-५६-५९-५९-७४-८३ |
| ७८ दिनकृत्यवृत्तिः                    | १९-११-१०७-११२              |
| ७९ आचाराङ्गनिर्यक्तिः                 | १९                         |
| ८० वापीलिकाकल्पः                      | २१-२३-८५-१०१               |
| ८१ दुष्प्रमाकालसंघस्तोत्रम्           | २१-१०२                     |
| ८२ आचारप्रदीपादिः                     | २२                         |

|                                     |                      |
|-------------------------------------|----------------------|
| ८३ पौषधविधिप्रकरणादिः               | २२                   |
| ८४ दिनचर्याविः (देवसुरिकृता)        | २२                   |
| ८५ कल्पवृत्तिः                      | २२                   |
| ८६ परिशिष्टपर्व                     | २३-५२-५४-६३-१६-८५ ८८ |
| ८७ ताम्रचरित्रम् ( हेमाचार्यकृतम् ) | २४-४६-४७-४७-७४       |
| ८८ श्राद्धदिनकृत्यः                 | २५-४४-५८             |
| ८९ समवायाङ्गसूत्रम्                 | २५-४९-५५-१०६         |
| ९० जीवसमासवृत्तिः                   | २६-१०३               |
| ९१ महाभाष्यम्                       | २७                   |
| ९२ कल्पचूर्णी                       | २७-७५                |
| ९३ विशेषावश्यकटीका                  | २७-६५-८२-८२          |
| ९४ हरिप्रश्नसमुच्चयः                | २८                   |
| ९५ उपवेशसप्तिका                     | २९                   |
| ९६ महत्कल्पवृत्तिः                  | २९ ४३ ४३             |
| ९७ भवभावनावृत्तिः                   | ३०-४५                |

| नं० | नामानि                                       | पत्रांक     |
|-----|--|-------------|
| ९८  | लघुक्षेत्रसमासवृत्तिः                        | ३०-६२-६२-७९ |
| ९९  | सूत्रकृताङ्गसूत्रम्                          | ३०-४४-८४    |
| १०० | आचारप्रदीपः                                  | ३१          |
| १०१ | आवश्यकवीरचरित्रावि                           | ३१          |
| १०२ | अनुयोगद्वारचूर्णी                            | ३१          |
| १०३ | समयसारसूत्रवृत्तिः                           | ११३         |
| १०४ | आरधनापताका                                   | ३२-९५-११३   |
| १०५ | चउसरणम्                                      | ३२-११३      |
| १०६ | धर्मरत्नप्रकरणवृत्तिः ( देवेन्द्रसूत्रकृता ) | ३३-७३       |
| १०७ | तत्त्वार्थसूत्रम्                            | ३४-५६       |
| १०८ | पुष्पमालावृत्तिः                             | ३९-५३-७४    |
| १०९ | उत्तमचरित्रम्                                | ४०          |
| ११० | तत्त्वार्थभाष्यवृत्तिः                       | ४१-११३-११४  |
| १११ | श्रीविजयचन्द्रकेवलिचरित्रम्                  | ४२          |
| ११२ | पृथ्वीचन्द्रचरित्रम्                         | ४२          |

| नं० | नामानि                             | पत्रांक  |
|-----|------------------------------------|----------|
| ११३ | श्रीवासुपुज्यचरित्रम्              | ४२-५८    |
| ११४ | पंचसूत्रीबृहद्वृत्तिः              | ४३       |
| ११५ | आचारदिनकरः<br>( वर्धमानसूत्रकृतः ) | ४३       |
| ११६ | विपाकवृत्तिः                       | ४४       |
| ११७ | पञ्चाशकवृत्तिः                     | ४४-५१    |
| ११८ | उपदेशपदम्                          | ४४       |
| ११९ | पञ्चसंग्रहः                        | ४५-५७-७४ |
| १२० | जीतकल्पवृत्तिः                     | ४६-१०४   |
| १२१ | समवसरणावचूर्णी                     | ४६       |
| १२२ | आवश्यकद्वादशसहस्रीवृत्तिः          | ४६       |
| १२३ | वृषभचरित्र वर्धमानसूत्रकृतं        | ४६       |
| १२४ | पद्मानन्दकाव्यम् ( अमरकविकृतं )    | ४८९      |
| १२५ | अन्तर्वाच्यम्                      | ४६       |
| १२६ | पञ्चवस्तुवृत्तिः                   | ४७ ४९-९१ |

| नम्र | नामानि                             | पत्रांक  | नंबर | नामानि                                  | पत्रांक         |
|------|------------------------------------|----------|------|---|-----------------|
| १२७  | श्रीसुपार्श्वचरित्रम्              | ४७       | १४२  | औपपातिकसूत्रम्                          | ५२-५१-७३-९८-११४ |
| १२८  | श्री शान्तिचरित्रम्                | ४७-९८    | १४३  | अजितनाथचरितिम्                          | ५२              |
| १२९  | श्रीचन्द्रप्रशसितिवृत्तिः          | ४९       | १४४  | भोजचरितिम्                              | ५२              |
| १३०  | लब्धिस्तोत्रम्                     | ५०       | १४५  | आवश्यकमलयगिरिवृत्तिः                    | ५४-६३-९१        |
| १३१  | दशश्रुतस्कन्धः                     | ५०       | १४६  | श्रीशान्तिचरित्रम् ( अजितसिंहसूरिकृतं ) | ५५              |
| १३२  | पद्मनिर्मोन्धिवचूणी                | ५०       | १४७  | पाक्षिरुसूत्रबृहत्ततिः                  | ५५              |
| १३३  | वीरंजयसेहराभिधक्षेत्रविचारवृत्तिः  | ५०-९२    | १४८  | अनुयोगद्वारवृत्तिः                      | ५५-५७-५८-७७-८७  |
| १३४  | कालसप्ततिः                         | ५०-१०२   | १४९  | कथावलीप्रथमखण्डम्                       | ५५              |
| १३५  | खरतरकृतसन्देहदोलावली               | ५०       | १५०  | उत्तराध्ययनचतुर्दशसहस्रीवृत्तिः         | ५६-११३          |
| १३६  | निशीथभाष्यम्                       | ५०       | १५१  | बृहत्क्षेनविचारटीका मलयगिरिकृता         | ५६ ६२           |
| १३७  | उपदेशतरंगिणी                       | ५०       | १५२  | प्रश्नोत्तरसमुच्चयवचनम्                 | ५६ ८१           |
| १३८  | उपदेशसालः                          | ५०       | १५३  | प्राकृतदीपालीकाकल्पः                    | ५६              |
| १३९  | आवश्यकटीप्पनकम्                    | ५१-९३-९८ | १५४  | संस्कृतकालिकाचार्यकथा                   | ५६              |
| १४०  | सम्यक्स्वरहस्यवृत्तिः              | ५२       | १५५  | श्राद्धविधिविनिश्चयः                    | ५६              |
| १४१  | शान्तिचरित्रम् ( वेङ्कटरत्नाख्यं ) | ५२       | १५६  | भरहसरबाहुबलीवृत्तिः                     | ५६              |

| नं० | नामानि                                 | पत्रांक  |
|-----|--|----------|
| १५७ | प्रत्याख्यानप्रकीर्णकम्                | ५७       |
| १५८ | मरणसमाधिप्रकीर्णकम्                    | ५७       |
| १५९ | महाप्रत्याख्यानप्रकीर्णकम्             | ५७       |
| १६० | कथानककोशः ( जिनेश्वरसूरिकृत )          | ६१       |
| १६१ | विचारसप्ततित्वृत्तिः                   | ६२       |
| १६२ | सामाचार्या अवचूर्णी ( भावदेवसूरिकृता ) | ६२       |
| १६३ | पिण्डविशुद्धिः                         | ६३       |
| १६४ | द्वासप्ततिः                            | ५४       |
| १६५ | नन्दीसूत्रटीका                         | ५५-७१-८८ |
| १६६ | दोषद्विवृत्तिः                         | ५५       |
| १६७ | मण्डलप्रकरणम्                          | ६७       |
| १६८ | उमास्वातिवाचकचवनम्                     | ६७       |
| १६९ | मुनिसुन्दरसूरिकृतगुण्वीली              | ७१       |
| १७० | तीर्थकल्पः                             | ७१       |
| १७१ | द्वादशजल्पः                            | ७२       |

| नं० | नामानि                       | पत्रांक   |
|-----|------------------------------|-----------|
| १७२ | हैमीयं पञ्चचरित्रम्          | ७४        |
| १७३ | वन्दननिर्युक्तिः             | ७५        |
| १७४ | नवतत्त्वमहाचूर्णी            | ७६        |
| १७५ | प्रतिक्रमणगर्भहेतुबालावबोध   | ७७        |
| १७६ | विवेकविलासः                  | ७७        |
| १७७ | नाममाला                      | ७७ ७९     |
| १७८ | वीतरागस्तववृत्तिः            | ७७        |
| १७९ | सूत्रकुट्टङ्गदीपिका          | ७७        |
| १८० | व्यवहारसूत्रवृत्तिः          | ७८-१०१    |
| १८१ | प्रश्नोत्तरग्रन्थः           | ७८        |
| १८२ | शीलभावनासूत्रवृत्तिः         | ८०        |
| १८३ | पिण्डनिर्युक्तिः             | ८१        |
| १८४ | उपाशकदशाङ्ग                  | ८३-८६-१०९ |
| १८५ | पञ्चाशकचूर्णी                | ८४        |
| १८६ | श्रान्दप्रतिक्रमणसूत्रचूर्णी | ८४        |



| नंवर | नामानि                              | पत्रांक |
|------|-------------------------------------|---------|
| १८७  | गुणस्थानक्रमारोहः                   | ८५-१०४  |
| १८८  | गच्छाचारप्रकीर्णकम्                 | ८६      |
| १८९  | आराधनासूत्रकम् (सोम-<br>प्रभसूक्तं) | ९४      |
| १९०  | निक्षीधसूत्रम्                      | ९४      |
| १९१  | अनेकार्थसूत्रवृत्तिः                | ९५      |
| १९२  | वृशैवैकालिकचूर्णः                   | ९७      |
| १९३  | पद्मावली (धर्मसागरगणिकृता)          | १०८     |
| १९४  | चन्द्रप्रभचरितम्                    | १०८     |

| नंवर | नामानि   | पत्रांक |
|------|--|---------|
| १९५  | भट्टारक श्रीधर्मघोषसूत्रिकृत-<br>दूतसमगण्डिका                | १०१     |
| १९६  | दीपालिकाकल्पम्, गुर्वावली,<br>पर्यायः, (धर्मघोषसूत्रिकृतसाः) | १०२     |
| १९७  | पञ्चनिर्ग्रन्थी  | १०२     |
| १९८  | आचारप्रकल्पम्  | १०४     |
| १९९  | नमस्कारस्तवम् (जिन-<br>कीर्तिसूत्रिकृतं)                     | १०४     |
| २००  | नवतत्त्वप्रकरणम्   | ११४     |

॥ श्री अहंभूयो नमः ॥

## । श्री सेनप्रश्नाभिधानग्रन्थस्य प्रश्नकारकाभिधानानुक्रमणिका ।

| उ० | प्रश्नकर्तृनामानि  | प्र०सं० | पत्राणि | उ० | प्रश्नकर्तृनामानि                                   | प्र०सं० | पत्राणि |
|----|--|---------|---------|----|---|---------|---------|
| १  | महोपाध्यायश्रीविलहर्षगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च             | ६       | १       | २  | अथ बृद्धपण्डितकनकविजयगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च    | ४८      | २५      |
| १  | महोपाध्यायश्रीमुनिविजयगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च            | ६       | २       | २  | अथ पण्डितश्रीहापर्विगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च     | १२      | ३०      |
| १  | सूर्यपुरीयश्रीआनन्दकारितोपाध्यायश्रीकल्याणविजयगणिकृतप्रश्नाः | ६       | ३       | २  | अथ पण्डितश्रीनगर्विगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च      | ११      | ३१      |
| १  | अथोपाध्यायश्रीमेघविजयगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च             | ३       | ३       | २  | अथ पण्डितश्रीविष्णुवर्षिगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च | ११      | ३२      |
| १  | अथोपाध्यायश्रीसोमविजयगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च             | ५८      | ४       | २  | अथ पण्डितरत्नचन्द्रगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च      | २५      | ३३      |
| १  | महोपाध्यायश्रीभानुचन्द्रगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च          | ६       | १२      | २  | अथ पण्डितजयविजयगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च          | ८       | ३५      |
| १  | अथोपाध्यायश्रीविवेकहर्षगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च           | १८      | १२      | २  | अथ पण्डितधनविजयगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च          | २४      | ३७      |
| १  | अथोपाध्यायश्रीविजयरजगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च              | ३       | १४      | २  | अथ बृद्धपण्डितशुभविजयगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च    | १०      | ४०      |
| १  | अथोपाध्यायश्रीधर्मविजयगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च            | ३०      | १५      | २  | अथ पण्डितदेवविजयगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तरं च           | १       | ४०      |
| २  | पण्डितआनन्दविजयगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च                   | ४२      | १८      | २  | अथ पण्डितकाहजीगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च           | ३       | ४०      |
| २  | पण्डितरविसागरगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च                     | ४       | २४      | २  | अथ पण्डितकनककुशलगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च         | ५       | ४१      |
| २  | अथ बृद्धपण्डितकमलविजयगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तरं च               | १       | २५      | २  | अथ पण्डितदर्शनसागरगणिकृतप्रश्नौ तदुत्तरे च          | २       | ४१      |

| उ० | प्रश्नकर्तृनामानि   | प्र०सं० | पत्राणि | उ० | प्रश्नकर्तृनामानि                                    | प्र०सं० | पत्राणि |
|----|---|---------|---------|----|--|---------|---------|
| २  | अथ पण्डितविवेकसागरगणिकृतप्रश्नौ तदुत्तरे च                    | २       | ४२      | ३  | अथ पण्डितभक्तिसागरगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च        | ४       | ८१      |
| २  | अथ श्रीहीरविजयसूरिशिष्यपण्डितरामविजयगणिकृतप्रश्नाः            | ४       | ४२      | ३  | अथ पण्डितशुभकुशलगणिकृतप्रश्नस्तदुत्तरं च             | १       | ८२      |
| ३  | अथैतद्ग्रन्थकृत पण्डित शुभविजयगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च १२० | १२०     | ४३      | ३  | अथ पण्डितप्रेमविजयगणिकृतप्रश्नो तदुत्तरे च           | २       | ८२      |
| ३  | अथ पण्डितदेवविजयगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च                   | ९       | ६०      | ३  | अथ पण्डितमुनिविमलगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च         | १०      | ८३      |
| ३  | अथ पण्डितश्रीविनयकुशलगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च              | ४७      | ६१      | ३  | अथ पण्डितदेवविजयगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च          | २२      | ८४      |
| ३  | अथ पण्डितरत्नहर्षगणिकृतप्रश्नौ तदुत्तरे च                     | २       | ६६      | ३  | अथ वटपल्लीयपण्डितपद्मविजयगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च | ६       | ८६      |
| ३  | अथ पण्डितपद्मानन्दगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च                 | २०      | ६६      | ३  | अथ पण्डितमेघविजयगणिकृतप्रश्नस्तदुत्तराणि च           | ६       | ८७      |
| ३  | अथ पण्डितविद्याविजयगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च                | ६       | ६८      | ३  | अथ पण्डितश्रुतसागरगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च        | ७       | ८७      |
| ३  | अथ पण्डितकाद्वर्षिगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च                 | ८       | ६९      | ३  | अथ पण्डितकनकविजयगणिकृतप्रश्नस्तदुत्तरं च             | १       | ८७      |
| ३  | अथ पण्डितजनानन्दगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तरं च                     | १       | ६९      | ३  | अथ श्रीविजयसेनसूरितत्त्वपण्डितकनकविजयगणि             |         |         |
| ३  | अथ पण्डितकुसुमविजयगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तरं च                   | १       | ७०      |    | कृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च                             | ३       | ८८      |
| ३  | अथ पण्डितचारित्र्यविजयगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च             | १७      | ७०      | ३  | अथ पण्डितदयाविजयगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च          | ८       | ८८      |
| ३  | अथ पण्डितकीर्तिविजयगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च                | ३०      | ७१      | ३  | अथ पण्डितगुणविजयगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च          | ३       | ८९      |
| ३  | अथ पण्डितधनहर्षगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च                    | ५४      | ७५      | ३  | अथ पण्डितचन्द्रविजयगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च       | ४       | ९०      |
| ३  | अथ पण्डितजयवन्तर्षिगणिकृतप्रश्नौ तदुत्तरे च                   | २       | ८१      | ३  | अथ पण्डितअमरचन्द्रगणिकृतप्रश्नोत्तराणि च             | ७       | ९०      |

उ० प्रश्नकर्तृनामानि

- ३ अथ पण्डितश्रीसत्यसौभाग्यगणिकृतप्रश्नौ तदुत्तरे च  
 ३ अथ पण्डितजीवविजयगणिकृतप्रश्नौ तदुत्तरे च  
 ३ अथ पण्डितजससागरकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च  
 ३ अथ पण्डितहर्षचन्द्रगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च  
 ३ अथ पण्डितधर्मविजयगणिकृतप्रश्नौ तदुत्तर च  
 ३ अथ पण्डितविद्याविजयगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च  
 ३ अथ पण्डितधीरकुशलगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च  
 ३ अथ पण्डितसोमविमलगणिकृतप्रश्नस्तदुत्तरं च  
 ३ अथ गणिहेमसागरकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च  
 ३ अथ गणिरङ्गवर्द्धनकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च  
 ३ अथ गणिप्रेमविजयकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च  
 ३ अथ पण्डितनाकविगणिशिष्यगणिहर्षविजयकृतप्रश्नाः  
 ३ अथ गणिमणिकंयविजयकृतप्रश्नौ तदुत्तरं च  
 ३ अथ गणिसौभाग्यहर्षकृतप्रश्नौ तदुत्तरे च  
 ३ अथ गणिदामर्षिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च

प्र०स० पत्राणि उ०

- २ ११ ३ अथ पण्डितज्ञानसागरगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च  
 २ ११ ३ अथ गणिमाणविजयसूरिशिष्यगणिजीवविजयकृतप्रश्नाः  
 ९ ११ ३ अथ गणिसूरविमलकृतप्रश्नौ तदुत्तरे च  
 १३ १२ ४ अथ जेसलमेरुसंघकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च  
 २ १४ ४ अथ मुलतानसंघकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च  
 ६ १४ ४ अथ देवगिरिसंघकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च  
 ७ १४ ४ अथ वषासंघकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च  
 १ १५ ४ अथ फतेपुरसंघकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च  
 ७ १५ ४ अथ राजपुरसंघकृतप्रश्नं तदुत्तरं च  
 ६ १६ ४ अथ आगरासंघकृतप्रश्नौ तदुत्तरे च  
 ९ १७ ४ अथोज्ञायिनीसंघकृतप्रश्नाः  
 ८ १७ ४ अथ काकनगरसंघकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च  
 २ १८ ४ अथ वटपल्लीयसंघकृतप्रश्नाः  
 २ १८ ४ अथ पत्तनसंघकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च  
 ८ १९ ४ अथ अहममदावादसंघकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च

प्र०सं० पात्राणि

- ३ ९९  
 ७ १००  
 २ १००  
 ५६ १०१  
 ३ १०७  
 १३ १०८  
 ५ १०९  
 ४ ११०  
 १ ११०  
 २ ११०  
 ३ १११  
 ३ १११  
 ४ १११  
 ३ ११२  
 ५ ११२

### उ० प्रश्नकर्तृनामानि

- ४ अथ स्तम्भतीर्थश्राद्धकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च  
 ४ अथ सूरतिबन्धिरसंघकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च  
 ४ अथ द्वीपबन्धिरसंघकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च  
 ४ अथ नवीनगरसंघकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च  
 ४ अथ सीसाङ्गसंघकृतप्रश्नास्तदुत्तरं च  
 ४ अथ महिम्मदावादसंघकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च  
 ४ अथ साचोरसंघकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च  
 ४ अथ भीममालसंघकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च  
 ४ अथ विभीतकसंघकृतप्रश्नौ तदुत्तरे च

| प्र०सं० पत्राणि | उ०  | प्रश्नकर्तृनामानि                             | प्र०सं० पत्राणि |
|-----------------|-----|---|-----------------|
| ४               | ११२ | ४ अथ जालोरसंघकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च         | ३               |
| ३               | ११४ | ४ अथ पालीसंघकृतप्रश्नौ तदुत्तरे च             | २               |
| १०              | ११५ | ४ अथ मालपुरसंघकृतप्रश्नौ तदुत्तरे च           | २               |
| ३               | ११६ | ४ अथ ऊणीआरसंघकृतप्रश्नौ तदुत्तरे च            | २               |
| १               | ११६ | ४ अथ मेदिनीद्विज्ञसंघकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च | ८               |
| ४               | ११७ | ४ अथ डुंगरपुरसंघकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च      | ४               |
| १०              | ११७ | ४ अथ उदयपुरसंघकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च        | ७               |
| ४               | ११८ | ४ ग्रन्थप्रशस्तिः                             | ०               |
| २               | ११८ |   | १२३             |

श्रेष्ठि देवचन्द्र लालभाई—जैनपुस्तकोद्धार—ग्रन्थाङ्के—

# श्रीविजयसेनसूरिप्रसादितश्रीशुभविजयसङ्कलित- प्रश्नोत्तरमये सेनप्रश्ने.



प्रथमोल्लासः ।

ॐ श्रीवीतरागाय नमः ।

प्रणिपत्य परं ज्योतिः, प्रशान्तदोषं सतां सदा ध्येयम् । प्रत्यूहव्यूहभेदे, लोकालोकप्रकाशकरम् ॥ १ ॥  
तत्तद्बहुश्रुतावलिसङ्घविनिर्गितविचित्रपृच्छानाम् । श्रीविजयसेनसूरिप्रसादितान्युत्तराणि मया ॥ २ ॥  
अङ्गोपाङ्गप्रकरणतटीकागुरुपरम्परादीनाम् । सम्मत्त्याऽऽप्तमस्मृतये सङ्गृह्यन्ते यथाऽवगमम् ॥ ३ ॥

[ त्रिभिर्विशेषकम्. ]

## महोपाध्यायश्रीविमलहर्षगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च

यथा—ज्ञानपञ्चगुद्यापनसर्वं ज्ञानद्रव्यमुत देवाग्ने दौकितत्वेन देवद्रव्यमेव इति प्रश्नोऽत्रोत्तरम्—यावद् ज्ञानोपकरणं तावत् सर्वं ज्ञानद्रव्यं चित्कोशे च मोक्ष्यम्, अन्यत्तु सर्वं देवद्रव्यम्, इति ज्ञायते ॥ १ ॥

तथा—कृत्स्निमजिनप्रतिमानामुत्कर्षतो जघन्यतश्च किं मानः, यदि पञ्चधनुःशतान्युत्कृष्टं जघन्यमङ्गुष्ठप्रमाणं तदा श्रीभरतेनाष्टापदे स्वस्व-शरीरप्रमाणोपेतेषु श्रीऋषभादिचतुर्विंशतिजिनबिम्बेषु ( कारितेषु ) उत्सेषाङ्गुलेन सहस्तमाना श्रीवीरस्वामिनो मूर्तिभरतस्याङ्गुष्ठप्रमाणाऽपि कथं भवतिः, भरतस्यैकस्मिन्नात्माङ्गुले उत्सेषाङ्गुलसत्त्वानि षोडशाङ्गुलाधिकानि चत्वारि धनूषि भवन्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरम्—भरतेन श्रीमहावीरशरीरप्रमाणेन तस्याः कारितत्वात् यद्यपि सा भरतस्यात्माङ्गुलप्रमाणा न भवति तथाऽपि न किमप्यनुपपन्नं, भरताङ्गुलप्रमाणस्यात्रानधिकृतत्वात्, तस्य च प्रायिकत्वादिति ॥ २ ॥

तथा—श्रुतस्तवासिद्धस्तवयोः कस्मिन्नावश्यकेऽन्तर्भाव इति : प्रश्नोऽत्रोत्तरम्—श्रुतस्तवासिद्धस्तवयोः कायोत्सर्गावश्यकेऽन्तर्भाव इत्या-

वश्यकबृहदृत्यनुसारेण ज्ञायते ॥ ३ ॥

तथा—यथा तीर्थकृद् द्वादशानां पर्वदां पुरः चतुरूपभाक् योजनगाभिण्या देशनया धर्मं दिशति, धर्मकथनानन्तरं स्वामिनि देवच्छन्दे प्राप्ते तथैव चतुरूपोपयुक्तस्तादृश्या देशनया गणभृद्धर्मं दिशति उत सहजस्वरानुभावेनैकरूपेण धर्मं दिशति : , यद्येकरूपभाक् तदा द्वादशानां पर्वदां साङ्ख्यमुत तथैवावस्थितिरिति : प्रश्नोऽत्रोत्तरं—तीर्थकृद्देशनाऽनन्तरं द्वितीयपौरुष्यां स्वाभाविकेन रूपेण गणभृद्देशना करोति इति अवसीयते । चतुरूपतया

योजनगामिन्या वाण्या देशनाकरणं तु तीर्थकृतमेवातिशयः शास्त्रे प्रतीतोऽस्ति, न गणभृतामिति, पर्यदां साङ्कर्यमाश्रित्यापि तदवसरौचित्येन यादृच्छिकी प्रवृत्तिरवसेया, व्यक्तैकपाक्षिकनियामकाक्षराभावादिति ॥ ४ ॥

तथा—विजयादिविमानवासिनो देवा नारकतिर्यग्भवनपत्यादिषु यान्ति न वा इति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—ते देवा आनन्तर्येण पारम्पर्येण वा नारकतिरश्चोर्भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्केषु च नायान्तीत्यक्षराणि प्रज्ञापनायां पञ्चदशपदवृत्तौ ॥ ५ ॥

तथा—यस्याष्टावतिचारगाथा नायान्ति तेनाष्टौ नमस्कारा गण्यन्ते, परं गाथाया उच्छ्वासा द्वान्निशद्भवन्ति नमस्कारचतुष्टयस्यापि तथैव, नमस्काराष्टकस्य तु चतुष्पष्टिरुच्छ्वासा भवन्ति तत्कथं, इति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यस्याष्टौ गाथा नायान्ति तस्याष्टनमस्कारकार्योत्सर्गः कार्यते, न तूच्छ्वासमानमिति ॥ ६ ॥

## अथ महोपाध्यायश्रीमुनिविजयगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च ॥

यथा—वासुदेवोत्पाद्या कोटिशिला शाश्वत्यशाश्वती वा ? सा च कुत्र स्थानकेऽस्ति ? तथा सर्वैर्वासुदेवैस्सर्वाऽप्युत्पाद्यतेऽथवा एकदेशेन ? तथा नराणां कोट्योत्पाद्या कोटीशिलेति यथार्थं नामान्यथा वेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—कोटिशिलाऽशाश्वतीति ज्ञायते, गङ्गासिन्धुवैताल्यादिशाश्वतपदार्थानां मध्ये शास्त्रे तस्या अदर्शनात्, तथा सा मगधदेशे दशार्णपर्वतसमीपे चास्तीति । तथा सर्वैरपि वासुदेवैस्सर्वाऽप्युत्पाद्यते, न त्वेकदेशेन, परं प्रथमेन छत्रस्थानं चरमेण च भूमेश्चनुरङ्गुलानि यावन्महता कष्टेन जानु यावद्वा नीयते । तथा नराणां कोट्योत्पाद्यत्वेन श्रीशान्तिनाथादिजिनपट्टतीर्थगतानेकमुनिकोटीनां तत्र सिद्धत्वेन च कोटिशिलेत्यभिधीयत इत्येतदक्षराणि तीर्थकल्पादौ सन्तीति ॥ ७ ॥



तथा—सान्ध्यप्रतिक्रमणस्वाध्यायप्रान्तवदन्येष्वपि स्वाध्यायप्रान्तेषु संपूर्णो नमस्कारः कथनीयो न वेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यत्रादेशद्वयं तत्र स्वाध्याये नमस्कारद्वयभणनं, यत्र चैकादेशस्तत्रैक एव नमस्कारः पठनीय इति । सान्ध्यप्रतिक्रमणस्वाध्यायप्रान्ते संपूर्णनमस्कारपठनं सामाचार्यादौ न दृश्यते, परम्परया तु दृश्यते, तेन तदपि मङ्गलरूपत्वादोषमेवेति ॥ ८ ॥

तथा—पाक्षिकक्षामणकान्ते ‘इच्छामो अणुसंहिति’ गीतार्थमन्तरेणान्यैर्भणनीयं न वेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—‘इच्छामो अणुसंहिति’ सर्वैः पठनीयं सामाचार्यो प्रोक्तमास्ति इति ॥ ९ ॥

तथा—मत्ताङ्गदादयो वनस्पतिविशेषाः अभ्रादिवाद्भिश्चसापरिणामपरिणता न वेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—मत्ताङ्गदादयो जीवाभिगमवृत्याद्यनुसारेण विश्रसया—स्वभावेन तथाविधक्षेत्रादिसामग्रीजनितेन विश्रसापरिणामपरिणतास्सन्ति, ऋषिदत्ताकथादौ तु कल्पद्रुमर्भजवपनादिदर्शनाद्वनस्पतिविशेषा अपि ज्ञायन्ते इति ॥ १० ॥

तथा—चिर्बर्भटकप्रभृति सनीजवस्तु वह्नितापमन्तरेण केवलराजिकासंस्कारेणाचितं भवति न वा इति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—आमविर्बर्भटकप्रमुखं सवीजं निर्बीजं वा प्रबलाशिलवणसंस्कारं विना प्राप्तुकं न भवतीति ॥ ११ ॥

तथा—सामाचार्यो नवमद्वारे कालग्रहणविधौ ‘गिलिउमिग्लि’ इतिशब्देन किमुच्यते ? तत्साक्षरं प्रसाधमिति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—मार्जारदिना मूषिकादौ ‘गिलितोद्विलिते’ इति गिलितस्सन्नुद्विलितो—वान्तस्त्रास्मिन्; कोऽर्थः ?—स्यानान्तरे गिलित्वा वसतेः षष्टिस्तमध्ये आगत्य वान्तेऽस्वाध्यायो न भवतीत्यभिप्राय आवश्यककृत्यादावस्तीति ॥ १२ ॥

## अथ सूर्यपुरीयश्राद्धकारितोपाध्यायश्रीकल्याणविजयगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च

यथा—एकः पार्श्वस्थादिर्मूलकम्भादिषु दुष्टकर्मकारी परं शुद्धप्ररूपकोऽपर उत्सूत्रप्ररूपकः परं तपःप्रभृतिभूयःक्रियावान् एतयोर्मध्ये को गौरववान् कश्च लाघववानिति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—एतयोर्मध्येऽयं गुरुरयं च लघुरिति निर्णयः कर्तुं न शक्यते, तथाविधसिद्धान्ताक्षरानुपलम्भाज्जी-वपरिणामानां वैचित्र्याच्च, सर्वथा निर्णयस्तु सर्वविद्वेद्यो, व्यवहारवृत्त्या तूत्सूत्रप्ररूपको गौरववानिति सम्भाव्यते ॥ १३ ॥

तथा—अगीतार्थस्य स्वातन्त्र्येण विहारेऽनन्तसंसारितैकान्तिक्यन्यथा वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अगीतार्थस्य स्वातन्त्र्यविहारे अनन्तसंसारिता प्रायिकीति ज्ञायते, कर्मपरिणतेर्वैचित्र्यादिति ॥ १४ ॥

तथा—साधूनां मासकल्पादिविधिना विहार एकान्तिकोऽन्यथा वा इति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—साधूनां मासकल्पादिविहारो नैकान्तिको, यतः कारणाभावे ते मासकल्पादिविधिनैव विहरन्ति, कारणे तु “पंचसमिआ तिगुत्ता, उज्जुत्ता संजमे तवे चरणे । वाससयंपि वसंता, मुणिणो आराहग, भणिआ ॥ १ ॥” इत्यादिवचनाद्बहुतरमपि कालमेकत्र तिष्ठन्तीति ॥ १५ ॥

तथा—इहलोकार्थं एकक्षनालिकेरादिपूजने मिथ्यात्वं भवति न वा इति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—ऐहिकफलार्थं दक्षिणावर्त्तशङ्खादेरिव एकाक्षनालिकेरादेरपि पूजने मिथ्यात्वं ज्ञातं नास्तीति ॥ १६ ॥

तथा—सम्यग्दृष्टितिरिक्तानां जीवानां सर्वथा निर्जरा नास्त्येव ? काचिदस्ति वा इति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सम्यग्दृष्टिव्यतिरिक्तानां जीवानां सर्वथा निर्जरा नास्ति एव इति वक्तुं न शक्यते । “अणुकंपऽकामनिज्जर, बालतवे दाणविणयविब्भगे । संजोगविप्पओगे

वसणुसवईसुसङ्कारे ॥ १ ॥ ” इति आवश्यकनिर्युक्तौ मिथ्यादृशा सम्यक्त्वप्राप्तिहेतुष्वकामनिर्जराया उक्तत्वात् केषाञ्चिच्चरकपरिघ्राजका-  
दीनां स्वाभिलाषपूर्वकं ब्रह्मचर्यपालनादत्तादानपरिहारादिभिर्ब्रह्मलोकं यावद्गच्छता सकामनिर्जराया अपि सम्भवाच्चेति ॥ १७ ॥

तथा—उत्सूत्रप्ररूपको महाव्रतपालनतपश्चरणादिकां क्रियां कुर्वन्तः कर्मलघुका भवन्ति न वा इति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—उत्सूत्रप्ररूपका  
महाव्रतपालनादिक्रियासहिता निह्नवादय उत्कर्षतो नवमश्रैवेयकं यावधान्ति, तेन महाव्रतपालनादिक्रियावतां तज्जन्यं शुभफलं भवतु, परं तेषा  
कर्मणा लघुक्ता गुरुक्ता च सर्वत्रिद्वेयेति ॥ १८ ॥

### अथोपाध्यायश्रीमधेविजयगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च

यथा—श्रीभगवत्यां चतुर्लोकपालाना स्वस्वदिक्षु स्थितिः प्रतिपादिताऽस्ति, परं तेषा ग्रह १ दण्ड २ डिम्बा ३ तिवर्षा ४ ५ अ-  
करादीनि ६ पृथक् पृथक् कृत्यानि दक्षिणस्यामेव प्रोक्तानि नान्यदिक्षु, तत्र किं नियामकम् इति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—श्री भगवत्यां  
यह्यलोकपालानां पृथक् पृथक् कृत्यानि दक्षिणस्यामेव प्रोक्तानि तन्मेरोरपेक्षया, न तु सौधर्मेन्द्रनिवासभूतविमानापेक्षया इति ॥ १९ ॥

तथा—करुणकिरणावल्यां मरुदेव्यध्ययनं विभावयन् वीरः सिद्धिं गतः, तत्र मरुदेव्यध्ययनं कया रीत्या विभावितम्, तत्सम्यक् प्रसाद्य-  
मिति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—कल्पसूत्रावचूर्णौ मरुदेव्यध्ययनं विभावयन्-प्ररूपयन्नित्येव व्याख्यातमस्ति, न तु विभावनरीतिरिति ॥ २० ॥

तथा—पाक्षिकक्षामणाऽवसरे श्राद्धाः प्रत्येकं नमस्कारान् मनोमध्ये कथयेयुः किं वा नेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—क्षामणाऽवसरे यतिसद्भावे  
श्राद्धा नमस्कारं न पठन्ति, किन्तु यतिभिः पठ्यमानं क्षामणकपाठं शृण्वन्ति, यतीनामभावे तु नमस्कारं पाक्षिकसूत्रस्थाने प्रतिक्रमणसूत्रं च परम्प-  
रया पठन्तीत्यत्रसेयम् ॥ २१ ॥

## अथोपाध्यायश्रीसोमविजयगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च

यथा—देवादिर्बैक्रियं कुर्वाणो यदैकेन्द्रियादिपञ्चैन्द्रियपर्यन्तं जीवरूपं करोति तदा निजात्मप्रदेशांस्तत्र प्रक्षिपति, एवमचेतनं स्तम्भादिपदार्थे विकुर्वाणस्तान् प्रक्षिपति न वा ? इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अचेतनं स्तम्भादिपदार्थं विकुर्वाणो जीवप्रदेशान्न प्रक्षिपतीति ज्ञायते, यतो जीवाभिगमे चतुर्थप्रतिपत्तौ देवगत्याधिकारे—“सोहम्मीसाणेदेवा किं एगत्तं पहु ! विउब्बित्तए ? पुहत्तं पहु विउब्बित्तए ?” इत्यादिसूत्रे सम्बन्धादपि असम्बन्धादपि, इत्यत्रासम्बन्धादपि त्येतद्व्याख्यानेऽसम्बन्धान्यात्मप्रदेशेभ्यः पृथग्भूतानि प्रासादघटपटादीनीत्युक्तमस्तीति ॥ २२ ॥

तथा—पिण्डविशुद्धिविधाता जिनवल्लभगणिः खरतरोऽन्यो वा ? इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—जिनवल्लभगणेः खरतरगच्छसम्बन्धित्वं न सम्भाव्यते, यतस्तत्कृते पौषधविधिप्रकरणे श्राद्धानां पौषधमध्ये जेमनाक्षरदर्शनात्कल्याणकस्तोत्रे च श्रीवीरस्य पञ्चकल्याणकप्रतिपादनाच्च तस्य सामाचारी भिन्ना खरतराणां च भिन्नोति ॥ २३ ॥

तथा—जम्बूद्वीपे सर्वसङ्ख्यया पट्पञ्चाशत्सहस्राधिकचतुर्दशलक्षप्रमिता नद्यो जम्बूद्वीपप्रज्ञसौ प्रोक्तास्सन्ति, तत्र प्रत्येकमष्टाविंशतिसहस्रनदीपरिकरितानामन्तर्नदीनामगणने को हेतुरिति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अन्तर्नदीनां परिवारागणने जम्बूद्वीपसंग्रहण्यादौ चतुरशीतिसहस्रभितानां कुरुक्षेत्रनदीनामगणनमिव पूर्वाचार्याणामविवक्षैव हेतुः सम्भाव्यत इति ॥ २४ ॥

तथा—द्वादशव्रतपौषधिकानां चत्वारिअट्टदससक्तपौषधिकानां चालोचनाप्रायश्चित्तप्रदानमुपधानानुसारेणान्यथा वेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—द्वादशव्रतपौषधिकादीना प्रायश्चित्तप्रदानं सामान्यतो जीवघातादौ यादृगापतति तदनुसारेण न तुपधानाद्यनुसारेणेति सम्भाव्यत इति ॥ २५ ॥

तथा—भरतक्षेत्रसम्बन्धिमागधादितीर्थानि जगत्या अर्वाक् सन्ति लवणसमुद्रे वेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—भरतक्षेत्रसम्बन्धिमागधादितीर्थानि जगत्याः परतो लवणसमुद्रेऽवसीयन्ते, यतो जम्बूद्वीपसमासे भरतक्षेत्रवर्णनाधिकारे मागधवरदामप्रभासतीर्थद्वारमित्याद्युक्तमस्तीति ॥ २६ ॥

तथा—“पणकोडि अट्टसट्ठी, लक्खा नवनवइसहस्स पंचसया । चुलसीअहिआ रोगा, छट्टे तह सत्तमे नरए” ॥ १ ॥ इयं गाथा क्वास्ति ? प्रथमादिनरकेषु च कियन्तो रोगास्सन्तीति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—इयं गायैतत्पाठरूपा अन्ये दृष्टा न स्मरति, एतद्भावाथरूपा तु वर्त्तते, यथा—“रोगाणं कोडीओ, हवंति पंचेव लक्ख अडसट्ठी । नवनवइसहस्साहं, पंचसया तहय चुलसीहं ॥ १ ॥” एते रोगा अप्रतिष्ठाने नरकावासे नित्या अन्यत्रापि च सम्भवन्ति यथायोगं, ततश्च यस्मिन्नरमवे एतावन्तो रोगाः क्षयहेतवस्तास्मिन् धर्मे एव सार इत्यादरणीयस्सर्वशक्त्येत्यु-पदेशरत्नाकरे पञ्चविंशत्यधिकैकशतपत्रमितपुस्तके एकाशीतितमपत्रे ॥ २७ ॥

तथा—सामायिकाध्ययनादीनां कान्युपधानानि धर्मस्थानां<sup>१</sup>, परस्यानुयोजने किं प्रतिवचः प्रदीयत इति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—महानिशीयादौ चैत्यवन्दनसूत्राणामेवोपधानान्युक्तानि सन्ति, न तु सामायिकाध्ययनादीना । यच्चोपधानमन्तरापि सामायिकादीना पठनं तत्र जीतव्यवहारः सम्प्रदायश्च प्रमाणं, यदुक्तं—“श्रावकाः पञ्चनमस्कारादि कियत्सूत्राणि विमुच्य शेपं सामायिकादि षड्जीवनिकान्तं सूत्रमुपधानमन्तरेण यत्पठन्ति यच्चाकृतोपधानतपसोऽपि प्रथमं नमस्कारादींस्तत्र जीतव्यवहारस्सम्प्रदायश्च प्रमाणमिति सम्भाव्यत इति विचारामृतसंग्रहे श्राद्धप्रतिक्रमणविचाररूपे षष्ठद्वारे इति ॥ २८ ॥

तथा—जिनानामन्तरेषु साधुविच्छेदे सति प्रत्येकबुद्धादिः केवली भवति न वा ? यदि भवति तर्ह्यन्येषां धर्मं कथयति न वेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—तीर्थोच्छेदे प्रत्येकबुद्धादेः केवलित्वमवने साक्षादक्षराणि प्रवचनसारोद्धारवृत्त्यादौ दृश्यन्ते, परं परेषां धर्मकथने निषेधाक्षराणि ग्रन्थे दृष्टानि न स्मरन्तीति ॥ २९ ॥

तथा—समवसरणे तृतीयवप्रद्वारेषु द्वारपालमाश्रित्य “प्रतिवप्रं प्रतिद्वारं, तुम्बरप्रमुखाः सुराः । दण्डिनो हि प्रतीहाराः, स्फारशृङ्गारिणोऽभवन् ॥ १ ॥” इति वृद्धश्रीशत्रुञ्जयमाहात्म्ये । तथा—“द्वारेषु रौप्यवप्रस्य, प्रत्येकं तुम्बरुः स्थितः । नृमुण्डमाली खट्वाङ्गी, जटामुकुटभूषितः ॥ १ ॥” इति श्रीशान्तिनाथचरित्रे ॥ तथा—“अन्यवमे प्रतिद्वारं, तस्यौ द्वास्थस्तु तुम्बरुः । खट्वाङ्गी नृशिरः सग्वी, जटामुकुटमण्डितः ॥ १ ॥” इति श्रीहैमवीरचरित्रे । तथा—तदयं बहि सुरा तुम्बरु खट्वाङ्गिकवालि जडमण्डधारी । पुष्पा-इदारवाला तुम्बरुदेवो अ पडिहारो ॥ १ ॥ इति ‘थुणिमो केवलित्वं’ इति स्तोत्रे इति मतान्तराणि दृश्यन्ते, तेन नवीनप्रारब्धसमवसरणे किनामानः किमायुधाश्च प्रतीहारा विधीयन्ते ? तथा प्रतिद्वारमेको द्वौ वेति व्यक्त्या प्रसाद्यामिति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—नवीनप्रारब्धसमवसरणे समवसरणस्तोत्रानुसारेण प्रतीहाररूपाणि विधेयानि, प्रतिद्वारं च “बीए देवीजुअला” इतिपदस्योपलक्षणपरत्वेन प्रतिहाररूपद्वयं समानायुधं भवतीति समवसीयत इति ॥ ३० ॥

तथा—चतुर्दशपूर्विणां जघन्यतोऽपि षष्ठदेवल्लोके उपपाताक्षराणि कुत्र सिद्धान्ते सन्तीति व्यक्त्या प्रसाद्यामिति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—चतुर्दश-पूर्विणां जघन्यतो लान्तकं यावद्भतिमाश्रित्य भगवतीवृत्तौ महाबलाधिकारे जिनभद्रगणिक्रमाश्रमणकृतवृहत्संग्रहणीसूत्रादौ च स्पष्टतया

तदक्षराणि दृश्यन्ते, यत्तु महाबलस्य नतुर्दृशपूर्विणः पत्रमे कल्पे गतिरुक्ता तत्तु पूर्वनिष्ठृत्येति ऋषिषण्डलघृत्तौ, सिद्धान्ते त्वाहत्य दृष्टानि न स्मरन्तीति ॥ ३१ ॥

तथा—एकद्विज्यादिदिवससम्बन्धि साकारमनशनं “जइ मे हुज्ज पमाओ” इत्यादिगाथया कार्यतेऽन्यथा वा इति, यद्यनया गाथया तु दीर्घनिद्रासद्भाववेवाहारादित्यागो दृश्यते, अन्यथा त्वाहरोपपद्यदेरत्यजनमिति कथं सम्पच्छते? यदि चान्यथा कार्यते स प्रकारः तर्थास्यां तु प्रश्नोऽत्रोत्तरं—‘अन्नत्यणाभोगेण’ इत्याद्याकारैः कृताहारादिप्रत्याख्यानस्य ‘जइ मे हुज्ज पमाओ’ इत्यनया गाथयाऽन-  
प्रसाद्य इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—‘उपाकृत्याधिकारे वर्त्तत इति ॥ ३२ ॥

तथा—श्रीनिनालयादेश्चिन्ताहरणार्थं गृह्वादिशेनादीनां विद्यमानानां मोचनं तद्विश्रया युक्तिमत्प्रतिभाति, परं तन्निश्रया नवीनशेना-  
दीनां निष्पादनं कथं युक्तमिति केचन प्रश्नयन्ति, तदुपरि ग्रन्थक्षराणि यदि भवन्ति तदा प्रसाद्यानीति? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—विद्यमानगृह्वादिशेनादीनां मोचनमिव नवीनानामपि तेषां कारणे निष्पादनं द्रव्यशेनादिनिचारणया नानुचितं प्रतिभाति, यथा जीर्णपाणेषु कृतादीनामभावे नवीनानामपि तेषामुत्पादनं विधीयमानमास्ते, किञ्च—“तन्नामेकतडागादिवनश्रेणिविभूषितः । प्रासादो जगदीशस्य, चक्रे वर्द्धकिना महान् ॥ १ ॥ इति श्री शत्रुञ्जयमहात्म्येऽपि, तथा तत्रैव ग्रन्थे तत्तत्रद्यस्तत्तत्कुण्डानि तत्तदिन्द्रादिभिः कारितानीत्यक्षराणि स्पष्टतया सन्तीति ॥ ३३ ॥

तथा—मौलिविधिनोपधाननहने श्राद्ध्या अस्माध्यायदिनत्रयसप्तकं तपः प्रवेदनं च लेख्यके समायाति नवेति प्रसाद्यं, पूर्वं तु तपो

न यातीति श्रुतमस्तीति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अस्याध्यायदिनत्रयसत्कं तपः प्रवेदनं च न यातीति वृद्धनादोऽत एव षोडशदिने वाचना प्रदीयमानाऽस्ति, वाचनानन्तरं च प्रवेदनरहितं पौषधन्यं कार्यत इति ॥ ३४ ॥

तथा—सौधम्भोद्विदेवलोकेषु प्रतिप्रतरं सकलधिमनानामाधारभूतैका भूमिर्नास्तीत्यवसीयते, यतो भगवत्स्यादौ पृथ्वीप्रश्ने रत्नप्रभादय ईषत्प्रागभारपर्यन्ता अष्टावेव पृथिव्य उन्ताः सन्ति न त्वधिका इति ॥ ३५ ॥

तथा—स्थानाङ्गसूत्रपञ्चमाध्ययनद्वितीयोद्देशके ‘राइभोअणं भुंजमाणे’ इत्यस्य वृत्तौ दिवागृहीत दिवाभुक्तमिति भङ्गकस्य कथं रात्रिभोजनता : पर्युगितरक्षणादन्यथा वेति : , प्रश्नोऽत्रोत्तरं—रात्रिभोजनचतुर्भङ्गां दिवागृहीतं दिवाभुक्तमिति भङ्गकस्य पर्युगितरक्षितभक्षणेन रात्रिभोजनता ज्ञेया, हारिभङ्गां दशवैकालिकवृत्तौ पाक्षिकसूत्रवृत्तौ च सान्निधिपरिभोगाधिकारे तथैव प्रतिपादनादिति ॥ ३६ ॥

तथा—मनुष्यः पशुर्वी देवलोहं गतस्सन् प्रायः सिद्धान्तद्वौ प्रागभवसम्बन्धिनाम्ना व्यपदिश्यते, तत्र को हेतुः ? , देवलोके देवानां किं शाश्वतानि नामानि न सन्तीति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—देवलोके गतानां प्रागभवसम्बन्धिनाम्ना (यो) व्यपदेशः सोऽत्रत्यानां सुखेन प्रतीत्यर्थोऽन्यथा देवलोकेऽपि श्रिमाना-सनादिनिमित्तकानि शाश्वतानि नामानि सम्भवन्त्येवेति ॥ ३७ ॥

तथा—अत्र योगविधिप्रान्ते लिखितमस्ति यत्—‘प्राभातिककालो वैरात्रिककालस्थाने स्थाप्यते’ इत्यत्राकसन्ध्यादिकारणे एतत्स्थापनमन्यथा वेति : प्रश्नोऽत्रोत्तरं—प्राभातिककालस्थाने वैरात्रिककालस्थापनमाकसन्ध्यादिकारणे सति गुर्वाज्ञया शुध्यति, योगविध्यादौ तथैव प्रतिपादनादिति ॥ ३८ ॥

तथा—‘देवनैरथिकैरपि यदि पण्णासे शेपे आयुर्न बद्धं तत आत्मीयस्यायुपः पण्णासशेपं तावत्साङ्क्षिपन्ति यावत्सार्थजनन्य आयुर्नैवकाल



उत्तरकालश्च शेषोऽवतिष्ठते, इह परमवायुर्देवनैरयिका न धन्तीत्ययमसङ्क्षेपकालः । इति श्रीस्थानाङ्गषष्ठाध्ययनवृत्त्युपान्ते प्रोक्तमस्तीति, परं  
, बन्धन्ति देवनारय असंख्यतिरिनर छमासमेसाउ । इत्यादिवचसा कथं संवादः ? इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—बन्धन्ति देवनारयेत्यादिवचनं प्रायिकं,  
तेन केषाञ्चिद्देवनारकोणा शेषेऽन्तर्मुहूर्तेऽप्यायुर्बन्धो भवतीति मतान्तरं अवसीयते इति न कोऽपि विमंवाद इति ॥ ३९ ॥

तथा—प्रज्ञापनावृत्तीयपदे भवसिद्धिकद्वारे 'तेभ्योऽपि भवसिद्धिर्वा अनन्तगुणाः, यतो भव्यनिगोदस्यैकस्याप्यनन्तभागकल्पाः सिद्धाः, भव्यजीवराशिनिगोदाश्चासङ्ख्येया लोके' इत्यत्र निगोदानां भव्येतिविशेषणात्केवलभव्यजीवाश्रिता निगोदा अन्यथा वा !, यदि केवलभव्याश्रिता निगोदा भवन्ति तर्हि केवलभव्यजीवाश्रिता अपि ते भवन्ति न वेति ? प्रश्नोऽत्रोचरं—निगोदानां भव्येतिविशेषणं भव्यानां प्राधान्यख्यापनार्थं तेनाभव्या अपि तत्रैवान्तर्भवन्ति, न त्वभव्यानां पृथक् निगोदा उक्तास्सन्तीति ॥ ४० ॥

तथा—ऐशाने सौधर्मे ज्योतिश्चक्रे व्यन्तरनिकाये असुरादनिकाये च प्रत्येकं देवेभ्यो देवीविर्गो द्वात्रिंशदधिकद्वात्रिंशदुण इति प्रज्ञापनायां महादण्डके प्रोक्तमस्ति, अन्यत्र तु 'तिगुणा तिरूवअहिआ' इत्यादिवचनात्सर्वसुरेभ्यः सर्वदेवीविर्गो द्वात्रिंशदधिकद्वात्रिंशदुण इति, अत्रोत्तरं वचनं कथं संगच्छते ? प्रज्ञापनायां सनत्कुमारादिदेवेभ्यो देवीनामधिकत्वाप्रतिपादनादिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—ईशानादिषु यद्देवापेक्षया देवीनां द्वात्रिंशदधिकद्वात्रिंशदुणत्वं तदीशानादिदेवभोग्यदेव्यपेक्षयाऽवगन्तव्यं, तेनाधिका अपि तत्र देव्यस्सम्भाव्यन्ते, ताश्च सनत्कुमारादिदेवापेक्षया गण्यमाना द्वात्रिंशदधिकद्वात्रिंशदुणा भवन्तीति न कश्चन प्रज्ञापनोपाङ्गतिगुणातिरूवअहिअत्तिगायोक्तभावारथोर्भेद इति ॥ ४१ ॥

तथा—जिनकल्पिकानामेकावतारित्वप्रघोषस्तस्योऽसत्यो वा ? , तथा तेषामेव वस्त्राभावे नादृश्यदर्शनाभावसूचकाक्षराणि भवन्ति तदा प्रसाद्या-

नीति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—जिनकल्पिकानामेकावतारित्वप्रघोपमाश्रित्य तथा च तेषां वद्धाभावे नाग्न्यदर्शनाभावमाश्रित्याक्षराणि तु शास्त्रे दृष्टानि न स्मरन्तीति ॥ ४२ ॥

तथा—उत्तरवैक्रियशरीरं सातिरेकलक्षयोजनप्रमाणं प्रोक्तमस्ति, परं तानि योजनानि कर्तुरात्माङ्गुलप्रमाणेनेत्सेधाङ्गुलप्रमाणेन प्रमाणाङ्गुलप्रमाणेन वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—उत्तरवैक्रियशरीरमुत्सेधाङ्गुलेन वाऽऽत्माङ्गुलेन वा प्रमाणाङ्गुलेन वा स्वशक्त्यनुसारेण भवत्वित्यत्र न कोऽप्याग्रह इति ॥ ४३ ॥  
तथा—आवश्यकहारिभद्र्यां श्री हरिभद्रसूरिभिः श्रुतदेवतानमस्कारः प्रथमपद्येऽकारि, स साधूनां कथमुचितो ?, न चात्र श्रुतरूपा देवतेति वक्तुं युक्तं, प्रतिक्रमणहेतुगर्भे श्रुतदेवताया देवतारूपेण भावितत्वादिति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—श्रुतस्य ज्ञानरूपत्वेन परममोक्षाङ्गत्वात् श्रुताधिष्ठातृ-देवताया अपि स्मरणादिना स्थाने कर्मक्षयहेतुत्वेनाभिहितत्वात् श्रुतोपकारकतया तन्नमस्कारोऽपि पूर्वोच्यैराचीर्ण इत्यत्राऽऽचरणैव प्रमाणमिति ॥ ४४ ॥

तथा—आत्मभिर्विधियमानः पञ्चशक्तस्तवैवैवन्दनविधिः कुत्रापि अन्येऽस्ति परम्परागतो वा ?, यतः प्रवचनसारोद्धारदिग्रन्थे त्वन्यथा वर्तत इति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—आत्मभिर्विधियमानः पञ्चशक्तस्तवैवैवन्दनविधिः कियान् योगशास्त्रवृत्तिसंघाचारवृत्त्याद्यनुसारेण कियांश्च परम्पर-येति प्रवचनसारोद्धारदौ कियति भेदेऽपि न कोऽपि वितर्कः, तस्यापि सुविहिताचरितत्वात्, गणधरसामाचारीष्वपि क्रियभिदाभ्युपगमाच्चेति ॥ ४५ ॥

तथा—एकस्मिन्निगोदेऽनन्ता जीवाः प्रतिमयं प्रविशन्ति प्राक्तनाश्चानन्तास्तस्मान्निर्गच्छन्तीति प्रोक्तमस्ति, परमेवं गमनागमने सति स निगोदः कियत्काले तिष्ठतीति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यदि प्रज्ञापनादृत्यादौ प्रत्युत्पन्नवनस्पतीनामपि निर्लेपनं प्रत्यादिष्टं तदा सम्पूर्णनिगोदावस्थान-कालस्येयत्ता वक्तुं कथं शक्यत इति ॥ ४६ ॥

तथा—‘तिब्बारपनरगरस’ इत्यादिगाथाऽनुसारेण तपोरूपं प्रायश्चित्तं दीयमानमस्ति, परमेता गाथाः कस्मिन् ग्रन्थे सन्तीति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—‘तिब्बारे’ त्यादिगाथा ग्रन्थस्या दृष्टा इति न स्मृतिमिविति, किन्तु पारम्पर्यागताः छुटितपत्रस्था एवेति ॥ ४७ ॥

तथा—‘वरकनकशङ्खविद्रुममरकतघनसंनिभं विगतमोहं’ इत्यत्र जिनानां पञ्चापि वर्णानां उक्तास्सन्ति, परं वर्तमानजिनानां सुवर्णवर्णः क्वचित्सोत्रादौ लिखितोऽस्तीति तेषां कथं पञ्चवर्णत्वं संगच्छत इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—‘वरकनके’त्यादिगाथाया ये पञ्च वर्णस्तीर्थ-कृतमुक्ताः सन्ति ते यौक्तिका एव, यत्पुनर्वर्तमानजिनानां स्तोत्रादौ लिखितः सुवर्णवर्णः स साम्प्रतीनविहरमाणजिनोपेक्षया भविष्यतीति ज्ञायते, यतः छुटितपत्रेषु विहरमाणजिनैकविंशतिस्थानके च श्रीसीमन्धरादीनां विंशतेरपि तीर्थकृतोमेक एव कनकवर्णो लिपिकृतो दृश्यत इति ॥ ४८ ॥

तथा—जिनवल्लभसूरिकृतप्राकृतालापकरूपदीपालिकाकल्पे लिखितमस्ति ‘पडिमारूवो सावगधम्मो बुच्छिज्जिस्सइ’ इति, तेन तत्रत्य-पुस्तकेष्वयं पाठोऽस्ति न वा ? इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—जिनवल्लभसूरिकृत आलापकरूपो दीपालिकाकल्पो दृष्टो नास्ति, जिनप्रभसूरिकृतस्त्वत्रालापकरूप एव वर्तते, तत्र च ‘पडिमारूवो सावगधम्मो बुच्छिज्जिस्सइ’ इत्यक्षराणि सन्तीति ॥ ४९ ॥

तथा—उत्सर्पिणीकाले चरमतीर्थकृतस्तीर्थं कियत्कालं प्रवर्तिष्यत इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—पञ्चमांगे विंशतितमशतकेऽष्टमोद्देशे जिनकेवलपर्याय यावदुत्सर्पिणीकाले चरमतीर्थकृतस्तीर्थं प्रवर्तिष्यति इति उक्तमस्तीति ॥ ५० ॥

तथा—चतुरधिकद्विसहस्रमितयुगप्रधानाः सिद्धान्ते प्रोक्तास्ते साम्प्रतं क्व सन्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—साम्प्रत युगप्रधानाः सन्तीति ज्ञातं नास्ति, दृश्यन्तेऽपि च न, तेन तृतीयोदयात्पारम्भ्य ते भविष्यन्तीति ज्ञायते ॥ ५१ ॥

तथा—कृतान्तवनस्पतिप्रत्याख्यानिना भूमिकूष्माण्डं तापादिव्यतिरेकेण शुष्कं वाऽऽर्द्रं वा कल्पते, किंवा श्राद्धविध्युक्तसंस्कृताद्र्द्रकवदकरूप्यं ? , यतस्तद्वल्लीपत्राण्येवोर्ध्वं दृश्यन्ते फलानि भूमिगतान्येवेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—भूमिकूष्माण्डं सम्यक्तया शुष्कं सदनन्तवनस्पतिप्रत्याख्यानिनामौपधादिकारणे ग्रहीतुं कल्पत इति व्यवहारो दृश्यते, परं तदातपं विना सम्पूर्णतया शुष्कं न भवतीति तत्स्वरूपविदो विदुरिति ॥ ५२ ॥

तथा—आवश्यकसूत्रघट्टस्यादौ जीर्णचरित्रादौ च केवलिनः समवसरणे तीर्थ तीर्थकरं गणधरं नत्वा स्वर्षदि समुपविशन्ति, वन्दारुवृत्तौ—

“ गौतमस्तु जिनोपान्ते, ययौ यावद्विविन्दुषुः । प्रचेलुस्तेऽथ शालाद्यास्तावत्केवलिर्षदि ” ॥ १ ॥

ततस्तान् गौतमोऽवादीद्वन्द्वं किं न भो ! विभुम् ? । स्वाम्युचे केवलज्ञानभाजो माऽऽशातयैनकान् ॥ २ ॥ ”

इति पक्षद्वये कः पक्षः पृच्छकस्य निरूपणीय इति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—तीर्थकरं त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य तीर्थप्रणामं च कृत्वा केवलिनः स्वर्षदि व्रजन्तीति भावार्थकान्यक्षराण्यावश्यकघट्टस्यादौ सन्ति, यत्तु शालाद्या एवमेव स्वर्षदि जग्मुः तत्तु चरितानुवादरूपं प्रवर्त्तकं निवर्त्तकं च न भवतीति ॥ ५३ ॥

तथा—केषुचिद्ग्रन्थेषु दानप्रदानात्पूर्वं लोकान्तिका देवास्तार्थिकृतां दीक्षाकालं ज्ञापयन्ति, षष्ठाङ्गे तु पूर्वं दानं तदनु तेषां विज्ञप्तिरित्यत्र को विशेष इति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—तीर्थकृतां लोकान्तिकदेवकृतसम्बोधनोत्तरकालं सांवत्सरिकदानप्रवृत्तिस्तदनन्तरं वा लोकान्तिकदेवकृतं सम्बोधनं भवतीति ज्ञायते, एतदक्षराणि तु हारिभद्रयामावश्यकवृत्तौ महावीरदानाधिकारे सन्तीति ॥ ५४ ॥

तथा—लोकान्तिकदेवानां यथा 'पदमनुअलमि सत्त सयाणीति' सर्वेषां लोकान्तिकानां पछाञ्जोक्तः 'पत्तेअं पत्तेअं नउहिं सामणिअसाहसी-  
हि' इत्यादिपरिवारः । किं वा विमानाधिपतेः<sup>१</sup>, परं सामान्यतो लोकान्तिका देवा भगवन्तं विनोद्यन्तीति हृश्यते न तु न्यापि तत्स्वामिन इति, तथा  
तत्परिवारभूतानां तेनाग्नि भवस्थितिः किं वा विदेशो वा ! इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सप्ताधिकसप्तशतादीनां लोकान्तिकानां देवानां ज्ञाताधर्मकथाज्ञोक्तः  
सामानिकादिकः परिवारः प्रत्येकं सम्भाव्यते न त्वेकस्य विमानाधिपतेः, तत्प्रातिपादनं व्यक्तशास्त्राक्षरानुपलम्भादिति, तथा परिवारभूतानां देवानां  
भवस्थितिः पूयगुप्ता नास्तीति लोकान्तिकानामिव सम्भाव्यते, तत्त्वं तु सर्वविदो विदन्ति इति ॥ ११ ॥

तथा—श्रीकल्पवृक्षस्य स्थविरावलीप्रान्ते<sup>१</sup> देवद्विगणिं नमंसाभि<sup>१</sup> इतिगाथा पुस्तकारुढकालीना उत प्राक्कालीना<sup>२</sup>, यदि पुस्तकारुढका-  
लीना तर्हि देवद्विगणिकृतत्वे स्यस्य नमस्करणमनुचितं, अन्यकृतत्वे तु सर्वा अपि स्थविरावलीगाथा अन्यकृताः कथं न भवन्ति इत्यरेका, यदि प्राक्का-  
लीना तदाऽप्रेतनानां नमस्करणं कथमुचितमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—इयं गाथा देवद्विगणिक्षमाश्रमणशिष्येणान्येन वा पाश्चात्येन केनापि स्थगिरेण कृतेति  
सम्भाव्यते, न चैव सर्वो अपि तत्कृताः सम्भावनीयाः, अनुपपद्यमानत्वाभावात्, गतिस्तु स्थितस्यैव चिन्तनीया प्रश्नमरतिवद्, यतः तत्राप्युमास्ताति-  
वाचकर्तृतायां प्रान्तगाथाकदम्बकैः तत्तमरारो हृश्यते, तेन तदेवान्यकृतं ज्ञेयं, न च सम्पूर्णग्रन्थोऽपि, तत्र विप्रतिपत्तेरभावात्, ग्रन्थस्यो-  
मास्तातिवाचककृतत्वेन सुप्रतीतत्वादिति ॥ १६ ॥

तथा—अन्यदशपूर्वधरः सिद्धान्तपाठेषु सौख्यं करोतीति प्रबोधस्याक्षराणि कुत्रापि ग्रन्थे सन्ति न वा<sup>१</sup>, यदि सन्ति तर्हि भगवतीसूने  
श्रीदेवद्विगणिक्षमाश्रमणकृतत्वेन नन्सूत्रस्यानुवादः कथं सद्गच्छते<sup>१</sup>, अगर्थे केचन प्रश्नयन्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अन्यदशपूर्वधरः सिद्धान्तपाठेषु

<sup>१</sup> भगिष्यति तदात्तेन्यादशेषेण प्रान्तभागो वाचकमस्कारान्वित, पाठशार्ग 'प्रकमस्तेन येनासा' नित्यादिरूप श्रीहरिमीयग्रन्थगतः सम्भाव्यते.

सौस्थ्यं करोतीति धृष्टप्रवादः सर्वदाऽपि वर्तते, तदक्षराणि तु हारिभ्यां दशवैकालिकवृत्तौ विचारामृतसङ्ग्रहे वा सन्ति, तथा च सति भगवत्सूत्रे देवद्विगणिक्षमाश्रमकृतनन्दीसूत्रस्यानुवादसांगत्यमाश्रित्यान्तिमदशपूर्वधरेण सिद्धान्तपाठेषु सम्बन्धपरवर्त्तादिरूपं सौस्थ्यं कृतं, सूत्रसङ्क्षेपस्तु देवद्विगणिक्षमाश्रमणेन कृत इति सम्भाव्यते, विशेषस्तु तत्त्वविद्वेद्य इति ध्येयम् ॥ १७ ॥

तथा—शुष्कं लशुनं सचित्तं वाऽचित्तं वा श्रद्धीयते ; यद्यचित्तं तर्हि तथाविधकारणे तदौषधं आपर्वगो कार्यते न वा ? इति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—शुष्कं लशुनमचित्तं सम्भाव्यते, तेन तथाविधकारणे आपर्वगस्यापि करणे ऐकान्तिको निषेधो नास्तीति मन्तव्यम् ॥ १८ ॥

तथा—सूक्ष्मनिगोदाना सामान्येन षट्पञ्चाशदधिकशतद्वयावलिकारूपमायुरुक्तमस्ति, तत्किं पर्याप्तस्यापर्याप्तस्य वा ? , यदि पर्याप्तकस्य तर्ह्यपर्याप्तकस्य न्यूनं सम्भाव्यते, एतच्चायुक्तम्, एतस्मान्न्यूनस्यायुपः शाल्वेऽनभिधानाद्, अथापर्याप्तकस्य, तर्हि पर्याप्तकस्याधिकं सम्भाव्यते न वा ? इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—जीवाभिगमप्रज्ञापनादौ सूक्ष्मनिगोदाना अपर्याप्तानां च जघन्यतोऽप्युत्कर्षतोऽपि च क्षुल्लकभवग्रहणलक्षणविशेषं विनाऽन्तर्मुहूर्त्तस्थितेरभिधानात्तद्वृत्तौ न पर्याप्तान्तर्मुहूर्त्तपेक्षयाऽपर्याप्तान्तर्मुहूर्त्तस्य लघुतया भणनात्, क्षुल्लकभवग्रहणस्य च कर्मग्रन्थवृत्त्यादौ सर्व्वजीवाल्यजीवितत्वेन प्रतिपादनादेवमवसीयते—यत्सूक्ष्मनिगोदानामपर्याप्तानां षट्पञ्चाशदधिकद्विशतीमितावलिकाप्रमाणक्षुल्लकभवग्रहणरूपं सर्व्वजघन्यमायुः, उत्कर्षतस्तु किञ्चिदधिकमपीति । पर्याप्तानां तु जघन्यतोऽप्युत्कर्षतोऽपि च सुतरामधिकमेवेति, अनयैव च रीत्या पर्याप्तापर्याप्तिस्थितिप्रतिपादकसूत्रमपि सुस्थं भवतीति ॥ १९ ॥

तथा—पर्युपितद्विदलपोलिकादिनिषेधविषये यदि परेषां दर्शनार्हग्रन्थतान्यक्षराणि भवन्ति तदा प्रसाधानीति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—बृहत्कल्पपञ्चमोद्देशकवृत्तिप्रान्ते पर्युपितपूलाकादिषु लालासम्भूच्छनात्तद्धेतुका च साधूना संयमनिराधना प्रोक्ताऽस्ति, सा च लालाया जीवमयत्व-

सन्तरेणासम्भविनीत्यतः सा जावमर्थीत्यवसीयते, ते च जीवा द्वेन्द्रिया इति वृद्धसम्प्रदायः, 'पुलिकादिष्विति' तत्रादिशब्दाद्विदलादिकमपि

गृह्यते, तेन तत्रापि तेषामेव जीवानामुत्पत्तिरवसीयत इति ॥ ६० ॥

तथा--वैताल्ये विद्याधरमेखलाया सम्प्रति साध्यादिचतुष्टयं सम्भाव्यते न वा? इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं--वैताल्यमेखलाया साध्यादिचतुष्टयं वाध-  
काभावात् सम्भाव्यत इति ॥ ६१ ॥

तथा--'सथारुच्चारविहि' इत्यादिश्राद्धप्रतिक्रमणसूत्रस्य वृत्त्यादौ तथा आवश्यकवृत्त्यादौ च श्राद्धपञ्चमप्रतिमाऽधिकारे दिवैव  
ब्रह्मचारी न तु राज्ञावित्युक्ततया लिखितमस्ति, परमावश्यकवृत्त्यादौ तद्विलोक्यमानं नोपलभ्यते, तत्कथमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं--'दिव्यंमचारि  
रईपरिमाणकडे? इत्थस्त्राणि आवश्यवृत्तौ सन्तीति ॥ ६२ ॥

तथा--भगवत्यामसुराद्यधिकारे "नदीसरं दीवं पुण गया य गमिस्सन्ती" त्युक्तमस्ति, तस्य कोऽभिप्रायो? , यतोऽसङ्ख्यातमे द्वीपे  
तेषामवस्थानं जम्बूद्वीपे चाऽऽगमनमुक्तमस्तीति--प्रश्नोऽत्रोत्तरं अयमभिसन्धिः सम्भाव्यते--यदसुरादीनां देवानां तीर्थकृतकल्याणकाद्यष्टाहिकोत्सवकर-  
णादिकार्यार्थं गमने नन्दीश्वरं द्वीप यावदेव, न तु परतो, यत्त्वन्नाऽऽगच्छतामितः प्रतिगच्छतां च तेषामध्वनि तत्तद्द्वीपासन्नतया गमनमागमनं वा  
सम्भवति तदत्र न विवक्षितमिति ॥ ६३ ॥

तथा--'चंदे अमिवाङ्गिण अ' इत्यादिवर्षपञ्चात्मकस्य युगस्य साम्प्रतममुकः संवत्सरो वर्त्तत इति ज्ञातुं शक्यते न वा इति  
प्रश्नोऽत्रोत्तरं--साम्प्रतं तृतीयोऽभिवाङ्गितः संवत्सरः प्रवर्त्तमानोऽस्तीति ज्ञायते, तथाहि--श्रीमहावीरस्य निर्व्वाणं द्वितीयचन्द्रसंवत्सरे कल्पसूत्रा-  
दाबुक्तमस्ति, संवत्सरश्च श्रावणादिः, यतः--"सावणवहुलपडिवण, वाळवकरणे अभीइनकवने। सद्धत्थ पढमसमण, जुगस्स आइं विआणा-

हित्ति ॥ १ ॥” उयोतिष्करण्डकप्रकीर्णकवचनादन्यूनपञ्चवर्षात्मिकानां सर्वेषां युगानामादिभूतः श्रावण एव सम्भवति, तथा च सति तदवयवभूतस्य संवत्सरस्यापि श्रावणादिक्रत्वमेव सङ्गतिमङ्गतीति, तेन श्रीवीरनिर्वाणसंवत्सरसत्कश्रावणमासादारभ्य गणने चतुर्भिः संवत्सरैर्युगपरिसमाप्तिः, तदनन्तरं च पञ्चभिः संवत्सरैर्युगमिति गणनया षड्विंशत्यधिकचतुश्शतीमितानि युगानि व्यतिक्रान्तानि, तदानीं च चतुष्पष्ट्यधिकषोडशशतीमितो विक्रान्तसंवत्सरो व्यतीतः, ततोऽपि च ताभ्यां द्वौ चन्द्रसंवत्सरावतीताविति गतश्रावणादारभ्य प्रवृत्तः साम्प्रतं तृतीयोऽभिवर्द्धितः संवत्सरः प्रवर्त्तमानोऽस्तीति विचार्यमाणं चेतस्यौचितीमञ्चति । यत्तु युगमध्ये पौष एव वर्द्धते तत्कथमैषोऽब्दे आपादो वृद्ध इति, तल्लौकिकटिप्पनानुसारेण सर्वेषां मासानां वृद्धिदर्शनात् मासवर्द्धनमनियतमिति न काप्याशङ्कति सम्भाव्यते, निश्चितिस्त्वत्रापि सर्वविद्वेचेति ॥ ६४ ॥

तथा—योगशास्त्रवृत्तिगतवसुराजाधिकारे चारणश्रमणानां निशि गमनागमनं दृश्यते, अतो निशि चारणश्रमणा व्योम्नि गमनागमनं कुर्वन्ति न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—चारणश्रमणा निशि व्योम्नि गमनागमनं कुर्वन्ति, श्रीपार्श्वनाथचरित्रादावपि तथैव दर्शनादिति ॥ ६५ ॥

तथा—सिद्धिशिलाया उपरि सिद्धव्यतिरिक्ता जीवाः सन्ति न वा ? यदि सन्ति तदा के सन्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—एकेन्द्रिया जीवाससन्तीति ॥ ६६ ॥

तथा—गंगानदी षष्ठारके स्थपथप्रमाणा भविष्यति न वा ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—गंगा यथोक्तप्रमाणा भविष्यत्यन्यास्तु चतुर्दशसहस्रमिता नद्यः पृथिव्या भूयस्तरतापवत्त्वेन शोषं यास्यन्तीति जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिवृत्ताविति ॥ ६७ ॥

तथा—जम्बूद्वीपमध्ये चतुर्दशलक्षपट्पञ्चाशत्सहस्रमिताश्चैव नद्यः, तदा महाविदेहमध्यविजयविभेदविधात्र्यः षट् नद्योऽन्याः प्रतिवैताल्य-मध्यगोन्मशानिमशाऽभिधाना नद्यश्च सङ्ख्यामध्ये कथं नागता इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अत्र पूर्वाचार्याणां विवक्षैव प्रमाणं, जम्बूद्वीपसंग्रहणीकारेण तु साधिकसप्तदशलक्षमिता नद्यो जम्बूद्वीपमध्ये संकलिताः सन्तीति ॥ ६८ ॥



तथा—अस्तंगते दिवानाये जलं रुधिरतुल्यमन्नमामिपुतुल्यमेतज्जिनागमे कापि वर्त्तते न वा ? इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अस्तंगते दिवानाय इत्यादिकं पुराणोक्तं न त्वात्सीय, रात्रिभोजनदोषस्त्वात्सीयागमे महोनेवोक्तोऽस्तीति ॥ ६९ ॥

तथा—चतुर्विंशतिदण्डकमध्ये भुवनाधिपानां दण्डकदशक प्रोक्तम्, अपरेषां व्यन्तरादिकानां दण्डक एकैकः प्रोक्तस्तत्र किं कारणमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अत्र सूत्रकृतां विवक्षैव प्रमाणमिति ॥ ७० ॥

तथा—केवलनन्दीयोगोद्धाही यदि देवान् वन्दापयति तदा शुद्धयति नवा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अत्र नन्दीयोगोद्धाहीनो योगादौ देववन्दनं पन शुद्धयत्युपधाने तु नेति ॥ ७१ ॥

तथा—दैवसिद्धप्रतिक्रमणे देववन्दनानन्तरं यानि चत्वारि क्षमाश्रमणानि दीयन्ते, तत्र प्रथमक्षमाश्रमणेन भगवन्निति कः सम्बोध्य वन्द्यते ? तत्र तीर्थंकर इत्येके, धर्माचार्य इत्यन्ये, कश्चिच्च देवान् वन्दित्वा चतुरादिक्षमाश्रमणैः श्रृंगुरुन् वन्दत इति प्रतिक्रमणहेतुगर्भोक्तानुसारतो गुरुरेव वन्द्यो, गुरुस्तु यस्य पुरस्तात् प्रतिक्रमणादिकं विधीयमानमस्ति स इत्यभिधातीत्यत्र कः पक्षो न्याय्यः ? इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—प्रथमक्षमाश्रमणेन तीर्थंकर धर्माचार्य च सम्बोध्य तद्वन्दनं विधीयत इति ॥ ७२ ॥

तथा—पौषधिकश्राद्धो द्वितीयदिने प्राभातिकप्रतिक्रमणे द्व्यचरणादिप्रत्याख्यानिमिवागामिविषयं देशवकाशिकमपि कस्मान्न कुरुते ? अथ प्रत्याख्यातसाधव्यापारस्तदागामिविषयमपि न कुरुत इति चेत्तर्हि सामायिकस्यः कथं कुर्यादिति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अत्रार्थेऽव्यवच्छिन्नवृद्धपरम्परैव गतिर्न तु ग्रन्थाक्षरावगतिरिति ॥ ७३ ॥

तथा—“जइआ होही पुच्छा, जिणाण मगंमि उत्तरं तइआ । इक्कस्स निगोअस्स य, अणंतभागो अ सिद्धिगओ ॥ १ ॥”  
इत्येतद्वचनः किं बादरनिगोदोपेक्षिकमुत सूक्ष्मनिगोदोपेक्षिकं ? सूक्ष्मनिगोदोपेक्षिकत्वे व्यवहार-  
राशिमनुप्राप्ता अपि केचन जीवा न मुक्तिं कदाचिदास्यन्तीति महत्यनुपपत्तिः कथं निरस्येति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—एकस्य निगोदस्यानन्ततमो  
भागो मोक्ष गत इति सामान्येनोक्तमस्ति, न तु सूक्ष्मनिगोदस्य बादरनिगोदस्य चेति विवेकेन, परमुभयथापि न कश्चिद्विशेषो यतो व्यवहारराशिं  
प्राप्ताः सर्वे जीवा मोक्षं यान्तीति नियमो नास्ति, तथा च सति श्रीमदुद्भावितानुपपत्तिरप्यनवकाशेति ॥ ७४ ॥

तथा—श्राद्धः सामायिकं कुर्वन् ‘दुविहं ति विहेणं’ इत्यादिना सावद्यव्यापारसम्बन्धिकरणकारणे एव निषेधयति न त्वनुमोदनं, तथा च  
सति सामायिकस्योऽसौ सावद्यव्यापारं मनोवाङ्मयानामन्यतरेण केनाप्यनुमोदयन् सामायिकं खण्डयति न वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सामाधिकस्थः  
श्राद्धो मनोवाङ्मयैः सावद्यव्यापारमनुमोदयन्नपि सामायिकं न खण्डयति, तद्विषयकविरतेरभावात्, यदि च नानुमोदयति तदा भूयो लभमग्  
भवतीति ॥ ७५ ॥

तथा—षाण्मासिकयोगादौ दत्तिप्रत्याख्यानं कार्यते, तर्त्तिकं ‘सपाणभोअणं पंचदत्तिअं आयंविअं पच्चक्खाइ’ इत्याचाम्हादिस्थाने पठ्यते,  
अथवा ‘सपाणभोअणं पंचदत्तिअं एकासणं पच्चक्खाइ’ इत्येकाशनकादिस्थाने पठ्यते इति : प्रश्नोऽत्रोत्तरं—‘सपाणभोअणं पंचदत्तिअं  
पच्चक्खाइ इत्येवंरूपं प्रत्याख्यानं गुरुपरम्परया पठ्यमानमुपलभ्यते, न त्वन्यथेति ! ॥ ७६ ॥

तथा—गाङ्गेयभट्टानां गतिचतुष्टयमाश्रित्य सर्वाग्रसंख्या अनया रीत्या तेषामयं लक्षतमो भेद इति च प्रसाद्यमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—  
नरकगतौ सर्वप्रवेशनकेष्वसंयोगिकान् सप्त भट्टान् रत्नप्रमादिगतद्विकादिसंयोगसत्कभङ्गैर्द्विप्रवेशनकादिगताद्विकादिसंयोगंश्च गणयित्वा यथाऽऽ-

यातभङ्गानेकीकृत्य भङ्गसर्वाग्रमानय, परं प्रतिप्रवेशनकं भिन्नं भिन्नं सर्वोप्रमायाति, प्रवेशनकभङ्गसम्बन्धस्तु न सम्भवतीति सम्भाव्यते, एवं गतित्रयमाश्रित्यापि यथासम्भव ज्ञेयं, किं चैतद्विषये भगवतीसुत्रद्वयोः कारणं दर्शितं नास्ति, तेन लक्षतमो भङ्गो व्यक्त्या न लिखितुं शक्यत इति ॥ ७७ ॥

तथा—‘अन्ने विति इगेण’ इत्यादिभाष्यगथावचूर्णौ गथात्रयमस्ति, तदर्थः प्रसादनीय इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—चैत्यवन्दनायामेकं शक्रस्तवं तद्वह्यं च सुखोन्नेयं मनसि सम्प्रधार्य शक्रस्तवत्रयादिप्रतिपादनपरं गथात्रयं भाष्यावचूर्णौ उक्तमस्ति, तस्यायमर्थः—ईर्योपयिकायाः पूर्वं वा प्रणिधानान्ते वा शक्रस्तवभणने ‘द्विगुणचैत्यवन्दनान्ते वा इति’ द्वितीयचैत्यवन्दनान्ते वा शक्रस्तवभणने त्रयः शक्रस्तवा भवन्ति, अत्रैकवारः देववन्दनसम्बन्धि शक्रस्तवद्वयं त्रिष्वपि पक्षेषु सम्बन्धीयं, प्रसिद्धत्वाच्च गथायां न सङ्गृहीतं, अथैकवारदेववन्दने शक्रस्तवद्वयमिति पूर्वं पश्चाच्छक्रस्तवाम्या ते चत्वारो भवन्ति, द्विगुणितदेववन्दने द्विवारदेववन्दने वा पूर्वं पश्चाद्वा शक्रस्तवे सति चत्वार इति ॥ ७८ ॥

तथा—श्रीवज्रसेनशिष्याश्चन्द्रादयः स्थविरावल्यां कथं नेक्ताः ? अन्ये शिष्यास्तूक्ताः, ते त्वात्मपट्टावल्यां न सन्ति, तत्किं कारणं ? तत्परम्परा च कथं मिलतीति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यदा माधुरी वालभी चेति वाचनाद्वयं जातं, तदा स्थविरावल्या अपि पाठभेदो जातः सम्भाव्यते, ततः कस्याञ्चिद्वाचनायां केचित् श्रीवज्रसेनसूरिशिष्याः श्रीचन्द्रसूर्यादय उक्ता भविष्यन्ति, कस्याञ्चिच्च नेति, ततः परम्परा न द्रुष्यति, कथमन्यथाऽऽत्मीयपट्टावलयनुक्रमेण पूर्वोक्तार्थः स्वस्वग्रन्थेषु तत्तदाचार्याणां नामान्यलिखन्, ते हि बहुश्रुताः पूर्वोक्तग्रन्थानविमृश्य न लिखन्तीति ॥ ७९ ॥

## अथ—महोपाध्यायश्रीभानुचन्द्रगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च

यथा—सन्ध्याप्रतिलेखनाया पश्चाद्धर्मध्वजप्रतिलेखनं विधीयते, प्रभातप्रतिलेखनायां च पूर्वं, तत्र को हेतुरिति : प्रश्नोऽत्रोत्तरं—ओघ-  
निशुक्तियतिदिनचर्यादिषु तयोक्तिरेव हेतुरिति ॥ ८० ॥

तथा—यस्य श्राद्धस्य प्रथमोपधानस्य वहनानन्तरं द्वादशाब्दानि जातानि सन्ति, द्वितीयस्य तु किञ्चिन्न्यूनानि, स प्रथममेवोपधानं  
पुनर्हस्त्युत द्वे अपीति : प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यदि मनः स्थाने तिष्ठति तदा प्रथमं द्वितीयं च परावृत्य वहति, तद्वशतस्तु यस्य द्वादशवर्षाणि तत्परावृत्य  
वहतीति ॥ ८१ ॥

तथा—प्रत्युपसमये स्थापनाचार्यजोक्तस्य स्थापनाचार्यप्रतिलेखनातः पूर्वं प्रतिलेखनं, सन्ध्यायां तु पश्चात्, तत्र को हेतुरिति :  
प्रश्नोऽत्रोत्तरं—स्थापनाचार्यजोक्तस्य प्रातः सन्ध्यायां च पूर्वं पश्चाद्वा प्रतिलेखने शाले निधमो नास्तीति ॥ ८२ ॥

तथा—उपधानचतुष्टयस्य मालारोपणस्य चान्तरकालः क्रियानिति : प्रश्नोऽत्रोत्तरं—मुख्यवृत्त्या प्रथमोपधानप्रवेशानन्तरं द्वादश-  
वर्षातिक्तमे तच्चतुष्टयं गच्छति, तेन ततोऽर्धगेव मालारोपणं निधेयमिति ॥ ८३ ॥

तथा—चक्रनर्त्तिनो राज्याभिषेकादनु पुत्रो भवति न वेति : प्रश्नोऽत्रोत्तरं—चक्रनर्त्तिनो राज्याभिषेकादनु पुत्रो भवतीति श्रीअजितच-  
रित्रादौ प्रोक्तमस्तीति ॥ ८४ ॥

तथा—तीर्थङ्करा एकस्मिन् समये कति सिध्यन्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—एकस्मिन् समये उत्कर्षतः चत्वारस्तीर्थङ्कराः सिध्यन्तीति सिद्धपञ्चा-  
शिकादौ उक्तमस्तीति ॥ ८५ ॥

## अथोपाध्यायश्रीविवेकहर्षगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च

यथा—रात्रिभोजनप्रत्याख्यानवताऽन्नादिविषये रात्रिसिद्धदिवाभुक्तादिवचतुर्मङ्गलां त्रिभङ्गी वज्र्या तथा पक्वान्नेऽपि सा वज्र्यैव नवा १, आधेऽन्नादिविवेक न तथा तत्र तद्वचवहारोऽद्यथावत् तत्र किं निदानमिति १, द्वितीये आरम्भसाम्येऽप्यन्नादिवैव तद्वज्र्यता न पक्वान्नेष्विति किं १, अथ जलश्लेषाभाव एव तत्र तद्दोषपरिहारनिदानम्, अत एव तस्य मासाद्यवविकल्प्यता कालमानाद्यपीति चेत्तदा रात्र्युषितकल्पस्य कर्ममादेरपि रात्रिसिद्धस्य किमकरण्यताव्यवहारः १ तेनारम्भादिदूषणसाम्येऽप्यन्नपक्वान्नयो रात्रिसिद्धवर्जनीयतायां पण्डितैरुक्तमेदं श्रेतः संशयाकुलमातनेतीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं— रात्रिसिद्धदिवाभुक्तादिका सा शास्त्रे क्वापि दृष्टा नास्तीति तेन रात्रिभोजनप्रत्याख्यानवतां तामाश्रित्य वर्ज्यता का १, कश्च पक्वान्नदृष्टान्तोऽपि १, स्वयमेव सम्यक्तया पर्यालोच्यं, परं रात्रिरन्धने महानारम्भो भवतीति श्रद्धैस्तद्वारणार्थं स्वशक्त्या रात्रिरन्धनं वर्जनीयं, न तु रात्रिभोजनप्रत्याख्यानमङ्गमयेन, ततो न कोऽपि पण्डितैर्मेदः, साधुमाश्रित्य तु दिवागृहीतरात्रिभुक्तादिका चतुर्मङ्गी शास्त्रे प्रोक्ताऽस्ति, न तु श्रान्दानाश्रित्येति ध्येयम् ॥ ८६ ॥

तथा—सन्धानक्षिसाद्रिनिम्बुकोदेराद्र्द्रताव्यपगमः कथं भवतीति १ प्रश्नोऽत्रोत्तरं—क्षारक्षिसाद्रिनिम्बुकोदेर्वर्णरसगन्धादिपरावृत्तावा- तपत्रयलगाभावेऽप्यनार्द्रता भवतीति वृद्धव्यवहारः ॥ ८७ ॥

तथा—पद्मचरित्रे लक्ष्मणस्य तुर्यपृथ्वीगमनमुक्तं, तत्र च परमाधार्मिककृतवेदना च 'सो अग्निकुण्डमज्ज्ञाओ' इत्याद्यन्त्यपर्वदशम-

गथायां प्राक्तेः कथं सङ्गच्छते ? ' तिसु परमाहम्भिअकयावि ' इत्यदिसङ्ग्रहणिगाथाया विसंवादादिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—' तिसु परमाहम्भिअक-  
यावि ' इति सङ्ग्रहणीवचः प्रायिकमिति न काप्यनपत्तिरिति ॥ ८८ ॥

तथा—पद्मचरित्रे जनन्या जैनरथकर्षणाभिग्रहाप्राप्तिदूतनिर्गतापसाश्रमावस्थितजनमेजननृपसुतामदनवल्यनुरागादि सकलचरित्रं  
हरिषेणचक्रिणः प्रोचे, श्रीउत्तराध्ययनवृत्तिश्राद्धविध्यादौ च महापद्मचक्रिचरित्रमिति कथमेतेषां सङ्गतिः ? विचारणया तु रावणस्य तत्कारित-  
प्रासादस्य दर्शनेन हरिषेणसांनिध्यमेव सङ्गतिमङ्गति, परमन्यपक्षे बहुग्रन्थसंभतिरिति बह्वारेका समुत्पद्यत इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अत्र मतान्तर-  
मवसीयत इति ॥ ८९ ॥

तथा—पाण्डवचरित्रे आश्विनसिताष्टम्यां कृष्णजन्मोक्तं नेमिचरितादौ लोकोक्तौ च श्रावणासिताष्टम्यामिति कथमनयोः सङ्गतिरिति ?  
प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अत्रापि मतान्तरं ज्ञेयमिति ॥ ९० ॥

तथा पाण्डवचरित्रे जरासन्धसत्कहिरण्यनाभसेनानी भीमेन हतो हैमीयनेमिचरितादौ चानाधृष्टिसेनान्या हत इति कथं मिलतीति ?  
प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अत्रापि मतान्तरमवसेयमिति ॥ ९१ ॥

तथा—साम्प्रतीनसकलेन्द्राणामेकावतारित्वप्रवादोऽस्ति, पद्मचरित्रे च शीतेन्द्रस्य तद्भवव्यतिरिक्ता अन्ये त्रयो भवाः प्रोक्तास्सन्तीति  
प्रश्नोऽत्रोत्तरं—साम्प्रतीनाः सर्वेऽधीन्द्रा एकावतारिण एवेत्यक्षराणि दृष्टानि न सन्तीति ॥ ९२ ॥

तथा—पाण्डवचरित्रे षोडशसर्गेऽष्टादशश्लोके ' छेकेभ्यस्तादृशाः स्त्रिय ' इत्यत्र तादृशा इतिशब्दे आप्रत्ययः कथमानीतः?, टक्प्रत्ययस्या-

त्रागमने ईषप्रत्ययस्यैवोक्तत्वादिति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—दृक्प्रत्ययान्तात्तादृशशब्दीषप्रत्ययभावेऽपि तादृश इति किञ्चिन्ताद्वागुच्यार्थमतेनापुप्रत्ययागमे रूपसिद्धिरिति न कोऽपि दोष इति ॥ ९३ ॥

तथा—रक्तश्चेतसैन्धवयोरनित्तत्वे कथं पङ्क्तिभेद इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—श्राद्धविध्युक्तरक्तश्चेतसैन्धवयोर्थेकोत्पत्तिस्थानकत्वं तदा सनित्तत्वं समानमेव, परमाचरणया श्रुतः सैन्धवो योऽनित्तत्वेन व्यवह्रियमाणोऽस्ति न रक्त इति, किञ्च रक्तश्चेतयोरप्येकमेवोत्पत्तिस्थानमित्यपि नियमो ज्ञातो नास्ति, आसन्नलव्युद्भवस्यापि रक्तस्य सम्भवादिति ॥ ९४ ॥

तथा—जिनालये जिनदृष्टौ स्वस्य तिलके क्रियमाणे किं पटान्तरं क्रियते नवा इति : प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अत्र पटान्तरं विना तिलकं न क्रियत इत्यक्षराणि न सन्तीति ॥ ९५ ॥

तथा—श्राद्धाः प्रतिक्रमणं कुर्वाणा वन्दनकदानावसरे किं मुखवस्त्रिकां शुद्धभूमौ मुञ्चन्ति : किमुत पादप्रोच्छन्नोपरि मुखवस्त्रिकां मुनत्वा वन्दनकानि ददतीति : प्रश्नोऽत्रोत्तरं—प्रतिक्रमणं कुर्वाणाः श्राद्धा वन्दनकदानावसरे मुखवस्त्रिकां शुद्धभूमौ रजोहरणोपरि वा मुञ्चन्ति नान्यत्रेति विधिरिति ॥ ९६ ॥

तथा—कालिकजलमभक्ष्यमिति कथमुपोषितस्य कल्पत इति : प्रश्नोऽत्रोत्तरं—आरनालापरपर्यायं कालिकजलं यद्यन्यान्यदिने तत्रोष्णावश्रावणक्षेपः कृतो भवति तदाऽभक्ष्यं न भवति, तेनोपोषितस्य साधोः शुद्धोष्णजलालम् उक्तत्वात्कल्पते, राजिकादिसम्पृक्तं तु नेत्येवमवश्रावणमप्युक्तत्वात्कल्पते, तस्याहाररूपता तु न भवति, तदभिप्रायाभावादिति ॥ ९७ ॥

तथा—‘तेजं तीता अद्धा, अणागयद्धा अणंतगुणा, इत्थनया गाथयाऽतीताद्धामपेक्षयानागताद्धाया अनन्तगुणत्वं भगवत्यां च

तस्यास्तादृशेक्षया समयातिरिक्तत्वं तत्कथमिति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—भगवतीवृत्तौ १२ शतके २ उद्देशके जयन्तीप्रश्नाधिकारे ‘ जयन्ति । सीता  
णागयाओ अद्धाओ दोऽवि तुल्लाओ ’ इत्यनेनातीताद्धाया अनागताद्धायाश्च समत्वोक्तौ यत्पुनरिदमुच्यते अतीताद्धातोऽनागताद्धाऽनन्तगुणेति  
तन्मतान्तरमवसीयते, यच्चानागताद्धायाः समयातिरिक्तत्वं तद्वर्त्तमानिकसमयापेक्षयोक्तं, तदनपेक्षायां तूभयोः समत्वम्, अथो (त्रो) भयोः समत्वो-  
पपत्तिरनागताद्धाया अनन्तगुणो ( गत्वो ) पपत्तिश्च तत एवावसेये इति ॥ ९८ ॥

तथा—निशीथचूर्ण्यार्थचूर्ण्यपद्युषणाकल्पचूर्ण्यः किकालीनैः कैः कीदृशैः कियतश्चुतेश्चाचार्यैः प्रणीतास्सन्तीति ? प्रश्नोऽ-  
त्रोत्तरं—एतासां चूर्णीनां मध्ये निशीथचूर्णिकर्तुरभिधानं जिनदासगणिमहत्तर इति तत्प्रान्ते प्रोक्तमस्ति, परमपरासां चूर्णीनां कर्तुरभिधानं  
कालनैयत्यं च नोपलभ्यत इति ॥ ९९ ॥

तथा—निशीथचूर्ण्यार्थदीनां प्रामाण्यव्यवस्थापने ‘ निकलोभा निक्कपा ’ इत्यादिसमवायाङ्गवृत्त्येकदेश एव शरणमुतान्यदप्यस्तीति ?  
प्रश्नोऽत्रोत्तरं—निशीथचूर्ण्यार्थदीनां प्रामाण्यं तु बहुषु चिरन्तनग्रन्थेषु सम्मतिदर्शनादविगानमेवेति ॥ १०० ॥

तथा—व्यवहारचूलिका किकर्तुकेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—साऽमुककर्तृकेति ज्ञातं नास्तीति ॥ १०१ ॥

तथा—“ उदयंमि जा तिही सा, पमाणमिअराइ कीरमाणीए । आणाभंगणवत्था, मिच्छत्त विराहणं पावे ” ॥ १ ॥ इति वृद्धसम्प्र-  
दायगाथां ‘ क्षये पूर्वा तिथिः कार्ये ’ त्याज्यमास्वातिवाचकप्रणीतश्लोकं चान्म्युपगच्छनः प्रसह्य तदर्थप्रामाण्याङ्गीकारणे किञ्चिद् युक्त्य-  
न्तरमप्यस्ति नवेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—‘ उदयंमि जा तिही सा ’ ‘ क्षये पूर्वा तिथिः कार्यो ’ एतयोः प्रामाण्यविषये श्राद्धविधिः सुविहिताविच्छिन्न-



परम्परा च प्रमाणमिति ज्ञातमस्ति, तथा “ आदित्योदयवेलाया, या स्तोकापि तिथिर्भवेत् । सा सम्पूर्णोति मन्तव्या, प्रभूता नोदयं विना ॥ १ ॥

इति पारासरस्मृत्यादावप्युक्तमस्तीति ॥ १०२ ॥

तथा—भगवत्यां श्राद्धानां पञ्चदशकर्मदाननिषेधे श्रोक्ते तत्सेवनं कल्पते न चेति ! प्रश्नोऽत्रोत्तरं—श्राद्धानां पञ्चदशकर्मदाननिषेध औत्सर्गिको ज्ञेयः, अपवादपदे तु परिहाराशक्तौ शक्यालार्थानामिव तानि कल्पन्तेऽपीति ॥ १०३ ॥

### अथ उपाध्यायश्रीविजयराजगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च ।

यथा—शक्नादयो देवाः सम्भोगं कर्तुं कामा देवलोकाविमाने देवीभिः परिचारणां कुर्वन्ति विमानादन्यत्र वा ? तदाश्रित्य प्रसाद्यमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—शक्नादयो देवा देवलोके स्वस्वधर्मसभायां देवीभिः सह परिचारणां न कुर्वन्ति, तत्र माणवकनैत्यस्तम्भसमुद्रकस्मितजिनदंष्ट्रा-शातनाभयादित्यभिप्रायः प्रज्ञासिद्धशमशतकपञ्चमोऽध्यायः—सिद्धायतनव्यतिरिक्तस्थाने परिचारणां कुर्वन्तीति सम्भाव्यत इति ॥ १०४ ॥

तथा—श्रीमदुत्तराध्ययनप्रथमाध्ययने ऊर्ध्वरथिकशब्दो रूढो यौगिको वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—ऊर्ध्वरथिकशब्दोऽन्वर्थव्युत्पत्तिरहितत्वेन हेमव्याकरणानुसारेण रूढो नाम न धातुजमिति शक्यायनमतेन तु सर्वनाममध्यपतितत्वेन यौगिकोऽपि च भिक्षाचरवाचकोऽस्तीति ज्ञायत इति ज्ञेयम् ॥ १०५ ॥

तथा—दृढपत्रकाध्ययने आनंजनीभावशब्दोऽस्ति तदर्थः प्रसादनीय इति ! प्रश्नोऽत्रोत्तरं—‘ आनंजनीभावः सातत्यभवने ’ इति सिद्धा-न्तविषयपदपर्यायपुस्तोऽस्ति, लिङ्गानुशासनविवरणे तु संतारपर्यायतया ज्ञातोऽस्तीति ॥ १०६ ॥

## अथ उपाध्यायश्रीधर्मविजयगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च ।

यथा—श्रीतीर्थकृता पूर्वभवसङ्ख्यां किं प्राथमिकसम्यक्त्वलाभापेक्षिकमुत सम्यक्त्वलाभमात्रापेक्षिकं ? , प्राच्यपक्षे श्रीऋषभदेवस्य, त्रयोदश भवाः कथं सङ्गच्छन्ते? यतो भगवतः श्रीयुगादिदेवस्य धनसार्थवाहभवात्प्राक् प्रथमसम्यक्त्वलाभस्तदनन्तरं चानन्तः कालोऽगमत्, अन्य-  
थैकसामयिकोत्कृष्टसङ्ख्याकसिद्धान्तःपातिता भगवतो न स्यात्, तथा चोक्तं नन्द्यध्ययनटीकायामुक्तद्वारे—‘येषां सम्यक्त्वपरिग्रहानामनन्तः कालोऽगमत् तेषामष्टोत्तरं शतं सङ्ख्यातकालपतितानां च दशकं दशकं अप्रतिपतितसम्यक्त्वानां च चतुष्टयं, यदुक्तम्—“ जेसिमणतो कालो, पडिवाओ होइ तेसि अट्टसयं । अप्पडिवडिण् चउरो, दसगं दसगं च सेसाणं ’ ॥ १ ॥ इत्यादि । द्वितीयपक्षे तु श्रीऋषभदेवस्यान्येषामपि च तीर्थकृतां यथोक्तैव भवसङ्ख्या कुतः ? , अन्तराऽपि सम्यक्त्वान्तेः प्राप्तेश्च जातत्वादिति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—‘ समत्तपढमंभो, बोद्धवो वद्धमाणस्स ’ इत्याद्यावदयकनिर्युक्त्यादिवचनानुसारेण श्रीवीरस्य तत्समानषड्विपतितया चापरेषामपि तीर्थकृतां प्रथमसम्यक्त्वलाभापेक्षया भवगणनं ज्ञायते । या तु तत्र श्रीऋषभसिद्धिमाश्रित्य विप्रतिपत्तिः सा निरुपक्रमायुषोऽपि बाहुबलेः षड्लक्षपूर्वार्वायुःप्रक्रमणवदुत्कृष्टावगाहनासिद्धैकसामयिकाष्टशत-  
सिद्धाश्चर्य एवान्तर्भावेन निराकरणीयेति सर्वं सुस्थमिति ॥ १०७ ॥

तथा—तीर्थकुन्मातरश्चतुर्दशसु स्वप्नेषु दशमस्वप्ने पद्मसरः पश्यन्ति, तत्किं पद्मोपलक्षितसरोवरमात्रमुत मानससरोवरवत्पद्मसरोऽपि द्वीपान्तरे क्वाप्यस्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—पद्मैरुपलक्षितं सरः पद्मसर इति व्याख्यातमस्ति, द्वीपान्तरे तु तन्नामकं सरो नास्तीति ॥ १०८ ॥

तथा—श्रीस्थूलभद्रः कोशागृहावस्थितावाहारमपि तदीयं गृहीतवानिति जनप्रवादः, परं शय्यातरपिण्डत्वेन कथं न जनप्रवाद-

विन्ययनमिति : प्रश्नोऽत्रोत्तरं—श्रीस्थूलभद्रस्य कोशागृहेऽवस्थितिर्गममव्यवहार्यनुज्ञातत्वेन यथा नानुविता तथा शय्यातरपिण्डग्रहणमपि ज्ञेयं, ते हि सातिशयज्ञानवत्तया त्रैकालिकहितं विमृश्यैव सर्वमप्यनुनान्त इति ॥ १०९ ॥

तथा—प्रज्ञापनोपाङ्गे प्रथमपदे 'से किं तं उरपरिसर्पणथलयरपंचिदितिरिक्त्वजोणिआ?', २ चउन्विहा पक्वत्ता, तजहा—अही अयगरा आसालिआ महोरगा' इत्यादि अत्राऽऽसालिकाया उरःपरिसर्पतामुक्त्वाऽनुपदमेव 'से किं तं आसालिआ' इत्यादि तन्निर्देशसूत्रे 'जहन्नेणं अंगुलस्स असलेज्जभागमेत्ताए ओगाहणाए उक्कोसेणं बारसजोअणाइ' मित्यादिना तस्या एवोत्कर्षतो द्वादशयोजनानि देहमानमुक्तमिति कथं सङ्गच्छते? यतस्तत्रैकविंशतितमे अवगाहनख्ये पदे सम्मुच्छिद्यमोरःपरिसर्पणामुत्कर्षतो योजनपृथक्त्वमेवावगाहनमानं प्रत्ययादि, यथा—एवं उरपरिसर्पणवि ओहिआगडभवक्कंतिअपज्जत्तयाणं जोअणसहस्सं संमुच्छिद्यमाणं जोअणपुहत्त'मित्यादीति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अवगाहनाख्ये पदे यदुरःपरिसर्पणामुत्कर्षतो योजनपृथक्त्वं देहमानमुक्तं तत्प्रायिकमिति ज्ञायते, तेनाऽऽसालिकायाश्चक्रवत्पर्यादिकटकस्य विनाशे समुपस्थिते कदाचित्कतयोत्पत्तेरुत्कर्षतो द्वादशयोजनानि तदेहमानं पृथगुच्यमानं विरोधकृत् भवति । यद्वा 'योजनपृथक्त्व' मित्यत्र पृथक्त्वशब्दो जातिवाची, तैर्नैकवचननिर्देशोऽपि व्यादीनि पृथक्त्वानि ज्ञेयानि, तथा च सति न काप्यनुपपत्तिसम्भाल्यते, तत्त्वं तु सर्वविद्वद्यमिति, एवं च सूत्रमध्य्ये एकवचननिर्देशोऽपि जातिपक्षाङ्गीकरणेन बहुपृथक्त्वग्रहणव्याख्या दिवसमुहुत्तपुहुत्तेत्यत्र सङ्ग्रहीवृत्तिकारेणापि कृताऽस्तीति ॥ ११० ॥

तथा—अन्यच्च तानि द्वादशयोजनानि किमङ्गुलघटितानीति : प्रश्नोऽत्रोत्तरं—योजनान्यात्माङ्गुलरूपाणि ज्ञेयानि, भिन्नाभिन्नकालभाविचक्रवत्पर्यादिकटकविषये द्वादशयोजनरूपस्याऽऽसालिकादेहमानस्य समकक्षतया योजनोपपत्त्यर्थमिति ॥ १११ ॥

तथा—श्रीस्थापनाचार्यपुरस्तादिव श्रीजिनप्रतिमापुरस्तादप्यविशेषतः सर्वान् अपि प्रतिकमणादिक्रियाः कृताः शुद्धचन्युत कश्चिद्विशेष इति ।  
प्रश्नोऽत्रोत्तरं—कश्चिद्विशेषो ज्ञातो नास्ति, परं तासां करणं तु यथार्हमेवेति ॥ ११२ ॥

तथा—ये परपक्षिणस्तेषु चारित्रमस्ति नवाः इति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—परपक्षिषु भगवदाज्ञाविरुद्धकर्तृकत्वाद्भावचारित्राभावः परं निश्चयस्तु केवलिगम्य इति ॥ ११३ ॥

तथा—निर्गुणितकर्तारः पूर्वधरा भवन्त्यन्ये वेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं निर्गुणितकारिणश्चतुर्दशपूविदो भवन्तीति ज्ञायत इति ॥ ११४ ॥

तथा—इन्द्रविमाने त्रायस्त्रिंशत्सामानिकाश्च तिष्ठन्त्युत पृथग्विमानेष्विति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—‘त्रायस्तीसाण उ कंचणां सामाणिआण सयकंता । पत्तेअ विमाणा दक्खिणेण कप्पेसु तिसु होति ॥ १५ ॥ व्याख्या—त्रायस्त्रिंशानां पितृव्यादिमहत्तरस्थानीयदेवानां काञ्चनानि सामानिकानामिन्द्रसमान-  
रूपाऽऽयुष्कादिगुणग्रामाणां देवविशेषाणामेव शतकान्तानि—शतकान्तरत्नमयानि प्रत्येकं विमानानि, एकैकस्य त्रायस्त्रिंशस्य विमानमित्यर्थः;  
दक्षिणेन—दक्षिणस्यां दिशि व्यवस्थितेषु देवल्लोकेषु त्रिषु—सौधर्मसत्कुमारब्रह्मलोकनागसु भवन्ती’ ति देवेन्द्रनरकेन्द्रकसूत्रवृत्तौ, एतदक्षरानुसारेण त्रायस्त्रिंशानां सामानिकानां च विमानानीन्द्रविमानात्पृथक् पृथक् सन्तीति ॥ ११५ ॥

तथा—जघन्यपदे एकोनत्रिंशदङ्गभ्य एकोऽप्यङ्कोऽधिको भवति नवेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं चतुर्थकर्मग्रन्थे ‘अहक्खायसुहुमकेवले’ त्या-  
दिगाथान्याख्याने ये एकोनत्रिंशदङ्का लिखितास्सन्ति तत्प्रमाणो जघन्यपदे गर्भजपनुर्या भवन्ति, [ श्री अजितवृत्तिविधया ] न त्वेकोऽप्यङ्क एकोन-  
त्रिंशदङ्गभ्योऽधिको भवतीति तात्पर्यमिति । ११६ ॥

तथा—चक्रिणां चक्रादिसत्तरत्नान्येकजीवात्मकान्यसङ्ख्यचक्रजीवात्मकानि वा ? , तथैषामागतिरुक्ता सा एकजीवमाश्रित्य नेकान्वेति ?

प्रश्नोऽत्रोत्तरं—नक्रिणां चक्रादि सप्तरत्नान्यरुद्ररुचेयजीवरूपाणि, दृश्यमानपृथ्वीपिण्डस्यासद्गुचेयजीवात्मकत्वात्, तथा आगतिरप्यसद्गुचानाश्रित्येति सम्भाव्यत इति ॥ ११७ ॥

तथा—‘संभिन्नलोगनालिं, पासंति अणुतरा देवाः’ इत्यत्र संभिन्नशब्दार्थः कचिन्पूणार्थः कचिच्चोनार्थः, तत्र किं तत्त्वमिति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—संभित्तशब्दो मुख्यधृत्त्योनार्थो, यत्तु कापि पूणार्थस्तत्राप्यल्पस्य निवक्षणादूनार्थ एव ज्ञेय इति ॥ ११८ ॥

यथा—नारकिणां योजनावधिरुक्तः, तद्योजनं केनाजुलेन मीयत इति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—देवानामिव नारकिणामप्यवधिज्ञानं प्रमाणाङ्गुल-योजनेन मीयत इति ज्ञायत इति ॥ ११९ ॥

तथा—यत्तित्वे पूर्वकलेवरादि न्युत्सृष्टं, तन्नियमो मृते महाव्रतवद्याति नवेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—महाव्रतवत्तन्नियमो याति, परं पूर्वशरीरस्य न्युत्सृष्टत्वेन क्रिया त्वविरतिर्न लगतीति ॥ १२० ॥

तथा—राजपद्मनीये सूर्याभभवनेऽनेकपक्षिणस्तथा भृङ्गादिजीवा उक्ताः स्थानपदे च ते निषिद्धास्तत्र किं तत्त्वमिति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—राजपद्मनीयोक्ताः भृङ्गादिजीवाः पृथ्वीपरिणामरूपा ज्ञेयाः, ये तु स्थानपदे निषिद्धास्ते त्रसरूपा इति ॥ १२१ ॥

तथा—द्रव्यलिप्ती जानानो यदि स्वयं महाव्रतीभूय विहरति तदाऽराधको भवति नवेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—गुर्व्यादिसामग्र्यभावे यदि स्वयं महाव्रतीभूय विहरति तदाऽराधकोऽन्यथा तु नेति ॥ १२२ ॥

तथा—मांसादौ द्विदलदौ च तत्क्रयोगे जीवा उत्पद्यमाना उक्तास्ते द्वीन्द्रिया अन्ये वेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—मांसादौ तद्योनिका निगोदरूपा

योगशास्त्रवृत्त्यादावुक्ताः, निगोदजीवारत्वेकेन्द्रियारसम्भवन्ति, उपदेशमालावृत्त्यादौ च सम्पूर्च्छिमपञ्चोन्द्रिया अप्युक्तास्सन्ति, तथा द्विदले तक्रा-  
दियोगे दधि च श्राद्धमिति क्रमणवृत्त्यादौ तु त्रसर्जीवोत्पत्तिरुक्ताऽस्ति, तेन ते दध्यासन्नत्वेन द्वीन्द्रियास्तस्माद्व्यन्त इति ॥ १२३ ॥

तथा—मनुष्यलोकाद्वहिः क्वचिद्रात्रिरेव क्वचिद्वैव, तत्र कालप्रत्याख्यानं रात्रिभोजनप्रत्याख्यानं च घटते नवेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—मनुष्य-  
लोकाद्वहिः कालप्रत्याख्यानं रात्रिभोजनप्रत्याख्यानं चेहत्यापेक्षया सम्यक्कालस्वरूपपरिज्ञाने भवत्यन्यथा तु सङ्केतप्रत्याख्यानमिति ॥ १२४ ॥

तथा—शय्यासंस्तरकयोः कश्चिद्भेदोऽस्ति नवेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—शय्या सर्वाङ्गी संस्तरकोऽर्द्धतृतीयहस्तप्रमाणोऽनया रीत्याऽनयो-  
र्भेदः अथवा शय्यैव संस्तरकः शय्यासंस्तरक इत्याचाराङ्गवृत्त्यनुसारेणोभेदोऽपीति ॥ १२५ ॥

यथा—‘पुव्वसिज्जायरी जयंती’ त्यत्र पूर्वशय्यातरीशब्दस्यार्थः प्रसाद्य इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अपूर्वसाध्वादिः समायातस्तदगृह एव  
प्रथमं वसतिं याचते, तस्याश्च स्थानदातृत्वेन प्रसिद्धत्वात्पूर्वशय्यातरीति भगवतीसूत्रवृत्त्यनुसारेण पूर्वशय्यातरीशब्दार्थो ज्ञेय इति ॥ १२६ ॥

तथा—श्रीजिनानामवधिज्ञानं सदृशं किंवा विशेष इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यो जिनो यतः समेति तस्य तत्स्थानसम्बन्धि प्रवर्धमानं  
वाऽवधिज्ञानं भवतीति न सर्वेषां जिनानामवधिज्ञानसादृश्यमिति ॥ १२७ ॥

तथा—चतुर्मासकपारणके मासद्वयान्तस्साधूनां वस्त्रग्रहणं कल्पते नवेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—वर्षाकाले यत्र क्षेत्रे चतुर्मासकं स्थितं तत्पूजोविपि  
तत्रान्यत्रापि च संविद्यक्षेत्रे सक्रोशयोजनप्रमाणे कारणं विना मासद्वयान्तर्वस्त्रादिग्रहणं साधूनां न कल्पते, एतदक्षराणि विस्तरतो निशीथदशमोद्दे-  
शकचूर्णौ सन्तीति ॥ १२८ ॥

तथा—जातिस्मरणं सङ्ख्यातभविर्णायकमसङ्ख्यातभविर्णायकं वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—जातिस्मरणमपि समतिक्रान्तसङ्ख्यातभवाग-

मस्वरूपं मतिज्ञानभेद एवेति कर्मग्रन्थस्य चाराङ्गवृत्त्यनुसारेण सङ्ख्यातभविर्णायकं जातिस्मरणं ज्ञायत इति ॥ १२९ ॥

तथा—कृतचतुर्विधाऽहरोपवासप्रत्याख्यानस्य सन्ध्यायां षडावश्यकवेलाया तत्प्रत्याख्यानं गुरोः समस्तं करणीयं किंवा मनसा १ किंवा न २

तथैव कृतषष्ठस्य द्वितीयदिनेऽप्यथा वेति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सन्ध्यायां कृतचतुर्विधाहरोपवासप्रत्याख्यानस्य दिगाचार्य इति योगशास्त्रचतुर्थप्रकाशवृत्तौ

तथैव कृतषष्ठस्य द्वितीयदिनेऽपि ॥ १३० ॥

तथा—दिगाचार्यशब्देन किमुच्यत इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सचित्ताचित्तमिश्रवस्त्वनुज्ञायी दिगाचार्य इति योगशास्त्रचतुर्थप्रकाशवृत्तौ

प्रायश्चित्तं वैयवृत्त्यमिति श्लोकव्याख्यानने दिगाचार्यशब्दार्थो ज्ञेय इति ॥ १३१ ॥

तथा—कृमिहराहानोऽजमकः किं सचित्तोऽचित्तो वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—कृमिहराहानोऽजमको वृद्धैरचित्ततया व्यवहियमाणोऽस्तीति ॥ १३२ ॥

तथा—पञ्चम्यष्टम्योः श्रीनेमिः संसारदवेतिस्तुती कथनीये इति निश्चयोऽथवा श्रीनेमिनाथमहावीरयोः स्तुती नोच्येते इति नियमो ज्ञातो नास्ति, परं

प्रश्नोऽत्रोत्तरं—पञ्चम्यष्टम्योः श्रीनेमिः संसारदवेति स्तुतिभ्यामपरे श्रीनेमिनाथमहावीरयोः स्तुती नोच्येते इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—दीक्षासमये

यद्यायातस्तदा प्रायेण ते उच्येते इति ॥ १३३ ॥

तथा—जिनवरस्य स्कन्धे संयमग्रहणावसरे सुरपतिर्यत्सुरदूष्यं मुञ्चति तस्यावस्थानस्य मानं प्रसाद्यमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—दीक्षासमये

देवेन्द्रमुक्तजिनवरस्कन्धस्य देवदूष्यस्यावस्थानकालनियममाश्रित्य सप्ततिगतस्थानकानुसारेण श्रीवीरस्य साधिकं वर्षं यावच्छेषाणां च तीर्थकृतां या-  
वर्ज्जीवं देवदूष्यावस्थितिर्ज्ञाताऽस्ति, श्रीजम्बूद्वीपप्रज्ञप्त्यनुसारेण तु श्रीऋषभदेवस्य देवदूष्यावस्थानकालमानं श्रीवीरवदिति ज्ञेयमिति ॥ १३४ ॥

तथा—केचिद्रावणस्य सुतां शीता मूलनक्षत्रजातां वदन्ति तत्सत्यमितरथा वेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—वसुदेवहिण्डौ प्रोक्ताऽस्ति, सा मूलनक्षत्रजातेति व्यक्तिस्तु दृष्टा नास्तीति ॥ १३५ ॥

तथा—सांव्यवहारिकाः के प्रतिपाद्यन्ते ? किं निगोदावस्थात उद्धृत्ता उत सूक्ष्मनिगोदेभ्य उद्धृत्ता उत सूक्ष्ममात्रोद्धृत्ता इति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—प्रज्ञापनाद्युक्तौ निगोदाद्धृत्ता इति सामान्यं वचो, न सामान्यं विशेषवाचां कर्तुं समर्थं स्यात्, सूक्ष्ममात्राणां निगोद इति संज्ञा नास्ति, निगोद इति नाम वनस्पतौ प्रद्योते तथा सूत्रेऽपि तथैव दृश्यते, सूक्ष्मनिगोदेभ्य उद्धृत्तास्त एव सांव्यवहारिका इति श्रुतिः, परम्परयाऽपि बहुश्रुतानामयं प्रद्योतो, यतः—“ सर्वे जीवा व्यवहार्यव्यवहारितया द्विधा । सूक्ष्मा निगोदा एवान्त्यास्तेऽन्येऽपि व्यवहारिणः ” ॥ १ ॥ इति योगशास्त्रवृत्तावपि ॥ १३६ ॥

इति सकलसूरिपुरन्दरपरमगुरुगच्छाधिराजभट्टारकश्रीविजयसेनसूरिप्रसादीकृतप्रश्नोत्तरसङ्ग्रहे भट्टारकश्री  
५ श्रीहीरविजयसूरिशिष्यपण्डित शुभविजयगणिविरचिते प्रथमोऽध्यासः सम्पूर्णः ॥ १ ॥



## अथ द्वितीयोच्छासः ॥



श्रीनाभेयं जिनं नत्वा, सत्त्वाभीद्वार्थसाधकम् । विधीयते मयामोददुच्छासः प्रथमेतरः ॥ १ ॥

### पण्डितआण(न)न्दविजयगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च ।

यथा—जिनप्रतिमा एकाङ्गुलादारभ्य यावदेकादशाङ्गुलानि तावत्प्रमाणा गृहे पूजयितुं कल्पत इत्यक्षराणि मत्पाद्वे सन्ति, यानि चैतद्विचारमाश्रित्य विशेषाक्षराणि भवन्ति तानि प्रसाद्यानि, यतोऽत्र नवीनप्रतिमामाश्रित्य श्रद्धालवः पृच्छन्ति—कस्यङ्गुला प्रतिमा पूजयितुं शुद्ध्यति, कस्यङ्गुला च नेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरम्—एकाङ्गुलप्रतिमाया आरभ्यैकादशाङ्गुला प्रतिमा पूजयितुं कल्पते, उपरितनी तु जिनगृहे, अत्रायं विशेषो—गृहे जिनगृहे च विषमाङ्गुलप्रमाणैव प्रतिमा पूजयितुं कल्पते, न समाङ्गुलप्रमाणा, ठङ्कुरेफेरकृतवारस्तु सारादौ तथैव प्रतिपादनादिति ॥ १ ॥

तथा—पूगीफलानां खण्डानि चूर्णानि वा यतीनां कसेल्लकादिवादिहर्तुं कल्पन्ते नवा इति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरम्—पूगीफलखण्डानि चूर्णानि केवलानि विहर्तुं न कल्पन्त इति गच्छप्रवृत्तिः ॥ २ ॥

तथा—आगम १ श्रुता २ ऽऽज्ञा ३ धारणा ४ जीत ५ व्यवहारेष्वधुना कियन्तो व्यवहारा वर्तन्त इति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरम्—आगमव्यवहारः साम्प्रतं नास्त्येव, श्रुतव्यवहारस्तु सम्पूर्णो नास्ति, वियान् ६ त्तत इति, श्रुतादीनां चतुर्णां व्यवहाराणां साम्प्रतं विद्यमानत्वमवसीयते, तत्रापि प्रायश्चित्तप्रदानं प्रायो जीतव्यवहारानुसारेण प्रवर्तते इति ॥ ३ ॥

तथा—सामायिकाधिकारे पूर्वभीर्यापथिकाप्रतिक्रमणं शास्त्रानुसायत पश्चादिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सामायिकाधिकारे महानिशीथहारिभद्री-  
यदशवैकालिकबृहद्व्याघानुसारेण युक्त्यनुसारेण सुविहितपरम्परानुसारेण च पूर्वभीर्यापथिकीप्रतिक्रमणं युक्तितमप्रतिभाति, यद्यप्यावश्यकचूर्णों  
'पच्छा इरिआवाहिआए पडिक्कमइ' इत्युक्तमस्ति, पर तत्र साधुसमीपे सामायिककरणानन्तरं चैत्यवन्दनमपि प्रोक्तमस्ति, तत इर्यापथिकीप्रति-  
क्रमणं सामायिकसम्बद्धमेवेति कथं निश्चीयते ? तेन चूर्णिगतसामायिककरणसामाचारी सम्यक्तया नावगम्यते, यद्यपि योगशास्त्रवृत्ति-  
दिनकृत्यष्टस्यादौ पश्चादीर्यापथिकाप्रतिक्रमणं दृश्यते तत्तु चूर्णिमूलकमेवेति तदुपर्यपि पश्चादीर्यापथिकाप्रतिक्रमणनिर्णीतिः कथं भवतीति ॥ ४ ॥

तथा—गर्जितशब्दो जलसमुत्थो वायुसमुत्थो वाऽन्यद्वा किमपीति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—स्थानाङ्गवृत्तौ स्थाने स्थाने स्तनितादिशब्दानां  
व्याख्याने मेघगर्जितमित्यर्थकरणान्मेघस्य च जलमयत्वाद्गर्जितशब्दो जलसमुद्भवस्सम्भाव्यते, वायुसमुत्थः शब्दो गर्जितमित्यक्षराणि तु शास्त्रे  
नोपलभ्यन्त इति ॥ ५ ॥

तथा—“संखाईए उ भवे, साहइ जं वा परो उ पुच्छिज्जा । न य णं अणाइसेसी, वियाणई एस छउमत्थो” ॥ १ ॥ इयं गाथा-  
गणधरानाश्रित्योक्ता सामान्यतश्चतुर्दशपूर्व्विणो वेति, तथा तत्रावधिज्ञानी सङ्ख्येयानसङ्ख्येयांश्च भवान् पश्यति १ एवं मनःपर्यायज्ञान्यपि २  
केवलज्ञानी तु नियमतोऽनन्तान् ३ जातिस्मरणस्तु नियमतसङ्ख्येयानित्याचाराङ्गवृत्तौ द्वादशपत्रे प्रोक्तमस्ति, अथ चतुर्दशपूर्व्वी कति  
भवान् जानतीति, तथा चतुर्दशपूर्व्वविदोऽसङ्ख्यान भवान् जानतीति प्रघोपस्सत्योऽसत्यो वेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—‘सङ्खाईए उ भवे’ इयं  
गाथा गणधरानाश्रित्यैवावश्यके प्रोक्ताऽस्तीति, तथैतदनुसारेणान्येऽपि सम्पूर्णचतुर्दशपूर्व्वविदोऽसङ्ख्येयान् भवान् जानन्तीत्यवसीयते, उभयेपामरि  
श्रुतस्य तुल्यत्वादिति, तथोक्तयुक्त्या चतुर्दशपूर्व्वविदः सङ्ख्यानतीतान् जानन्तीति प्रघाषोऽपि सत्यस्सम्भाव्यत इति ॥ ६ ॥

तथा—अष्टादशसु भावदिक्षु बीजरुहसम्बुच्छेजवनस्पतिभेदौ कुत्र वनस्पतिभेदेऽन्तर्भवत इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—आचाराङ्गनिर्मुक्त्या-  
दावष्टादशसु भावदिक्ष्वग्रबीजानां चतुर्णां वनस्पतिभेदानां मुख्यतयाऽभिधानेनोपलक्षणाद्वीजरुहसम्बुच्छेजवनस्पतिभेदावपि दशवैकालिकाद्युक्तौ  
सङ्गृहीतौ वेदितव्यौ, अनयोर्भेदेऽग्रबीजादिष्वमुक्तस्मिन्नयमन्तर्भवतीति व्यक्तिस्तु शारे कृता न दृश्यत इति ॥ ७ ॥

तथा—सौधर्भेशानदेवी अष्टमदेवलोके गता प्रथमदेवलोकेदेवो वाऽच्युने गतो भवनपतिदेवो वा सौधर्भे गतः प्रथमकल्पदेवो वा तृतीय-  
पृथिव्यां गतोऽविधिना कियत्क्षेत्रं परितः पश्यतीति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—देवादीनामवधेरानुगामुक्त्वाद्यो यत्रोत्पन्नो देवादिरवधिना यावत्क्षेत्रं पश्यति स.

तथा—महत्त्वं भेरोरपि महत्तरशरीरकरणसामर्थ्यं, तथा प्राप्तिर्भूमिस्थस्याङ्गुल्यग्रेण मेरुपर्वताग्रप्रभाकरादिस्पर्शनसामर्थ्यमिति योगशास्त्र-  
तावदेवान्यत्र गतोऽपि पश्यतीति ज्ञायत इति ॥ ८ ॥

तथा—“कफविप्रणमलामर्शं सर्वौषधिमहर्धयः” इत्यस्य व्याख्यानं प्रोक्तमस्ति, परमत्रोत्कर्षतोऽप्युत्सेधाङ्गुलमानेन लक्ष्यो जनप्रमाणस्य वैकिय-  
गुत्तौ “कफविप्रणमलामर्शं सर्वौषधिमहर्धयः” इत्यस्य व्याख्यानं प्रोक्तमस्ति, परमत्रोत्कर्षतोऽप्युत्सेधाङ्गुलमानेन लक्ष्यो जनप्रमाणस्य वैकिय-  
शरीरस्य सम्भवान्मेरोरपि महत्तरशरीरकरणं भूमिस्थस्याङ्गुल्यग्रेण मेरुपर्वताग्रप्रभाकरादिस्पर्शनसामर्थ्यमिति योगशास्त्र-  
लेणं तर्ह्येति उत्सेधाङ्गुलेन शरीरमानमुक्तमस्ति, तथापि तन्प्रायिकं सम्भाव्यते, तेन न काप्यनुपपत्तिः, अन्यथा भूमिस्थस्याङ्गुल्यग्रेण मेरुपर्वताग्र-  
स्पर्शासम्भवात्, किञ्च यद्येकान्ततः शरीरमुत्सेधाङ्गुलेनैव स्यात्, तदा प्रज्ञापनोपाङ्गदावुक्तौ द्वादशयोजनप्रमाणशरीरोऽसालिकाजीवो महाविदेहा-  
द्विचकिर्णां प्रमाणाङ्गुलेन द्वादशयोजनप्रमाणस्य स्कन्धावारस्य विनाशहेतुः कथं सम्भवति, कथं वा कृतलक्ष्यो जनवैकियरूपेण सौधर्भदेवलोके गतेन  
चमरेन्द्रेण एकः पादः पञ्चवरवेदिकायां मुक्तोऽपरश्च सुधर्मासमायामित्यादिकं भगवत्याद्युक्तं सम्भवतीति ॥ ९ ॥

तथा—बलोणाघोलो वस्त्रागालितो विकृतिर्निर्विकृतिर्वेति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—बलोणाघोलो वस्त्रागालितो लवणसहितो वा निर्विकृतिः, अन्यथा तु विकृतिरिति ॥ १० ॥

तथा—चान्निजः चन्दनपेषिका दासी वा स्त्री तथा भगवत्यभिषेकोनविंशशतकृतृतीयोद्देशके ‘जउगोलासमाणपुढविकायं’ इत्यास्ति, आचाराङ्गवृत्तौ तु प्रथमाध्ययनस्य द्वितीयोद्देशके वेदनाद्वारे ‘आर्द्रमलकप्रमाणं सचित्तपृथ्वीगोलकमेकविंशतिर्वारान् विप्यादित्यस्ति कोऽयं भेद इति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—पञ्चमाङ्गे महाबलाधिकारे ‘अट्ट वण्णगपेसीओ’ इत्याद्युक्तमस्ति, तदनुसारेण दास्यवसेयेति, तथाऽऽर्द्रमलकजतुगोल-कयोरेक एवार्थस्सम्भाव्यत इति ॥ ११ ॥

तथा—‘केवली णं भंते ! अस्मि समयंसि जेसु आगासपदेसेसु हत्थं वा पायं वा ओगाहिता णं चिट्ठी’ त्यालापकेऽपि भगवतीत आचाराङ्गवृत्तौ द्वितीयाध्ययनप्रथमोद्देशके पाठभेदोऽस्ति, सोऽपि कथं घटत इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—आचाराङ्गवृत्तौ चेत्युक्तमस्ति, न त्वत्तं भगवत्यामिति, तेनायं पाठो ग्रन्थान्तरगतस्सम्भाव्यते, अथवाऽऽचाराङ्गवृत्तिकारकालवर्ति भगवत्यादर्शेष्वयं पाठो दृष्टस्सम्भाव्यत इति ॥ १२ ॥

तथा—आवश्यकान्तर्भूतश्चतुर्विंशतिस्तस्त्वातीयाकालभाविना श्रीभद्रबाहुस्वामिनाऽकारीत्याचाराङ्गवृत्तौ द्वितीयाध्ययनस्यादौ तदत्र किमिदमेव सूत्रं भद्रबाहुनाऽकारि सवर्णाणि वा आवश्यकमूत्राणि कृतान्युत पूर्वं गणधरैः कृतानीति किं तत्त्वमिति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—आचाराङ्गादि-कमङ्गप्रविष्ट गणभृद्भिः कृतम्, आवश्यकं दिकमनङ्गप्रविष्टमङ्गैकदेशोपजीवनेन श्रुतमिति विचारामृतसङ्ग्रहाऽऽवश्यकवृत्त्या-द्यनुसारेण ज्ञायते, तेन भद्रबाहुस्वामिनाऽऽवश्यकान्तर्भूतचतुर्विंशतिस्तिवरचनमपराऽऽवश्यकचरचनं च निर्युक्तिरूपतया कृतमिति भावार्थः श्रीआचाराङ्गवृत्तौ तत्रैवाधिकारेऽस्तीति बोध्यमिति ॥ १३ ॥

तथा—जिनप्रतिमाना यथा भ्रूस्थाने कृष्णता क्रियते तथैवाष्ठ्या एकता । न ।  
किञ्चिदपावित्र्यं निषेधः कर्तुं प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यद्यपि लाहिसंस्कारे मन्त्राणां

क्रुणताकरणवदेष्यो रक्तताकर्णभावश्च । सा युक्तभा । पूजाकरणान्तरायप्रसङ्गाच्च

तथा—जिनप्रतिमानां लोहसंयुक्तानां स्थाने तथा तत्राप्रवृत्तानां स्थाने निषेधाश्वरानुपलम्भादिदानतनकाले श्रूयते तथापि नामग्राह “कुलकोटिसयसहस्सा, वत्तीस सग अट्ट नव य पणवत्तीसा, एगिदिबित्तेहिंदियचउरिदिअ-  
“कुलकोटिसयसहस्सा, वत्तीस सग अट्ट नव य पणवत्तीसा, एगिदिबित्तेहिंदियचउरिदिअ-  
॥ १५ ॥

[illegible][illegible]

तथा—‘असंख्यपरतुल्यं, नास्ति रासी, वीसुं लोका असंख्यं ॥ १॥’ पाठः प्रज्ञापनादात्रास्ति,  
परस्म असंख्यभागेत्ता उ । सेसा तिन्निवि ‘भीमे मवंगि भीमो’ इति स्तोत्रोक्तानुसारी  
स्तेनात्र किं तत्त्वमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अत्र  
प्रतभेदसम्भाव्यत इति ॥ १७ ॥

तथा—नरकपृथिवीषु देवलोकेषु वाऽष्टासु दिक्षु षट्सु वा दिक्षु पङ्क्तिगतनरकावासविमानविचारः प्रवर्तते, तत्र नाम १ स्थापना २ द्रव्य ३ क्षेत्र ४ ताप ५ प्रज्ञापक ६ भावदिशां आवश्यककण्टकानां सप्तानां मध्ये का दिग् वर्तते ? एतासां दिशां मध्यवर्त्तिनी काचिद्विगत्या वा देवलोकादिषु दिक् प्रवर्तते ? तत्सहेतुकं प्रसाद्यमिति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—पङ्क्तिगतनरकावासविमानविचाराधिकारे नामादीनां सप्तानां दिशां मध्ये क्षेत्रदिग् ज्ञायत इति ॥ १८ ॥

तथा—दीपालिकाकल्पे दुष्पमाकालसङ्घस्तोत्रे च श्रावकसङ्घयातो यतिसङ्घ्याऽतिबर्ही दृश्यते तत्र किं तात्पर्यमिति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—दीपालिकाकल्पदुष्पमाकालसङ्घस्तोत्रकुलकादावुत्कृष्टभङ्गस्थानां श्राद्धादीनां सङ्ख्या कथिताऽस्तीति सम्भाव्यते, आचार्यादीनां तु जघन्यादिभेदत्रितयस्थानामपीति न काप्यघटमानताऽऽशङ्का, तथाऽऽचार्यसङ्ख्याविषये महानिशीथप्रवचनसारोद्धारवृत्ती अपि संवादिके एवेति बोध्यम् ॥ १९ ॥

तथा—“पणवीसजोअणत्तुंगो, चारस य जोअणाइं विच्छिन्नो । जो अणमेगं नालुअ, इग कोडी सट्ठिलक्खाइं ” ॥ १ ॥ कलशानामियं सङ्ख्या कथं मिलति ? तद्वचकस्या प्रसाद्यमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अच्युताधिपत्यादीनां द्विषष्टिस्था द्वात्रिंशदधिकशतनरलो-कस्थसूर्यचन्द्राणां द्वात्रिंशदधिकं शतमेवं चतुर्नवत्यधिकशतेन्द्राणां चतुर्नवत्यधिकशतभेषिकाः तथा दक्षिणोत्तरदिग्भेदेनासुराधिपत्योर्दशेन्द्राणीना दश तथा नागादीनां नवानामपि स्थाने एकालापकेन स्वरूपाभिधानादक्षिणोत्तरदिग्भेदेन तदधिपतीनां जात्यपेक्षया द्वादशाग्रमहिषिणा द्वादश, एवं व्यन्तराधिपतीनां चतुरग्रमहिषीणां चत्वारः, एवं ज्योतिष्काधिपतीनां चतुरिन्द्राणीना चत्वारः, आद्यदेवलोकद्वयाधिपत्योः षोडशेन्द्राणीनां षोडश, एवं षट्चत्वारिंशदिन्द्राणीनां षट्चत्वारिंशदभिषेकाः, तथा सामानिकानामेकत्रायस्त्रिंशानामेको लोकपालानां चत्वार अङ्गरक्षकानामेकः पार्प-

द्यानामैकोऽनीकाधिपतीनामैकः प्रतीर्णकसुराणामैक एवं दश, सर्वमिलने सार्द्धद्विशता २५० भिषेकास्तथा (अभिषेकाणा तथाः) कनकमयादीनमष्टप्रकाराणा कलशानां प्रत्येकमष्टाष्टौ सहस्रा इति चतुष्षष्टिसहस्रकलशाः, तदङ्कस्याभिषेकाङ्केन गुणने गायोक्ता कलशानां सङ्ख्या भवतीति सम्भावना छद्मकपत्रे दृश्यत इति ॥ २० ॥

तथा — राजप्रश्रीयोपाङ्गे 'तस्स ण पएसिस्स रणो जेहे भाउअवयंसए चित्ते नामं सारही होत्था' इत्यत्र 'जेहे भाउअवयंसए' इत्यस्य कोऽर्थ इति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अनेकप्रकारेणापि आता सम्भवति, स च वयस्योऽपि भवति, वयसा च वृद्ध इति चित्रसारथिः प्रदेशिराजस्य जेष्ठो आतृवयस्य उच्यत इति ॥ २१ ॥

तथा — रूपसूत्रे सामाचार्योमेकपञ्चाशत्तमसूत्रे 'निकलमित्तए वा पविसित्तए वा' इति पदद्वयमधिकमिव दृश्यत इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं— 'भत्तपाणपिडिआइक्खित्तए' इति वचनात् कश्चित्सामान्यतो विहितानशनः कश्चिच्च कृतपादपोपगमनो भिक्षुर्विहर्तुं प्रवर्त्तितुमिच्छेदित्यर्थः सङ्गच्छते तदनुसारेण सामान्येन कृतानशनस्य 'निकलमित्तए वे' त्यादि विशेषणानि यथासम्भवं सङ्गच्छन्त एव, नतु कृतपादपोपगमनस्येति न काव्यधिकतेति ॥ २२ ॥

तथा — व्यववहारषष्ठोद्देशके आमनगरादिषु वर्षाकाले ऋतुमद्धकाले वाऽगीतार्यानां बहूनामपि प्रकरूपधरगीतार्यमेकं विनाऽवस्थाननिषेधोऽवस्थाने च प्रायश्चित्तमाज्ञाभङ्गादयो दोषाश्चेत्युक्तमस्ति, अयं विधिरधुनातनः पुरातनो वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—साव्वन्निकोऽयं विधिरित्यवसीयते, अधुना तु प्रकरूपधरगीतार्यं विनापि विहारकरणं तद्व्यवक्षेत्राद्यनुभावत इति ॥ २३ ॥

यथा — जिनचिन्वानां वल्लपरिधापनं शालेषु दृश्यते, आत्मनां गच्छे कथं न क्रियते, कैश्चित्तु क्रियते तदात्मभिः किं निषिध्यते मन्यते

वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—जिनबिम्बानां वस्त्रपरिधापनिका शालेषु दृश्यते, परं प्रधानवस्त्राङ्गिकादिभिराभरणैरिव यथौचित्येनैव क्रियमाणा युक्तिमती, न तु मस्तकस्योपरि वस्त्रस्य मोचनादिनेति ॥ २४ ॥

तथा—साधुभिः पौषधिकश्राद्धैश्च मात्रकाणि पात्रकाणीव द्विः प्रतिलेख्यान्युत व्यापारणावसरे एव प्रमृज्य व्यापारणीयानीति : प्रश्नोऽत्रोत्तरं—साधुभिः पौषधिकश्राद्धैश्च मुख्यतो मात्रकाण्यपि पात्राणीव द्विः प्रतिलेख्यानि, व्यापारणावसरे च प्रमृज्य व्यापारणीयानीति ॥ २५ ॥

तथा—कालवेलायां प्रकरणानि निर्युक्तयो वा साधुभिर्गण्यन्ते नवाः ? तथा कालवेलायां श्राद्धैरपि सङ्ग्रहणीप्रमुखं गण्यते नवेति : प्रश्नोऽत्रोत्तरं—कालवेलायां सर्वेषामप्याचारप्रदीपादौ निर्युक्तिभाष्यादिप्रभृतिसर्वपठनपाठनादि प्रतिषिद्धमस्ति ॥ २६ ॥

तथा—योगविधौ ये महानिशीथेऽष्टस्वध्ययनेषूद्देशका उक्तास्सन्ति, तेष्वधुना कोऽप्यस्ति नवा इति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—योगविधानोक्त-महानिशीथोद्देशकास्तु तद्गदर्शनां वैगुण्याद्व्याख्यानाभावाच्च व्यक्त्या नोपलभ्यन्त इति ॥ २७ ॥

तथा—पौषधकरणात् पूर्वं स्वाध्यायः कृतो देवाश्च वन्दितास्तदा पश्चात्पौषधकरणे उपधानप्रवेशः वा पुनरपि स्वाध्यायदेववन्दनादि-करणीयं नवेति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—पौषधकरणात्पूर्वं स्वाध्यायदेववन्दनादि कृतं स्यात्तदा पश्चादपि तेनैव सरतीति वृद्धोक्तिरिति ॥ २८ ॥

तथा—पौषधिकैस्त्रिसन्ध्यं विस्तरेण देवा वन्दन्ते, तदक्षराणि क सन्ति : मध्याह्ने देववन्दना तु सामाचारी पौषधविधिप्रकरणादिषु दृश्यते इति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यद्यपि पौषधिकश्राद्धानां सामाचार्यादिषु मध्याह्न एव देववन्दनं दृश्यते, तथापि “ पङ्क्तिमओ गिहिणोऽवि हु, सगवेला पंचवेल इअरस्स । पूआसु तिसं,आसु अ, होइ तिवेला जहनेण ” ॥ १ ॥ इत्याद्यक्षरवशात् त्रिकालपूजास्थानीयत्वेन परम्परागतत्वेन च त्रिकालं देववन्दनं युक्तिमदेवेति ॥ २९ ॥



तथा—दिनचर्यादिषु : अङ्गपडिलेहयं संदिसावेमीत्यादेशमार्गणं प्रतिलेखनाया प्रातस्सायं च दृश्यते, आत्मनां तु न, तत्र किं निदान-  
मिति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—दिनचर्यादिषु अङ्गपडिलेहणं सन्दितावेमीत्याद्यादेशमार्गणं तु श्रीदेवसूरिकृतायां दिनचर्याया नास्ति, गच्छान्तरीयादिन-  
चर्यागतं सम्भाव्यत इति ॥ ३० ॥

तथा—पण्मासोपरिवर्तिस्तन्धेपायि लघुबालकमता तत्सङ्घटे जायमाने सामायिकं प्रतिक्रमणं पौषधं वा करोति नवेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—  
पण्मासोपरिवर्तिस्तन्यपायिबालकसङ्घटे जायमाने तन्मातुः सामायिकप्रतिक्रमणादिविधानं मुख्यवृत्त्या युक्तिमत्तया न प्रतिभासत इति ॥ ३१ ॥  
तथा—मालसम्बन्धि स्वर्णरजतसूत्रादि सर्वे देवद्रव्यं वा ज्ञानद्रव्यं वा साधारणद्रव्यं वेति :—प्रश्नोऽत्रोत्तरं—तत् सर्वं देव-

द्रव्यमिति सम्प्रदायः ॥ ३२ ॥

तथा—क्वापि ग्रामादिषु श्राद्धगृहसङ्कीर्णताया श्राद्धकुटीरादाववस्थानेऽपि ग्रामाधिपतेर्वा देशाधिपतेर्वा शय्यतरगृहमुक्तं शुद्धयति  
नवा ? इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यन्निश्चितं गृहावस्थानं स एव शय्यातरो भवतीति दृष्टकल्पादावुक्तमस्ति, महति कारणे तु तद्ग्रह-  
णमप्यनुज्ञातमस्तीति ॥ ३३ ॥

तथा—सङ्खड्या साधवो विहरणार्थं न गच्छन्ति, सा च सङ्खडी विवाहादिप्रकरणरूपा साधर्मिकवात्सल्यरूपा वा ? तथा क्रियाद्विर्जनैः  
सा भवतीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सङ्खडीशब्देनौदनपाको जनसङ्कुलेजननारा च कल्पवृत्त्यादौ व्याख्यातमस्ति, ततो विवाहादिप्रकरणमेव सङ्खडिर्नितु  
साधर्मिकवात्सल्यमिति वक्तुं शक्यते, तेनोभयत्रापि जनसङ्कुलत्वात् कारणं विना साधुभिर्विहित्यर्थं न गम्यते, तथा त्रिशता चत्वारिंशता वा जनैः  
सङ्खडी भवतीति सम्भाव्यते ॥ ३४ ॥

तथा—प्रतिक्रमणसूत्रमध्ये श्राविकाः ‘ निचं परदारगमणविरहो ’ इति पाठं कथयन्त्युत ‘ निचं परपुरिसगमणविरहो ’ इति वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—प्रतिक्रमणसूत्रपाठस्तु श्राद्धश्राविकाणां सदृश एव ज्ञायते, येनैतद्वृत्तौ स्त्रियं प्रति परपुरुषवर्जनमुपलक्षणात् द्रष्टव्यमिति

न्याख्यातमस्तीति ॥ ३९ ॥

तथा—कालग्रहणादिपूर्वकमुत्तराध्ययनादि गणनीयमित्यादि सामाचारीहीनत्वेनः यतीनामवसन्नत्वमिति केचन पृच्छन्ति तत्र किमुत्तरमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—कालग्रहणादिपूर्वकमुत्तराध्ययनादि गणनीयमित्यादिसामाचारीहीनत्वऽपि वसतिशोधनादिपुरस्सरं सुविहिताचरितं गणनमपि सामाचारीष्वेति कथं तेषामवसन्नत्वमिति ॥ ३६ ॥

तथा—एकादशप्रतिमाया श्राद्धः सामाधिके ‘ जाव नियमं वा ’ ‘ जाव पडिमं वा ’ कथमुच्चरते ? तथा ‘ पञ्चम्यादिप्रतिमासु अष्टम्यादि-  
तिथिषु रात्रौ कायोत्सर्गकरणवदेकादश्यां प्रतिमायां कायोत्सर्गं करोति नवा ? इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—एकादशप्रतिमायां श्रावकेण सामायिके ‘ जाव पडिम पञ्जुवासामी ’ ति पाठो भणनीयः, तथा कायोत्सर्गोऽपि करणीयः ॥ ३७ ॥

तथा—आचार्योणमुपाध्यायानामधमाचार्याणां साधुसाध्वीश्रावकश्राविकाणां वा दुष्प्रसहं यावदुष्वभाया या सङ्ख्या दीपालिकाकल्पादिषू-  
क्ताऽस्ति सा कया विधक्षया ? पञ्चमारके दिनानि स्तोकाणि जायन्ते सङ्ख्या च बहुतीति लोकाः पृच्छन्ति, अत्र किमुत्तरं दीयत इति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अत्र भरतक्षेत्रे दुष्प्रभाया अल्पकालत्वेऽपि भूमेः प्राचुर्याद्वहुषु साध्वादिसम्भवेन दीपालिकाकल्पाद्युक्तयुगप्रधानादिसङ्ख्यापूर्तिः  
सङ्गच्छते, न त्वातमज्ञातसाध्वादिनेति बोध्यम् ॥ ३८ ॥

तथा—केवलिनः पट्टधरा भवन्ति नवाः इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—‘प्राप्ते निर्वर्णसमये, पूर्णवर्षशतायुषा । सुधर्मस्वामिनाऽस्थायि, जन्मस्वामी गणाधिपः ॥ १ ॥ तप्यमानस्तपस्तीव्रं, जन्मस्वाम्यपि केवलम् । आसाद्य सदयो भव्यभक्तान् प्रत्यब्रूयत् ॥ ६० ॥ श्रीवीरमोक्षदि-  
वसादपि हायनानि, चत्वारि षष्टिमपि च व्यतिगम्य जम्बूः कात्यायन प्रभवमात्मपदे निवेश्य, कर्मसयेण पदमव्ययमाससाद ॥ ६१ ॥ इति  
परिशिष्टपर्वणि चतुर्थसर्गप्रान्तचचनानुसारेण केवलिनः पट्टधरा भवन्तीति प्रकटमेवावसीयत इति ॥ ३९ ॥

तथा—‘एगजीवस्स णं भंते । एगभवगहणेणं केवइआ जीवा पुत्ताए हव्व मागच्छंति ? गोअमां, जहन्नेणं एगो वा दो वा तिणिण वा.  
उक्कोसेणं सयसहस्सपुहत्तं जीवा पुत्ताए हव्वमागच्छन्ति’ श्रीभगवतीसूत्रद्वितीयशतकपञ्चमोद्देशके, अत्र ‘एगभवगहणेण ’ मित्यस्य-  
कोऽर्थः ? इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—‘एकस्मिन्समये ’ इत्यत्र पृथक्त्वशब्दो बहुत्ववाचको, नो चेदेतद्वैकायमेकसंगोगेऽपि शतसहस्र-  
पृथक्त्वस्योत्पत्तिर्निष्पत्तिश्च मत्स्यादीना मनुष्याणामुत्पत्तिश्च प्रतिपादिताऽस्ति, तदा भवे का वार्त्ता ? तेन ‘दिवसमुहुत्तपुहुते ’ त्यादिवज्जाति-  
वाचकत्वादेकवचनान्ततति बोध्यमिति ॥ ४० ॥

तथा—आउल्लिस्सकदन्तकाष्ठे केचिद्बहुदोषं वदन्ति, तत्सत्यमसत्यं वा ? तथा बदरीवल्बूलदन्तकाष्ठेभ्य आउल्लिदन्तकाष्ठे जीवाः किं  
अल्पा बहवस्तुल्या वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—प्रज्ञापनायां प्रथमपदे गुच्छाधिकारे आउल्लिस्सकमूलकन्दस्कन्धत्वक्षशाखाप्रबलेषु प्रत्येकमसङ्ख्येय-  
जीवात्मकता प्रोक्ताऽस्ति, तदनुसारेण बदरीवल्बूलयोरपि षट्स्वपि स्थानेष्वमङ्ख्याता जीवाः सम्भाव्यन्ते, न तु न्यूनाधिकजीवाः ॥ ४१ ॥

तथा—लन्दिकानां पञ्चको गणः, परं तेषा कल्पस्य कालमानं कियत् ?, परिहारविशुद्धिकानामिवाष्टादश मासाः कालमानं ऊनाधिकं वेति ?

प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यथालिन्दमाना कालमानं तु परिहाराविशुद्धिकसाध्वतदेशवाक्यस्य पञ्चकल्पचूर्ण्यदाबुपलभ्यत्वमानत्वेनाष्टादश मासाः संभाव्यन्त इति ॥ ४२ ॥

## पण्डित रविसागरगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च ।

यथा—गुरुसम्बन्धिस्तूपकाराणाक्षराणि कुत्र ग्रन्थे सन्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—स्तूपकाराणाक्षराणि बहुषु ग्रन्थेषु सन्ति, तथाहि—“ निव्वाणं चिद्दिगागिद्, जिणस्स इक्काग सेसयाणं च । सकहा थूभ जिणहरे, जायग तेणाहि अगिन्ति ” ॥ ६६ ॥ “ थूभ समयभाउआणं, चउवीसं चैव जिणहरे कासी । सव्वजिणाणं पडिमा, वण्णपमाणेहिं निअएहिं ” ॥ ६७ ॥ इत्यावश्यकनिर्युक्तौ द्वितीयवरवरिकाप्रान्ते, तथा स्तूपा जिनगृहं चेति भरतो भगवन्तमुद्दिश्य वर्द्धकिरत्नेन योजनायामं त्रिगव्युतोच्छ्रितं सिंहनिपद्यायतनं कारितवान्, निजप्रमाणयुक्ताश्चतुर्विंशति जीवाभिभोक्त-परिवारयुक्तास्तीर्थकरप्रतिमाः, तथा आतृशतप्रतिमा आत्मप्रतिमां च स्तूपशतं च मा काश्चिदाक्रमणं कारिष्यतीति [ तत्रैकं भगवतः शेषानेको नशतस्य आतृणां प्रतिमा तथा ] लोहमयान् यन्त्रपुरुषांस्तद्वद्वारपालंश्चक्रोरत्यादि हारिभद्र्याभावश्यकवृत्तौ निव्वाणमिति गाथाव्याख्यानं, तथा स्तूपशतं आतृणां भरतः कारितवान् इत्यादि, ‘ थूभसयभाउआण ’ मिति गाथाव्याख्यानं तथा ‘ भाउअस्स य तत्थेव पडिमाओ कारवेति, अप्पणो अ पडिमं पज्जुवासंतिअं सयं च थूभगाणं एगं तित्थगरस्स अवसेसाणि एगणगस्स भाउअसयस्स, मा तत्थ कोई अभिगमिस्सतिस्सि छोहमणुआ ठविआ जंता-उत्ता, जेहिं तत्थ मणुआ अइगंतुं ण सक्केतीत्यादि पूर्वोक्तगाथा ( यामा ) वश्यकचूर्णौ । तथा—‘ तएणं से सक्के देविदे देवराया ते वहवे भवणवइ जाव वेमाणिए देवे एवं वयासी-विप्पामेव भो देवाणुप्पिआ । सव्वरयणामए महतिमहालए तओ चेइअथुमे करेह, एगं भगवओ तित्थगरस्स



तथा—शङ्खश्रावकगृहे पुष्कलीश्राद्धेन पौषघशालायां गत्वेयापिथिकी प्रतिक्रान्ता सा किमर्थमिति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—पुष्कलीश्राद्धस्येया-  
पिथिकीप्रतिक्रमणे भगवतीवृत्तौ हेतुरुद्भावितो नास्तीति कथं तद्विषयो निर्णयः कर्तुं शक्यते ? किं च अयं चरितानुवादो न तु विधिवादः, तेन  
नायं विधिस्सर्वैरनुष्ठेय एवेति ॥ ४५ ॥

तथा—देवलोकादिहागच्छन्तः सुराः निर्याणमार्गेणैवागच्छन्त्यन्येन वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यद्यपि सुराणामचिन्त्यशक्त्या सर्वत्राप्यागमनश-  
क्तिरस्ति तथाऽपि सिद्धान्ते सुराणामागमनं प्रायो निर्याणमार्गेणोक्तं दृश्यत इति ॥ ४६ ॥

### अथ वृद्धपण्डितकमलविजयगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तरं च

यथा—नृक्षेत्रबहिर्वर्त्तिनः सिंहादयः श्वापदाः पलभोजिनो वा भोगभूमिजतिर्यञ्च इव पृथ्वीफलं ह्यारिणो वा भवन्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—  
मनुष्यक्षेत्राद्बहिर्वर्त्तिना व्याघ्रादिर्हिसकजीवानां प्रायः पलभोजित्वं सम्भाव्यते, समुद्रादिमत्स्यानामिव, न तु भोगभूमिजव्याघ्रादीनामिव केवलपृथ्वी-  
वृक्षफलादिभोजित्वं । किं च—यथा भोगभूमिजव्याघ्रादीनामरूपकपायित्वं भोगभूमिजपृथ्व्यादीनां च यथा विशिष्टरसरसरिणामो न तथेतरेषामिति  
सम्भावनानिदानम्, एतद्विषये विशेषाक्षराणि न स्मरन्तीति ॥ ४७ ॥

### अथ वृद्धपण्डितकनकविजयगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च ।

तथा—अचित्ताशनाद्विचतुष्पङ्गमध्ये राज्ञौ त्रसजीवानां स्थावरजीवानां चोत्पत्तिर्भवति न वा इति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—रात्रावचित्ताशनादि-  
चतुष्कमध्ये “ तज्जोणिआण जीवाणं, तहा संपाइमाण य । निसिमत्ते बहो दिट्ठे, सब्बदंसीहिं सब्बहा ॥ १ ॥ ” इति श्राद्धदिनकृत्यसूत्रवचनात्

तथा—“अन्वहं तिहुअणनाहो, दोसो ससत्ति हेइ राईए । भत्ते तगंधरसा, रसेसु रसिआ जिआ हुंति” ॥ १ ॥ ति छुःकगथानुसारेण स्यावरजीवोत्पत्तिः सम्भाव्यते न त्रसजीयानां रान्नियोगादिति ॥ ४८ ॥

तथा—अलेपमध्ये ‘मोअणाती रोटी खाखरा फलदिकं’ कल्पते न वा ? इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—बहुपु ग्रन्थेषु अलेपशब्देन वल्लवणकादिकं व्याख्यातमस्ति, दृढकल्पभाष्यवृत्तिमध्ये तु ‘मोअणरहितरोटी पापरा सायुतं आटु’ इत्यादिकं अलेपमध्ये कल्पते इति व्याख्यातमस्ति ॥ ४८ ॥

तथा—श्रद्धालूना सिद्धान्तपठननिषेधः कुत्र कुत्रागमे प्रकरणादौ च प्रोक्तोऽस्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—समवायाङ्गादौ यतीनां सिद्धान्त-ममञ्जयणं । चउवरिसस्स य सम्म, सूअण्ड नाम अंगंति ॥ १ ॥ इत्यादिः सप्त गाथाः पञ्चवस्तुकेः कथितोऽस्ति, अत्राप्याचाराङ्गाद्यव्ययन-योग्यतामाश्रित्य यतिसम्बन्धीन्येव दीक्षापर्यायवर्षाणि नैयत्येनोक्तानि सन्ति, अयमर्थो व्यवहारच्छेदग्रन्थेऽप्यस्ति, एवं ‘गेहे दीवमपासता’ इत्य-क्षराणि सूत्रकृताङ्गेऽपि वर्तन्ते, इत्याद्यक्षरानुसारेण साधव एव तदध्ययनाधिकारिणो न तु श्राद्धा इति ॥ ५० ॥

तथा—त्रिविधाहारद्विविधाहारप्रत्याख्यानकरणे श्राद्धानां पानीयतुर्याहारौ किं भक्ष्यौ न वेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—श्राद्धानां त्रिविधाहार-तुर्याहारः कल्पते न तूत्यानान्तरमिति, पानीयं तूयत्राप्यचित्तं कल्पते, द्विविधाहारप्रत्याख्याने तु द्वयोरपि भक्ष्यतया सम्भवोऽस्ति, सन्ध्यायां तु त्रिविधाहारप्रत्याख्याने पानकाकारानुच्चारणात् सचित्तमपि पानीयं कल्पते ॥ ५१ ॥

तथा—लोकान्तिकाः किमेकावतारिण उत नेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—लोकान्तिका देवा एकावतारिण एवेत्येकान्तो ज्ञातो नास्तीति ॥ ५२ ॥

तथा—चउसद्विकरि सहसेति गाथाया व्याख्यानं प्रसाद्यमिति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—चतुष्पष्टिहस्तिहस्ताः, किलक्षणाः ? सहाष्टदन्तैर्वर्तन्ते यानि तानि साष्टदन्तानि, अष्टसङ्ख्यानि शिरांसि अष्टशिरांसि, साष्टदन्तानि च तानि अष्टशिरांसि च साष्टदन्ताष्टशिरांसि, चतुष्पष्टिगुणीकृतानि साष्टदन्ताष्टशिरांसि येषां ते चतुष्पष्टिसाष्टदन्ताष्टशिरसः अत्र मध्यपदलोपी समासो ज्ञेयः, अष्टानां च चतुष्पष्ट्या गुणे द्वादशोत्तराणि पञ्चशतानि शिरांसि प्रतिगजं स्युरिति । तथैकस्मिन् दन्तेऽष्टाष्टपुष्करिण्य इति ॥ ५३ ॥

तथा—‘ण्हवण विलेवणे’तिगाथात्रये ध्वजाष्टमङ्गलकौ न दृश्येते, संप्रतं तु पूजावसरे तौ क्रियेयातां, तत्र किं कारणमिति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—ण्हवणविलेवणेत्यादिगाथामध्ये ध्वजाष्टमङ्गलकयोरुपलक्षणेन ग्रहणं बोध्यं, यत आत्मीयानामविच्छिन्नपरम्परागतः स्नात्रादिविविधनिर्मूलो न भवतीति सम्भाव्यत इति ॥ ५४ ॥

तथा—श्रीमदहंतां अनुमहेतसवकरणे देवानां देहानि कियन्मात्रोच्चैस्तराणीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—महोत्सवावसरे देवानां देहान्यभिषिच्यमान-जिनसमानकालीनमनुजदरीरोचितानि सम्भाव्यन्त इति ॥ ५५ ॥

तथा—चतुर्भासकमध्ये ‘सक्कोसं जोअणं भिक्खायरिआए गंतुं पडिनिअत्ताए’ इत्युक्तं श्रीकल्पसूत्रे, एतदनुसारेण चैत्यगुल्वादि-वन्दनार्थं गन्तुं कल्पते न वा ? इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—‘भिक्खायरिआए’ इत्येतत्पदं चैत्यगुरुवन्दनार्थं गमनस्योपलक्षणपरमवस्यते, यत आवश्यकद्वारिभद्र्यां द्विक्रियनिहवस्य शरत्काले नद्युत्तरणपुरस्सरं गुरुवन्दनादि दृश्यते, परं प्रवृत्तिर्नास्तीति ॥ ५६ ॥

तथा—सर्वत्र प्रत्याख्याने ‘अन्नत्थणामोणेणं’ इत्याद्याकारोच्चारणं प्रोक्तमस्ति, परं ‘पाणस्स लेवेण वा’ इत्यादिषु कथं तन्नेति ?



प्रश्नोऽत्रोत्तरं—‘पाणस्स लेवेण वा’ इत्यत्र ‘अन्नत्थणाभोगेण’ इत्याद्याकारानुच्चारणे हेतुः शास्त्रे दृष्टो न स्मरति, षडावश्यकसूत्रमध्येऽपि तद्वहित एव पाठो दृश्यत इति ॥ १७ ॥

तथा—शरीरास्वाध्यायकारणे सत्यनूढमहानिशीथयोगस्य साधोऽस्समीपे श्राविका उपधानक्रियां करोति न वा? इति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—शरीरास्वाध्यायकारणेऽपि महानिशीथयोगवाह्यन्तिक एवोपधानक्रियां करोति नान्यस्य पार्श्वे इति ॥ १८ ॥

तथा—श्रीतीर्थकृता समवसरणाभावे व्याख्यानावसरे चतुर्मुखत्वं स्यान्न वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—तीर्थकृता ‘दानशीलतपोभावे’ ति श्लोकवृत्त्यनुसारेण समवसरणे देशनावसरे चतुर्मुखत्वं सम्भाव्यत इति ॥ १९ ॥

तथा—‘अंतमुहुत्तडिईओ, तिरियनराणं हवन्ति छेसाओ’ एवं युगलिनामपि तथैव लेख्यास्थिति शालोऽन्यथा वेति? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—युगलिनामप्यन्यतिर्यङ्मनुष्यवदान्तमौहूर्त्तिको लेख्यास्थितिकालो ज्ञेयः, प्रज्ञापनाष्टस्यादिष्वविशेषेण तथाऽभिधानादिति ॥ २० ॥

तथा—तथा यथा सूक्ष्मनिगोदस्य शुल्लकभवः बादरनिगोदस्यापि ते (भवाः) प्रोच्यन्ते न वा? इति? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सूक्ष्मनिगोदस्येव बादरनिगोदस्यापि शुल्लकभवासम्भाव्यन्त इति ॥ २१ ॥

तथा—सङ्ग्रहण्या नाद्वारे ‘गठमे मुहुत्त बारस, इअरे चउवीस विरह उक्कोसो’ इत्यत्र नरलेके सततगर्भजमनुजसद्भावे कथं विरहः स्यादिति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—मनुष्यलोके निरस्तगर्भजमनुजसद्भावेऽपि चेतुर्विंशतिमुहूर्त्ताविधि सम्पूर्च्छिममनुजाना विरहकालः कदाचित्सम्भवति, यतः पूर्वोत्पन्नानां (उत्पद्यमानानां) चान्तर्महूर्त्त (स्थितिक) त्वेन तत्पर्यन्ते सर्वेषा निर्लेपनादिति जीवसमासवृत्तवृत्तत्वेनेति ॥ २२ ॥

तथा—शुल्लकभवविचारे २१६ आवलीभिरकः शुल्लकभवः, ३७७३ अशैश्च शुल्लकभवः प्रोक्तः, एकस्यामावलिकायां च ३७७३

अंशा भवन्तीति, तदत्र सप्तविंशच्छतत्रिसप्तत्यंशेषु स्थानद्वयेऽपि किलक्षणः कालः प्रोच्यते : इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—२५६ आवलीमितक्षुल्लक-  
भवाविचारे उच्छ्वासमुहूर्त्तौदिषु क्षुल्लकभवा आवलिक्काश्च सङ्ख्यातुमिष्टाः, मुहूर्त्ते च त्रिसप्तत्याधिकसप्तत्रिंशच्छतमिता उवङ्कासा भवन्ति, तेन गण-  
नसोकथार्थं ३७७३ मित एव भाजकराशिः परिकल्पितः, तत्मानकालस्तु आवलिक्कागतांशेष्वसङ्ख्येयसमयात्मकः क्षुल्लकभवांशेषु तु ततः  
पट्पञ्चाशदधिकद्विशतगुणो, यतः २५६ आवलीभिरैकः क्षुल्लकभवो भवतीति ॥ ६३ ॥

तथा—श्रीवीरतीर्थकृतो द्विसप्ततिवर्षाण्ययुर्मानमुक्तं, तज्जन्मदिनाद्वा गर्भोत्पत्तेर्वा तदायुर्विचार्यमाणं मिथो विद्यते तत्किमिति,  
प्रश्नोऽत्रोत्तरं—जन्मपत्राद्यपक्षेया तु जन्मतः, परमार्थस्तु गर्भोत्पत्ति आयुःपरिमाणं गण्यते, द्वासप्तत्यादिवर्षमानप्रतिपादनं तु न्यूनाधिक-  
मासद्विसानामविवक्षणान्न विसंवदतीति ॥ ६४ ॥

तथा—अनाहारे निम्बादिकं प्रोक्तमस्ति तदाद्रं सत्तत्र कल्पते न वा? इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अनाहारे निम्बादिकमार्द्रमपि कल्पत इति ॥ ६५ ॥

तथा—वटार्कपञ्चाङ्गुलानां पत्राणि त्रोटितानि स्वयंपतितानि वा मुहूर्त्तौर्ध्वमचित्तिभवन्ति न वेति? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—विटमि मिलाननी-  
नादयं जीवविप्पजड' मिति वचनादृन्ते म्लाने सति वनस्पतिपत्राणि त्रोटितानि स्वयंपतितानि वाऽचित्तीभवन्ति, न तु कालनियमः प्रोक्तोऽस्तीति ॥ ६६ ॥

तथा—'मज्जे महुम्भिम मंसमि, नवणीयमि चउत्थए । उप्पज्जंति असंखा, तव्वण्णा तत्थ जंतुणो ॥ १ ॥' इत्यत्र मद्यादिवचनुरे ये  
जीवा उत्पद्यन्ते, ते कियदिन्द्रिया इति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—मध्ये मधुनि नवनीते च द्वीन्द्रियाः, मांसे एकेन्द्रिया बादरनिगोदरूपा द्वीन्द्रियाश्च, मनुष्य-  
मांसे तु एकेन्द्रिया बादरनिगोदरूपा द्वीन्द्रियाः सम्मूर्च्छिममनुष्यपञ्चेन्द्रियरूपाश्च सम्मूर्च्छन्तीति शास्त्रानुसारेण सम्भाव्यत इति ॥ ६७ ॥

तथा—मांसाधिकारे योगशस्त्रे 'सद्यःसंमुच्छितानन्तजन्तुसन्तानदूषित' मित्यत्रानन्तजीवाः के इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—तत्रानन्ता निगोदजीवा इति योगशस्त्रे प्रोक्तमस्ति ॥ ६८ ॥

तथा—'संसज्जीविसङ्घातं, भुज्जाना निशि भोजनं' इति वचनात्कैश्चिच्चत्वारोऽप्याहारसदृशाः कथ्यन्ते, परमत्र किमप्यन्तरं न वा ? इति- प्रश्नोऽत्रोत्तरं—जीवसंसन्निवसन्नेष्वशनेष्वपि समाना न भवतीति ॥ ६९ ॥

तथा—पौषधोच्चारणो 'देसओ' इति पदमाहारपौष एव वर्तते, न तु शरीरसत्कारादिवैषधेषु, तेन स्वयं स्वशरीरे वैयावृत्यविलेपनादेः करणं काराणं च कल्पते न वा ? इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—पौषधिकानां कारणमन्तरेण स्वयं विलेपनादि कर्तुं कारयितुं च न कल्पते, यद्यन्यः कश्चिद्भक्त्या करोति तदा कल्पतेऽपीति ॥ ७० ॥

तथा—देवानामवध्यादिज्ञानसद्भावात् पूर्वोद्गीतमनधीतं वा चतुर्दशपूर्व्यादिश्रुतं सम्भवति न वा ? इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—देवानामवध्यादिज्ञानसद्भावे प्राय एकादशाङ्गरूपं श्रुतं स्मरति, न शेषं, यदुक्तं महाभाष्ये—'चोद्दसपूर्व्या' मणुओ, देवैस्तं न संभरद् सत्त्वं । देसमि होइ भयणा, सद्गणभवेऽवि भयणा उ ॥ १ ॥' इह कश्चित्तुर्दशपूर्वधरः संघुमृत्वा देवलोकं गतः, तत्र च देवत्वं तत् पूर्वोद्गीतं श्रुतं न स्मरति, कियन्न स्मरतीत्याह—'सत्त्वं' कृत्स्नमशेषमिति यावद्देशे पुनरेकादशाङ्गलक्षणे इति कल्पचूर्णिः, कोट्याचार्यव्याख्यानं तु देशे सूत्रार्थे सूत्रभावादौ वेति, इदं पूर्वगतसूत्रापेक्षं सम्भाव्यते, अन्यथा कल्पेन सह विरोधप्राप्तेः, 'भजना-विकल्पना भवति, यथोक्तं देशं स्मरत्यपीत्यर्थः, किं देवत्वप्राप्त्यैवेत्यं श्रुतस्य प्रतिपात आहोश्चिद्विह भवेऽपीत्याह—'स्वस्थाने' मनुष्यत्वे योऽसौ भवो-जन्म तत्रापि तिष्ठतो भजना-विकल्पना, मिथ्या-त्वगमनादिभिः कारणैः कस्यचित्प्रतिपत्ति श्रुतं कस्यचिन्नोति विशेषावश्यकटीकार्या मलयारिहेमसूत्रिकतायामिति ॥ ७१ ॥

तथा—सिद्धिशिलाया उपरिस्थं योजनं प्रमाणबुद्धेन किमपरेण वेति : प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सिद्धिशिलाया उपरिस्थं योजनमुत्सेधाबुद्धेन न तु प्रमाणबुद्धेनेति बोध्यम् ॥ ७२ ॥

तथा—देवलोकपुस्तकेषु किं लिखीकृतमस्ति : किमभिधानं तच्छास्त्रमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—देवलोकपुस्तकेषु लिपिकरणं तत्रत्यव्यवहार-माश्रित्य सम्भाव्यते, तदभिधानं तु कुत्रापि दृष्टं नास्तीति ॥ ७३ ॥

तथा—नवीनदीक्षितस्य साधोः श्री तातपाददीक्षाभवनानन्तरमचित्तरजओहवाणिअकायोत्सर्गं विस्मृते पुनर्दीक्षां दत्त्वाऽऽवश्यंकादियोगा-नुष्ठानमुपस्थापना च शुद्धयति नवेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—गच्छनायकदीक्षाभवानन्तरमचित्तरजओहवाणिअकायोत्सर्गं विस्मृते पुनर्गच्छनायक-दीक्षामन्तरेणाऽऽवश्यंकादियोगानुष्ठानमुपस्थापना च न शुध्यतीति ॥ ७४ ॥

तथा—विहृतपात्रकाणि पुनर्लेपितानि चतुर्मासके विहृतानि करणन्ते न वा : इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—पूर्वविहृतपात्रकाणि पुनर्लेपितानि चतुर्मा-सके विहृतानि करणन्त इति ॥ ७५ ॥

तथा—शय्यात रगृहान्नगृहीतुर्यथाऽऽचाच्छं प्रायश्चित्तं दीयते; तथा तद्देवतूणामपि दीयते न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अन्ये तु शय्यातर-विण्डभोगे इति सामान्येनाचाच्छमुक्तमस्ति, परमिदानीं परम्परया तद्गाहकस्याचाच्छं प्रदीयत इति ॥ ७६ ॥

तथा—वसतिस्वामिनि देवलोकं गते कः शय्यातरः स्यादिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—स्वामित्वेन यः तच्चिन्ताकारी स एव शय्यातरो भवतीति ॥ ७७ ॥  
तथा—उपश्रये वलिकास्तम्भचन्द्रोदयमोचकस्य शय्यातरोऽथवा भूमिकाधिपतेरिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—शास्त्रानुसारेण सर्वेषां शय्यातरो भवति, परं साम्प्रतं श्राद्धैर्यक्तां शय्यातरनामानि लिखितानि तावन्तः शय्यातरा भवन्तीति ॥ ७८ ॥

तथा—केनचिदुपाश्रये धनं दत्तं, तस्य चत्वारस्तनया भवन्ति, तस्मिन्नुपरते ते पृथग्भूतास्तदा सर्वेऽपि शय्यातरा भवन्त्यथैवैक इति

प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यावन्तस्तदालयस्य स्वामित्वभाजस्तावन्त एव शय्यातरा इति ॥ ७९ ॥

तथा—पांसरू इति नाम्ना प्रसिद्धस्य दुग्धस्य भक्षणं कोऽपि दोषो न वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—लोकोक्त्या दोषः श्रूयते, न स्वात्मीय-  
शास्त्रानुसारेणेति ॥ ८० ॥

तथा—पष्ठकरणशक्त्यभावे पञ्चम्युपवासः विधीयतेऽयं वा पर्युषणाचतुर्थ्योमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—पर्युषणायामुपवासे कृतेऽपि  
शुध्यति, श्रीहरिविजयसूत्रिप्रसादितप्रश्नसमुच्चयेऽपि तथैवोक्तत्वादिति ॥ ८१ ॥

तथा—यथा प्रस्थादिनाः कश्चित्सर्वधान्यानि मिनुर्यादेवमसद्भावप्रज्ञापनाङ्गीकरणाहोर्न कुड्भीकृत्याजघनयोत्कृष्टाविगाहनान् पृथ्वीका-  
यिकान् जीवान् यदि भिनोति ततः पृथिवीकायिका असङ्ख्येयान् लोकान् पूरयन्तीत्याचाराङ्गप्रथमश्रुतस्कन्धप्रथमाध्ययनद्वितीयोद्देशकवृत्तौ,  
स्यावरचतुर्णां तु अङ्गुल्यासङ्ख्येयभागप्रभितरवगाहनोक्ता, अत एव पृथ्वीकायिकाः कथं पूरयन्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—प्रत्यहद्वान्ते  
सामान्योक्तत्वावपि प्रत्याकाशमैकपृथिवीकायिकजीवकेल्पनया लोकरूपस्य भरणं सम्भाव्यते, अन्यथा प्रज्ञापनासूत्रवृत्त्यादिग्रन्थान्तर-  
विरोध इति ॥ ८२ ॥

तथा—तिरश्चां वैक्रियशरीरकरणं मूलशरीरेण सह सम्बन्धमसम्बन्धं च स्यादिति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सम्बद्धमसम्बद्धं च भवतीति ॥ ८३ ॥

तथा—ज्ञानद्रव्यं देवकार्ये उपयोगि स्थानं वा ? यदि स्यात्तदा द्वपूजायां प्रासादादौ वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—एकैव स्थानके देवस्त्विदं

क्षेत्रद्वयमेव तु ज्ञानरिक्तं । ससंश्लेषमेव तु स्थापनीयं, श्रीसिद्धान्तो जैन एवं ब्रवीति ॥ १ ॥ एतत्काव्यमुपदेशसप्ततिकाप्रान्तेऽस्ति, एतदनुसारेण ज्ञानद्रव्यं देवपूजायां प्रासादादौ चोपयोगि भवतीति ॥ ८४ ॥

तथा—सौधस्मादिदेवा मनुष्यतिर्यङ्मुखेऽमुकस्थानके उत्पत्त्यामहे ईदृशं जानन्ति न वा ! इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—केचन तथाविध-ज्ञानसम्प्राप्ताज्जानन्ति, केचित्तु तदभावात् जानन्त्यपीति ॥ ८५ ॥

तथा—प्रातः प्रतिक्रमणे तपसः कायोत्सर्गमध्ये 'उपवासाद्यमुकं तपः करिष्ये' ईदृशं विचिन्त्य कायोत्सर्गं पारयति, पश्चात्कस्य-चिदाग्रहाच्चिन्तितादन्यत्तपः करोति, तस्य प्रत्याख्यानभङ्गो लगति न वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—प्रत्याख्यानभङ्गो न लगतीति ॥ ८६ ॥

तथा—स्त्रीरत्नं निदानचन्द्रमनिदानवद्धं वा स्यादिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—उभयथाऽपि स्यादिति, विशेषानभिधानादिति ॥ ८७ ॥

तथा—देशविरत्या चाक्रिपदं लभ्यते न वा ! तथा चक्रिणां गार्हस्थ्ये देशविरतिः स्यात् न वा ! यदि सा न स्यात् तत्र को हेतुरिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—देशविरत्या चक्रवर्तिपदप्राप्तिर्भवति न भवति वेत्येकान्तो ज्ञातो नास्ति, तथा चक्रिणां महापरिग्रहित्वाद्देशविरतिरप्राप्तिः स्यादिति ॥ ८८ ॥

तथा—तीर्थकरणभृतां मिथो भिन्नवाचनत्वेऽपि साम्भोगिकत्वं भवति न वा ! तथा सामाचार्यादिकृतो भेदो भवति न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—गणभृतां परस्परं वाचनभेदेन सामाचार्या अपि क्रियान् भेदसंभाव्यते, तद्वदे च कथञ्चिदसाम्भोगिकत्वमपि सम्भाव्यत इति ॥ ८९ ॥

तथा—जिनकल्पिकास्तद्भवे मोक्षं यान्ति न वा !, चेन्न यान्ति तत्र किं निदानमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—जिनकल्पिकास्तद्भवे मोक्षं न यान्ति, यतः " न करिंति आगमं ते, इत्थीवज्जो उ वेद इकतरो । पुण्ड्रपण्डितवज्जो पुण, होज्ज सवेओ अवेओ वा ॥ १ ॥ " न कुर्वन्ति आगमम्-अपूर्वश्रुताध्ययनं, पूर्वाधीतं तु श्रुतं विश्रुतसिकास्यहेतोरैकाग्रमनाः सम्यगनुस्मरति । वेदमङ्गीकृत्य प्रतिपत्तिकाले स्वीवर्ज एकतरः पुरुषवेदो

नृपसकवेदो वाऽसंक्लिष्टस्तस्य भवेत्, पूर्वप्रतिपन्नः पुनः सेवेदोऽवेदो वा भवेत्, तत्र जिनकल्पिकस्य तद्भवे केवलोत्पत्तिप्रतिषेधादुपशमश्रण्या वेदे उपशमिति सति अवेदकत्वस्य, तदुक्तं—“उपसमसेवीए खलु, वेदे उवसामिअमि उ अवेदो । न उ खविए तज्जम्भे, केवलपडिसेहभावाओ ॥ १ ॥”

शेषकालं तु सेवेद इति बृहत्कल्पपट्टौ उक्तत्वादिति ॥ ९० ॥

तथा—भाविद्वितीयतृतीयतीर्थकृतो रुदायिसुषार्षेजीवयोरन्तरकालस्याहपत्वद्विमानिकदेवगतिः न सङ्गच्छते, नरकगतिरपि तयोस्तथाविधयोर्न सङ्गच्छते, न च भवनपत्यादिगतिः, तत् आगतानां तीर्थकरत्वप्राप्तिनिषेधात्तत्का गतिरिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अनयोर्गतिः शास्त्रे श्रुता नास्ति, तत्त्वं तु तत्त्वविद्वेद्यामिति ॥ ९१ ॥

तथा—आमलकग्रन्थिककर्णजीरकमिश्रितवस्तुपिप्पलीहारितुक्त्य एतानि वस्तून्वाचान्मध्यं कल्पन्ते न वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—एतानि वस्तून्वाचान्मध्यं न कल्पन्ते धामस्थानामिति, यतीनां तु जीरकमिश्रितं पर्पटिकादिकं कल्पतेऽपीति प्रवृत्तिः ॥ ९२ ॥

तथा—यथाऽत्र मरते श्रीवीरजन्मर्हं भस्मग्रहस्तथाऽन्यक्षेत्रे तीर्थकृतां जन्मर्हं स आगतोऽस्ति नवाः, तथाऽत्र यथा कुम्भतंबाहुल्यं तथाऽन्यक्षेत्रेष्वपि तथैव न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—दशस्वपि क्षेत्रेषु तीर्थकृतां च्यवनदीनि करणान्कान्येकस्मिन्नेव नक्षत्रे भवन्तीत्यागमोक्तत्वाद्भस्मग्रहादि सङ्क्रमणं सर्वं समानमेवेति ॥ ९३ ॥

तथा—एतानि दशश्चर्याण्यत्रैव मरते भवन्ति दशसु क्षेत्रेषु वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—दशस्वपि क्षेत्रेषु दश दश भवन्ति, तत्र कानिचिदेतानि कानिचिद्भिन्नानीति ॥ ९४ ॥

तथा—फटकडीहिङ्गुलसैन्धवाः कथं सचित्ता अभित्ता वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—फटकडीसैन्धवयोर्दूरदशादागतेऽनीवत्तेनैव, तथा हिङ्गुलस्तु दूरादागतौ अकर्मपुरनिष्पन्नश्च प्रासुकः, परमाचरणवशात्परिकर्मित एव गृह्यत इति ॥ ९५ ॥

## अथ पण्डितश्रीहापर्षिगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च ।

यथा—मेरुगिरौ विकलेन्द्रियसद्भावोऽस्ति न वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—‘कहि णं भंते ! बेदिआणं पज्जत्तापज्जत्तगणं ठाणा पत्तत्ता ? गोअमा ! उड्डुलोए तदेकदेशभाए’ इति प्रज्ञापनासूत्रं एतद्द्रव्येकदेशो यथा—‘ऊर्ध्वलोकं तदेकदेशभागे मन्दरादिवाण्यादिष्वित्यादि’ एवं त्रीन्द्रियादिसूत्रा-  
प्यपि सर्ववृत्तिकानि भावनीयान्ये’ तदक्षरानुसारेण मेरौ विकलेन्द्रियादिसद्भावसम्भाव्यते ॥ ९६ ॥

तथा—सौधर्मादिषु वापीकमलानां वनस्पतीत्वं सम्भाव्यते इत्यादि—‘कहि णं भंते ! बादरवणसइकाइआणं पज्जत्तगणं ठाणा पत्तत्ता ? गोअमा ! उड्डुलोए कप्पेसु विमाणेसु विमाणावल्लिआसु विमाणत्थडेसु ! एतदक्षरानुसारेण कल्पेण वनस्पतीनां सद्भावः, स च तद्गतवाण्यादिकमलदीनां केषांचिद्भनस्पतित्वे सत्येव सम्भवतीति ॥ ९७ ॥

तथा—ये भव्या व्यवहारिणो जातास्तेषां सिद्धचत्राद्यौ कालनियमोऽस्ति न वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—भगवतां व्यवहारित्वाभानानन्तरं भवभाव-  
नाद्युत्थाद्यनुसारेणोत्कर्षतोऽनन्तपुद्गलपरावर्तपरिभ्रमणानन्तरं सिद्धचत्रासिद्धिर्यत इति ॥ ९८ ॥

तथा—देवलोकं मिथ्यात्वदेवदेवीनां क आचार इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यथा सम्यग्दृशां सिद्धायतनेषु जिनार्चाचीर्चनादिप्रवृत्तिरूप आचारः  
तथा मिथ्यादृशां तत्रैव वर्तमाननागादिप्रतिमापूजनादिरूपसम्भाव्यत इति ॥ ९९ ॥



तथा—सरस्वती ब्रह्मचारिणी न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—क्षेत्रसमासष्ट्यनुसारेण भगवतीसूत्रानुसारेण च सरस्वती गीतरतिनाम्नो व्यन्तरेन्द्रस्याग्रमाहिणीति ज्ञायते, तेन सा (न) ब्रह्मचारिणी प्रोच्यत इति ॥ १०० ॥

तथा—निष्कारणं सद्गोपमुत्रां जघन्यतोऽपि चारित्रं स्यान्न वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं “ जं किंचिवि पूकडं, सङ्घीमागंतुमीहितं । सहस्रसंतीरिअं भुंजे, दुपकलं चैव सेवई ॥ १ ॥ ” इत्यादिश्रीसूत्रकृदङ्गादिवचनप्राणण्यामुख्यतस्तदभावः, परं सशूकनिःशूकादिपरिणामभेदेन गूढागूढालम्बननिरालम्बनवत्त्वेन केपाञ्चित्कथमपि स्यादपि न स्यादपि केपाञ्चित्तैव द्वेन्द्रियादीनामुत्पत्तिर्हृदयैव, तथा च योनिःसङ्करः सिद्धान्ते प्रोक्तोऽस्तीति ॥ १०१ ॥

तथा—योनिविचारे यत्र मनुष्योत्पत्तिस्तैव द्वेन्द्रियादीनामुत्पत्तिर्हृदयैव, तथा च योनिःसङ्करः स्यादिति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—मनुष्यद्वेन्द्रियादीनां योन्येकत्वेऽपि स्वस्वजातीवेव योन्येकत्वव्यवहारो न तु भिन्नजातौ, अत एव छगणादिष्वप्युत्पन्नानां मयसां कुञ्जानां द्वेन्द्रियादीनां स्वजात्यपेक्षया योन्येकत्वं, भिन्नजातीयानामपि तत्रोत्पन्नानां स्वजात्यपेक्षेयैक्योक्तत्वं, तेन न योनिःसङ्करः सम्भाव्यत इति ॥ १०२ ॥

तथा—योगमध्ये रात्रावनाहारग्रहणं भवति न वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—रात्रौ योगिनां सङ्घट्टकाभावात्किमपि ग्रहीतुं न कल्पते, सङ्घट्टकं तु सायं भुक्तमिति प्रातः प्रवचनप्रवेदनानन्तरमेव तद्ग्रहणं कल्पत इति ॥ १०३ ॥

तथा—देवानां कुलकोटयो बहुचो लिखिता इति तत्र के जीवासन्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यथा मनुष्येष्विक्षाककुलादीनां अनैयत्यात्समानस्वरूपयेऽपि तत्सम्भवस्तथा देवेष्वपि न काचिदनुपपत्तिरिति ॥ १०४ ॥

तथा—सामग्रीमन्तरा कश्चित् सयं चारित्रं गृहीत्वा पालयति तदा तस्य किं फलं भवतीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—स्वयंचारित्रग्रहणं शास्त्रन्यायेन स्वयम्बुद्धप्रत्येकबुद्धौ विना न कल्पते, यदि च कश्चित्सयं कुमारगत्यागाद्वैराग्येण तद्ग्रहणं करोति तदा निर्जरादि फलं सम्भवतीति ॥ १०५ ॥

तथा—यथा तिरश्चां गुरुसमक्षं प्रायश्चित्तं विनाऽपि शुद्धिर्जायते, तथा दृणां सा कथं न भवतीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—तिरश्चां गुरुसमक्षं प्रायश्चित्तं विना शुद्धिर्भवति, तथाविधसामग्र्यभावात्, मनुष्याणां प्रायः तथाविधसामग्रीसद्भावात् तद्विना न शुद्धिः अत एव गुर्वाद्ययोगे तत्परिणामवतां तदग्रहणेऽपि शुद्धिः, तद्योगे च तदगृह्यतां तत्परिणामाभावाद् शुद्धिरिति ॥ १०६ ॥

तथा—विदिकस्याकाशप्रदेशानां दिक्स्याकाशप्रदेशस्पर्शनं भवति न वा ? यदि भवति तदैकाकाशप्रदेशस्याष्टप्रदेशस्पर्शना भवति, शाल्मे च षट्प्रदेशस्पर्शनोक्ता, तथा न भवति तदा अन्तरा किमस्तीति संयुक्तं प्रसाद्यमिति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—आकाशप्रदेशानां विदिकस्याकाशप्रदेशैः सर्वथा सम्बन्धो न भवति दिक्स्याकाशप्रदेशैरेव तत्पर्यवसानात्, अयं चार्थो द्वित्रादिषुङ्गिणिङ्गताभिस्सस्यक् समकोणचतुस्त्रयंष्टिष्टकाभिस्सुबोधो भवतीति ॥ १०७ ॥

### अथ पण्डितनर्गर्षिगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च

यथा—उत्कालितदुग्धमध्ये प्रक्षिप्तगोधूममद्विचूर्णचिप्पटिकया तदुग्धं निर्विकृतिकं स्यान्न चेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—गोधूमाद्विचूर्णे प्रक्षिप्ते सति यद्दुग्धमेकरसं वर्णान्तरादिप्राप्तं च भवति तन्निर्विकृतिकं भवतीति ॥ १०८ ॥

तथा—निर्विकृतिकदुग्धं दधि निर्विकृतिकं विवृतिर्वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—एवंविधं दुग्धं दध्यपि निर्विकृतिकं स्यात् ॥ १०९ ॥

तथा—अक्षणतापनसमये प्रक्षिप्तचूर्णचिप्पटिकं घृतं निर्विकृतिकं विवृतिर्वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—तद् घृतं निर्विकृतिकं न स्यादिति यतो 'दुद्धदही चतुरङ्गुले' त्यादि वचनादिति बोध्यम् ॥ ११० ॥

तथा—श्राद्धो देवपूजार्थं स्नानं करोति तदा शिरः प्रक्षालयति किंवा कंकासिकया शिरोजसंस्कारेण सरतीति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—देवार्ची-  
कुर्वाणः श्राद्धस्नामग्रया सत्या सर्वाङ्गस्नानं करोति, तदभावे तु कंकासिकया शिरोजसंस्कारपूर्वकं कण्ठस्नानेनापि सरत्याचारप्रदीपे तथैवोक्त-

त्वादिति ॥ १११ ॥

तथा—पद्मावती किं धरणेन्द्रपत्नी उत्तान्याऽपरिग्रहीतेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—पद्मावती धरणेन्द्रस्याग्रमहिषी न तु साधारणेति ॥ ११२ ॥

तथा—श्रीवीरो द्वविशे भवे राजा त्रयोविशे भवे चक्री, चक्रिणो देवनारकागता भवन्त्यन्यतो वेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—आवश्यकवीर-

चरित्राद्यनुसारेण सिंहभवानन्तरं नारकभवादुद्धृत्य तिर्यङ्मनुष्यादिर्भवेपु भान्त्वा चक्री जातो, राजभवस्तु स्तोत्रैवेव दृश्यते, नान्यत्र, तेनादि-

शब्दग्रहणात्सुरादिभनोऽपि सम्भाव्यत इति ॥ ११३

तथा—गवर्भस्थितिर्विचारे—‘दु चउत्थति’ गायार्धिकारे सप्तमजिनस्याष्ट मासा एकोनविंशतिदिनानि च तत्कथं घटते, ‘दुचउत्थ’ गायार्था

षण्णां जिनानां अष्टमासादि कथितमस्ति, एवं तु सप्त जायन्त इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—‘दुचउत्थ’ इति गायार्था सप्तमस्याने शेषजिनग्रहणं कृतमस्ति,

तेन ‘मासा अडनव’ इत्यत्र पण्णामष्टौ मासाः शेषजिनानां च नव मासा उक्तास्सन्ति, तेन सप्तमजिनस्य नवमासा एकोनविंशतिदिनानि

गवर्भस्थितिरिति बोध्यम् ॥ ११४ ॥

तथा—‘वीरस्सायङ्गुलं दुगुणन्ति कथं ? सर्वे जिना विंशत्यधिकशताङ्गुलाः कथिताः प्रमाणङ्गुलस्य पञ्चाशद्भागसकैर्विंशतिभाग-

देहमानं वीरस्य कथितमस्ति, तेन चोत्सेधाङ्गुलैकशताष्टविमानं जायते, विंशतिशतद्विगुणीकरणे चत्वारिंशदधिकद्विशताङ्गुलानि स्युः, सार्द्धत्रय-

हस्तमाने तु पाश्चात्यमानं विसंवदतीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—‘वीरस्सायङ्गुलं दुगुण’ न्येतद्गाथावृत्तौ मतत्रयमस्ति, तत्रानुयोगद्वारचूर्ण्यभिप्रायेण श्रीवीर

आत्माङ्गुलेन चतुरशीत्यङ्गुलप्रमाणश्चतुरशीतिद्विगुणिकरणेऽष्टपञ्चदशशतमुत्सेधाङ्गुलाना भवतीति न किञ्चिदनुपपन्नमेतदाश्रित्य विस्तरस्तु सङ्ग्रहणीवृत्तावस्ति ॥ ११५ ॥

तथा—साधुभिर्वसतिप्रमार्जनानन्तरं श्राद्धाः प्रतिलेखनां कुर्वन्ति, तदा पुनरपि श्राद्धानां वसतिप्रमार्जनं मृग्यते न वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यतिभिर्वसतिप्रमार्जनानन्तरं श्राद्धानां प्रतिलेखनाकरणे काजकोद्धरणं कृतं विलोक्यत इति ॥ ११६ ॥

तथा—दशार्णभद्राधिकारे हस्तिमुखादिविकुर्वणा किमिन्द्रेण कृता किमुत्तरावणदेवेन वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—आवश्यकचूण्याधनुसारेण हस्तिमुखादिसर्वाभिन्नादेशादैरावणेन विचक्रे, आवश्यककट्टन्याधनुसारेण तु तत्सर्वं स्वयं बिडौजसेति ॥ ११७ ॥

तथा—प्रसूतापत्या स्त्रीः कटुकमतीनां मांसं यावन्न सङ्घट्टयति कस्यापि, न करोति च रुन्धनक्रिया, आत्मीयानां तु दिनदशकं यावत्, तत्किमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—प्रसूतापत्या स्त्री सङ्घट्टनादि दश दिनानि न करोतीति लोकरीतिः, तत्रापि देशविशेषे क्वचिन्मूनाधिकत्वमपि ॥ ११८ ॥

### अथ पण्डितविष्णवर्षिगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च

यथा—सप्तदशभेदपूजाकरणं दिवसे शुद्धयति किं वा रात्रावपीति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सप्तदशभेदपूजाकरणं दिवसे एव शुद्धयति, न तु रात्रौ, तीर्थदौ तु कदाचित् पूजाकरणं, तत्तु काराणिकमिति ॥ ११९ ॥

तथा—पाक्षिकप्रतिक्रमणमुखवस्त्रिकाप्रतिलेखनानन्तरं पौषधिकं विना प्रतिक्रमणसूत्रादेशो दत्तो शुद्धयति न वा इति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—मुख्यवृत्त्या पौषधिकस्य दीयते इदं वृद्धवचोऽस्ति, परमेकान्तो ज्ञातो नास्तीति ॥ १२० ॥

तथा—पाशिकप्रतिक्रमणे क्षुत् कदा निवार्यते इति शान्तिं यावत्सु निवार्यते  
इति परम्पराऽस्ति ॥ १२१ ॥

तथा—आश्विनास्वाध्यायमध्ये कृततपसो दिनत्रयमथवा द्वादश दिनान्युपधानलोचनायामन्यालोचनायां वा न समायान्ति : इति  
प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सप्तम्यादिदिनत्रयं गणनायां नायातीति ॥ १२२ ॥

तथा—पुनर्दीक्षितस्य प्रज्ञाशदत्ताऽऽलोचना शुद्धयति न वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—योग्यतासद्भावे गुणैः पूर्णकं शुद्धयतीति ॥ १२३ ॥

तथा—सिंहादिसङ्क्रान्तित्रयमध्ये च कानि धर्मकार्याणि शुद्धयन्ति ? कानि नेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—दीक्षाप्रतिष्ठादिकं  
न शुद्धयति, अन्यानि तु शुद्धयन्तीति ॥ १२४ ॥

तथा—जिनालये धौतिदौकनं करोति तत्कस्मिन् सूत्रे प्रकरणे वाऽस्ति, तथा कुमतिम् इत्थं कथयन्ति—धौतिदौकनं देवनिर्माल्यं जायते,  
तस्य पुष्पादि लब्ध्वा कथं चटपयन्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—धौतिदौकनमिति परम्परा ज्ञायते, तथा तन्निर्माल्यं न कथ्यते, यतो भोगविण्ढं दम्बं  
निम्नहं बिति गीअत्था' इति श्राद्धविधौ वृत्तावुक्तत्वादिति ॥ १२५ ॥

तथा—स्वाध्यायचतुष्कं प्रत्यहं प्रोक्तमस्ति, तन्मध्ये कस्यचिदौ क्षमाश्रमणद्वयं सज्जाय संदिशानुं सज्जाय करं इति, कस्यचिन्वेकं  
सज्जाय करं इति, तस्य को हेतुरिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—तद्धेतुर्द्वैतैवेति ज्ञायते ॥ १२६ ॥

तथा—आराधनप्रकरणं श्रीसोमप्रभसूत्रिभिः कृतं, तत् कस्य ग्रन्थस्यानुसारेणेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—आराधनापताकाचतुश्शरणादि-  
ग्रन्थस्यानुसारेण कृते (तसि) ति ॥ १२७ ॥

तथा—अनादिनिगोदमध्ये यथा भव्यस्य ज्ञानदर्शनचारित्राणां सत्ता तथाऽभव्यस्य भवति न वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अभव्यस्य ज्ञानादिसत्ता भवति, परमभव्यतया सामग्रीसंद्भावेऽपि न प्रकटीभवति, भव्यस्य तु तद्योगे सा प्रकटीस्यादिति ॥ १२८ ॥

तथा—जातिनपुंसकगर्भजनितिर्धुर्मनुष्यमध्ये सम्यक्त्वं प्राप्यते न वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—जातिनपुंसकमध्ये सम्यक्त्वं देशविरतिश्च प्राप्यत इति आवश्यकतादावस्तीति ॥ १२९ ॥

अथ पण्डितरत्नचन्द्रगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च ।

यथा—यत्सम्बन्धिप्रतिष्ठितं जिनविम्बं वन्द्यं, तर्हि ते कथं न वन्द्या इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—“पासत्यो ओसन्नो, कुसीलसंसत्तओ अहाच्छेदो । दुग दुग ति दु, गेगविहा, अवदणिज्जा जिणमयंमि” ॥ १३० ॥ इत्यादिवृत्तनात्तेषामवन्द्यत्वं, प्रतिमानां त्वन्यतीर्थिकपरिगृहीतप्रतिमान्यतिरेकेणान्यासां वन्द्यत्वमस्तीति ॥ १३० ॥

तथा—अभिनिवेशमिथ्याद्वक्प्रतिष्ठितं जिनविम्बं वन्द्यतां प्राप्तं तत्र किं बीजमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—आत्मपूर्वसूरिभिस्तद्वन्दनादा अनिवारणमेव बीजं, किञ्च—शास्त्रेऽभिनिवेशमिथ्याद्वष्टित्वं निह्वानां प्रोक्तं, साम्प्रतीनास्तु मतिनो दिगम्बरं विहाय निह्वानं इति न व्यवहियन्ते, तथैव गुर्वादीनामाज्ञासद्भावादिति ॥ १३१ ॥

तथा—पञ्चदशस्वपि कर्मभूमिषु संवत्सरायनमासतिथिनामान्यमन्येवोत विशेषः तथा—वर्षादिऋतुभावेपि साम्यं उत कश्चिद्विशेष इति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यथाऽत्र संवत्सरादिनामानि तथाऽन्यत्रापि विज्ञायते, एवं वर्षादिऋतुभावेऽपीति ॥ १३२ ॥

तथा—अप्रतिष्ठितनिबन्धमर्चयतः पादादिनाऽऽशतयतो वा लाभालाभौ न वेति । लाभश्चेत्तर्हि प्रतिष्ठायाः किं प्रयोजनं इति प्रश्नोऽत्रो-  
त्तरं—अप्रतिष्ठितप्रतिमानां वन्दने व्यवहारो नास्तीति कथं लाभः? आशतनाकरणे तु प्रत्यवायो भवत्येष, तासु तीर्थकाराकारोपलम्भादिति ॥ १३३ ॥

तथा—द्वदशजल्पपट्टे श्रीहीरविजयसूरिप्रसादितप्रश्नोत्तरग्रन्थे च मार्गानुसारीति कोऽर्थः? असद्वहपरित्यागेन तत्त्वप्रतिपत्तिमार्गानु-  
सारितेति वन्दारुचिगतोऽर्थः स एव ग्राह्योऽन्यो वेति? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अभयदानादौ यस्मिन् धर्मकृत्येऽसद्वहो नास्ति तद्वर्म्मकृत्यं मार्गानुसारि,  
यत्र त्वसद्वहस्तत्र मार्गानुसारीति ज्ञातमस्ति, तथा “मगो आगमनीई, अहवा संविगबहुजणाइवं । उभयाणुसारिणी जा सा मगणुसारिणी  
किरिआ” १ ॥ श्रीदेवन्द्रसूरिकृतधर्मरत्नप्रकरणवृत्तावस्या गाथायाः सविस्तरं व्याख्यानमस्तीति ॥ १३४ ॥

तथा—आवश्यकोत्तराध्ययनादियोगेषु पत्तनीयमुद्गोध्यमोदकान् केचन गृह्णन्ति, केचन नेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—न गृह्ण-  
न्तीति वृद्धपरस्परस्तीति ॥ १३५ ॥

तथा—हैमव्याकरणे ‘व्यञ्जनात्पञ्चमान्तस्थायाः’ इत्यत्र समाहारत्वात्कथं स्त्रीलिङ्गत्वं, यतः ‘स्त्रीवे ह्रस्व’ इत्यनेन ह्रस्वत्वं प्राप्नोती-  
ति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सूत्रत्वादेव न ह्रस्वत्वमिति बोध्यम् ॥ १३६ ॥

तथा—‘दध्यस्थिसक्थ्यक्ष्णोऽन्तस्यान्’ इत्यत्रान्तग्रहणं किमर्थं? ‘षष्ठ्या निर्दिष्टं तदन्तस्य’ इत्यनेन सिद्धेरिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—  
‘अनेकवर्णः सर्वस्य’ इति परिभाषया सर्वस्याप्यादेशः स्यादित्यन्तग्रहणं, किञ्चित्सूत्रन्यासोक्तं यथा ननु दध्यस्थिसक्थ्यक्ष्णोऽन् स्यादिति क्रियतां  
किमन्तग्रहणेन? सत्यं, अन्तग्रहणामवे ‘अनन्तः पञ्चम्याः प्रत्यय’ इत्यनेन अन् इत्यस्य प्रत्ययसंज्ञा स्यात्, तथा च ‘अनोऽस्ये’ति अलोपे नस्य  
व्यञ्जनादित्वात् नामसिद्ध्यव्यञ्जने इत्यनेन पदत्वे दक्षा इत्यत्र ध्रुटस्वृतीय इति घस्य दत्वं स्यादित्यन्तग्रहणं, तदग्रहणे च प्रत्ययसंज्ञा न स्यात् १३७

तथा—समासधिकारे कर्मधारयसमासप्रयोजनं न प्रतिभाति, यतस्तस्य तत्पुरुषसमासात् पृथग्लक्षणाभाव इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—जरती चासौ गौश्च जरद्वी इत्यत्र कर्मधारयसमासत्वात् ‘पुंवत्कर्मधारये’ इत्यनेन पुंवद्भावस्तत्पुरुषत्वाच्च ‘गोस्तत्पुरुषादि’ त्यट् समासान्तः, टित्वाच्च ङीप्रत्यय इत्येकत्र समासद्वयप्रयोजनसम्भावः, तथा ‘विशेषणं विशेष्येणैकार्थ्यं कर्मधारयश्चे’ति पृथग् लक्षणसद्भावाच्च न काप्यांशङ्केति ॥ १३८ ॥

तथा—‘तृत्वसुनप्तुनेष्ट्वष्ट्वक्षत्तृहेतृपोतृप्रशालो’ इत्यत्र प्रशास्तुरिति कथं न जातमिति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—प्रशास्तृणां ऋः प्रशास्तुः एवं कृते दीर्घत्वाद् ‘ऋतो डुरि’ त्यस्याप्राप्तिरित्थं वाक्यकरणं दुर्निषेधार्थमिति ॥ १३९ ॥

तथा—हैमदधुवृत्तौ ‘णषमसदिति’ सूत्रावयवरूपायां एतत्सूत्रनिर्दिष्टयोश्च णषयोः परे ये णोऽसन् स्यादित्यस्य को भावः कस्मिंश्च निदर्शने विषयः? इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—एतत्सूत्रनिर्देशापेक्षया णषयोर्मध्ये षकर्त्तव्ये णोऽसन् भवति, न तु णे कर्त्तव्ये ष इति, तत्र षे कर्त्तव्ये णोऽसन् यथा प्रनष्ट इत्यत्र ‘यजसृजमृजराजभ्राजति’ पत्वे कर्त्तव्ये ‘नशश्च’ इति णत्वसूत्रमसत्तेन प्रथमं पः, कृते च पत्वे शकारान्तत्वाभावाणत्वं न भवति, णे कर्त्तव्ये च षोऽसन्न भवति यथाऽभिपुणोत्यत्र ‘रषवर्णे’ति णत्वे कर्त्तव्ये ‘उपसर्गात्सुगि’ति सूत्रविहितं पत्वमसन्न भवति तेन णत्वं सिद्धमिति ॥ १४० ॥

तथा—‘षणमसदिति’ च सूत्रं कथं न कृतं इत्यपि प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सूत्रपाठे ‘नाम्यन्तस्थाकवर्गेत्यादीनि पूर्वसूत्राणि, ‘रषवर्णान्नो णे’ त्यादीनि तु परसूत्राणि, तेन णषमसदिति निर्देशकरणादिति ज्ञापितं यन्नाम्यन्तस्थाकवर्गेत्यादीनि पूर्व (पर) सूत्राणे रपृवर्णान्नो णेत्यादीनि तु पर (पूर्व) सूत्राणीति, तत्फलं च पूर्वप्रश्नोत्तरे दर्शितमेवेति ॥ १४१ ॥

तथा—लिङ्गानुशासनादिसूत्रे पुलिङ्गं कटणेति पुलिङ्गमिति पुलिङ्गमिति वा युक्तमिति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—‘तौ मुमो व्यञ्जने स्वौ’ इति सूत्रेणानुस्वारानुनासिकावुभावपि स्त इति ॥ १४२ ॥



तथा—मद्यमासादिपानभक्षणे सम्यक्त्वक्षितये भवतो न वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सम्यक्त्वक्षितिर्भवतीत्येकान्तो ज्ञातो नास्तीति ॥ १४३ ॥

तथा—समवसरणस्या देवा देव्यश्च मनुष्याणां दृगोचरे आयान्ति न वेति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—देवादयो दृगोचरे समायान्ति ॥ १४४ ॥

तथा—मनुष्येयोनौ द्वीन्द्रियादिजीवोत्पत्तिस्तथैव तिर्यगेयोनौ कश्चिद्विशेषो वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—तिर्यगाश्रितः कोऽपि विशेषः शाल्ले

दृष्टो नास्तीति ॥ १४५ ॥

तथा—देवलोके या आपो वनस्पतयश्च सन्ति ताः किं पृथ्वीपरिणामरूपास्तत्परिणामरूपाश्चेत्तदा तासां कुत उत्पत्तिः? तथा शुष्कानां कचवरतया जातानां निर्माल्यतापन्नानां (च) का गतिरित्यागमाक्षरपूर्वकं प्रसाद्यं, कल्पवृक्षाः पृथ्वीपरिणामरूपा वनस्पतिपरिणामरूपा वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—आपस्तरवश्चोभयरूपाः, उत्पत्तिस्तु पद्महृद्दक्षिणं स्वस्थानेभ्यः इति, तथा निर्माल्यतापन्नशुष्कपत्रपुष्पादीनां त्वरितमेव विस्त्रसतो दिव्यानुभावेन वा विशरारुतामवेन न कचवरतापत्तिः, शाखागमाक्षराणि तु जीवाभिगमजम्बूद्वीपप्रदेशादौ भोगभूमिवर्णनाधिकारे सन्ति, भोगभूमित्वं च देवलोकस्यापि, यथा तत्र कचवराद्यभावस्तथा देवलोकैऽपि तत्त्वार्थादावुक्तमस्तीति । तथा कल्पवृक्षा वनस्पतिपरिणामरूपा इत्या वसुदेवहिण्डौ ऋषिपुत्राधिकारे मार्गत्रिकीर्णबीजेभ्यस्तेषामुद्भवदर्शनादिति ज्ञेयम् ॥ १४६ ॥

तथा—जीवाभिगमे विजयेदेववनतव्यताया हरितालहिङ्गुलद्वयः पदार्थाः सन्ति, तेषां प्रयोजने सति व्ययदुत्पत्तिः कुत इति प्रश्नो-

ऽत्रोत्तरं—हरितालदीनामुत्पत्तिर्विस्त्रसात् इति ॥ १४७ ॥

तथा—उपपदं विना कत्वाप्रत्ययस्य यबादेशो भवति न वेति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अव्यये पूर्वपदे सति धातोः परस्य कत्वाप्रत्ययस्य यबादेशो भवति, नान्यथा, पूर्वोत्तरपदव्यवहारश्च 'गतिफन्यस्तत्पुरुषः' इत्यादिना समासे सत्येव भवतीति ॥ १४८ ॥

तथा—'व्यञ्जनात्पञ्चमान्तस्थायाः सरूपे वा' इत्यत्रेतेरेतरद्वन्द्वे स्तीत्वे द्विवचनं घटते, समाहारद्वन्द्वे तु नपुंस्त्वे एकवचनमुभयथापि पञ्चमान्तस्थाया इति कथं सूपपन्नमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—'पञ्चमावयवयोगात्समुदायोऽप्युपचारात्पञ्चम एवमन्तस्यावयवयोगात्समुदायोऽप्यन्तस्था ततः पञ्चमश्चासौ अन्तस्था चेति कर्मधारयसमासकरणादत्र सर्वं सूपपन्नमथवा सूत्रत्वादेवेतेरेतरद्वन्द्वेऽप्येकत्वमिति ॥ १४९ ॥

तथा—'महामत्स्यभ्रूत्पन्नस्य तन्दुलमत्स्यस्य गवर्भस्थितिरान्तर्मुहूर्त्तिस्यायुःस्थितिरप्यान्तर्मुहूर्त्तिकी तत् कथं मिलेतीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—महामत्स्यभ्रूत्पन्नमत्स्यस्य गवर्भस्थितिरायुःस्थितिश्रैकस्मिन्नेवान्तर्मुहूर्त्ते भवति, परं गवर्भस्थितेरन्तर्मुहूर्त्तस्य लघुत्वाच्च किमप्यनुपपन्नं, किञ्च नवसमयादारभ्य घटिकाद्वयं यावदन्तर्मुहूर्त्तं, तस्यासङ्ख्येयभेदत्वाल्लघुत्वमिति ॥ १५० ॥

तथा—'युगन्धर्याधिककरणारम्भे भक्षणे चैकस्यैव जीवस्य हिंसा, किन्तु पर्याप्तिकर्तृवनिश्चितासङ्ख्यातापर्याप्तिकर्तृत्वमपि ? तथा तेषामाश्रय-मङ्गकृत एवोपद्रवः ? किन्तु तेषामपि हिंसेति सहेतुकं प्रसङ्गमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—'युगन्धर्याधिककरणारम्भभक्षणयोः पर्याप्तिकर्तृत्वसवत्तन्निश्चिता-सङ्ख्यातापर्याप्तिकर्तृत्वमपि हिंसा सम्भवति, न तु केवलश्रयमङ्गकृत उपद्रवः, तदवश्यंभावस्तु केवलिगम्य' इति ॥ १५१ ॥

तथा—'जत्येगो पज्जतो, तत्थ असंखा अपज्जता' इति वाक्यमेकेन्द्रियादिपञ्चेन्द्रियपर्याप्तिकर्तृत्वान्नाश्रित्य किन्वेकेन्द्रियपर्याप्तिकर्तृत्वान्नाश्रित्यैवेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यत्रैकः पर्याप्तस्तत्र तन्निश्चया नियमादसङ्ख्येया अपर्याप्ता इत्येकेन्द्रियानाश्रित्य व्याप्तिरसंख्येया, न तु द्वीन्द्रियादीन्, प्रज्ञापनाया-भेकेन्द्रियसूत्र एव तदभिधानादिति ॥ १२ ॥

तथा—'यत्कोकिलः किल मधावि' त्यत्र यच्छब्दाग्रे का विभक्तिः, 'तच्चारुचूते' त्यत्र तच्छब्दाग्रे च का विभक्तिः, अत्र यत्तच्छब्दावयवयौ वाऽनवयवौ वेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यच्छब्दाग्रे क्रियाविशेषणत्वे द्वितीया विभक्तिर्विक्यार्थमात्रवाचित्वे तु प्रथमापि सम्भवति, तच्छब्दाग्रे तु

तस्य पूर्वपरामर्शित्वेन प्रथमा विभक्तित्व्याल्यानान्तरेण सप्तम्यपीति यत्तच्छब्दव्यवयवान्वयौ च वर्त्तते इति सर्वं सुस्थमिति ॥ १५३ ॥

तथा—प्रत्ययर्चक्रिणोऽर्द्धचक्रिणो वा गङ्गासिन्धुकृतव्यवधानात्पूर्वोपरखण्डयोः साधने तत्र गमने क उपायः, चर्मरत्नाभावात्तयोरुत्तराणं कथं स्यादिति, तथा सच्चरतिभूतस्यादीनां त्रिखण्डाधिपत्यं वास्तवमुतोपमामात्रं वेति प्रश्नोऽत्रोच्चरं—तेषां देवादिसानिध्यात्सर्व्वं सम्भाव्यत इति ॥ १५४ ॥

### अथ पण्डितजयविजयगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च ।

यथा—‘अंतोमुहुत्तामिच्छंषी’ तिगाथायां प्राप्तसम्यक्त्वानां जीवानां योऽर्द्धपुद्गलपरावर्त्तकालः प्रोक्तः, सूक्ष्मसूक्ष्मेतरभेदभिन्नद्रव्यक्षेत्र-  
कालभावजनितप्रभेदानां पुद्गलपरावर्त्तानां मध्ये कस्यायमर्द्धपुद्गलपरावर्त्तः कालः इति, प्रश्नोऽत्रोच्चरं—सूक्ष्मक्षेत्रपुद्गलपरावर्त्तसम्मान्यते, यदुक्तं  
प्रवचनसारोद्धारसंस्कपट्यधिकशततमद्वारवृत्तौ पुद्गलपरावर्त्तस्वरूपाधिकारः—‘इह च बादरे प्ररूपिते सति सूक्ष्मः सुखेन शिष्यैः समधिगम्यते इति  
नादरपुद्गलपरावर्त्तप्ररूपणा क्रियते, न पुनः कोऽपि बादरपुद्गलपरावर्त्तः कचिदपि सिद्धान्तप्रदेशे प्रयोजनवानुपलक्ष्यत इति’ । तथा सूक्ष्माणामपि  
चतुर्णां पुद्गलपरावर्त्तानां मध्ये जीवाभिगमे पुद्गलपरावर्त्तः क्षेत्रतो बाहुल्येन परिगृहीतः क्षेत्रतो मार्गणाया तस्योपादानात्, तथा च सूत्रं ‘जे साइस-  
पज्वसिए मिच्छदिद्वी से जहन्नेण अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अणंतं कालं, अणता ओसपिणीओ कालओ खेतओ अवड्डं पगेगलपरिअड्डं देसूणमित्यादि’  
ततोऽन्यत्रापि यत्र विशेषनिर्देशो नास्ति, तत्र पुद्गलपरावर्त्तग्रहणे क्षेत्रपुद्गलपरावर्त्तो गृह्यत इति ॥ १५५ ॥

तथा—देवद्रव्याधिकारे कथं श्राद्धैर्देवद्रव्यवृद्धिं कर्तुं शक्यते, यदुक्तमभिगमे—‘भक्खंतो जिणद्वन्नं, अणंतं संसारिओ भणिओ’ इति  
जानन्नध्यात्मव्यतिरिक्तानां यच्छंस्तेषां संसारवृद्धिं प्रति कारणं भवति, न हि विपं कस्यापि विकारकृत्त स्यात्, सर्व्वेषामपायकृदेव स्यात्, ग्रन्थान्तरे

आलोचनाधिकारे मूपाकीनामपि दोषोत्पत्तिरुक्ताऽस्ति, तदत्र का वृद्धिं प्रति रीतिरिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—मुख्यवृत्त्या श्रद्धानां देवद्रव्यस्य विनाशन एव दोषो, यथाकालमुचितव्याजदानपूर्वकं ग्रहणे तु न भूयान् दोषः, समधिकव्याजदाने पुनर्दोषाभावोऽवसीयते, तेन तेषां यत्तद्वर्जनं तन्निःशूक- तादिदोषपरिहारार्थं ज्ञेयं । किञ्च-श्रीजिनशासने देवद्रव्यस्य विनाशो दुर्लभोऽपि तद्वशादिदेशनादानोपेक्षणादौ साधोरपि भवदुःखं च शास्त्रे दर्शिते स्तः, तेन तदभिज्ञानां श्रद्धानां तस्याव्यापारणमेव यौक्तिकं, मा कदाचित्प्रमादादिना स्वल्पोऽपि तदुपभोगो भवत्विति सुस्थानस्थापनप्रत्यहं सारा- दिकरणपुरस्सरं महानिधानवत्तत्परिपालने च तेषामपि न कोऽपि दोषः, किन्तु तीर्थकृत्नामकर्मनिबन्धनादिहेतुर्लोभ एवेति, इतरस्य तु तद्भोगदोषा- नभिज्ञस्य निःशूकताद्यसम्भवाद्वृद्ध्यर्थं ग्रहणकग्रहणपूर्वकं समर्पणे न दोष इति तथा व्यवहियमाणमस्तीति सम्भाव्यते । मूपाकादिषु तु वृद्ध्याद्यर्थं समर्पणव्यवहारभावात्तेषां तद्भक्षणे दोष एवेति ॥ १९६ ॥

तथा—‘ससिधवला अरिहंता’ इति गाथायामर्हददीनां श्वेताद्यारोपः, स किंहेतुक इति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अर्हन्तः पञ्चवर्णाः सिद्धास्त्व- वर्णाः शास्त्रेषु व्यक्ततथैवोक्ताः सन्ति, आचार्यादयोऽपि केवलपतितादिरूपा एव न भवन्ति, तेनैतेषु पूर्वोक्तार्थवर्णोक्तमेण- ध्यायमानेषु श्वेताद्यैक- वर्णारोपणपूर्वकमेपां ध्यानं सिद्धिकृद्भवतीति, (तथाव्यतं) ते तु सर्वास्वपि हि क्रियासु द्रव्यक्षेत्रकालभावादिसामग्रीविचित्रासु प्रवर्तन्त इति न काप्यनुपपत्तिरिति ॥ १९७ ॥

तथा—मनुजक्षेत्रे व्यवस्थितानां मनोमात्रग्राहका ऋजुमतय इति कल्पसूत्रावचरण्यादौ, तथा प्रज्ञापनाद्युक्तौ—‘मनःपर्यायज्ञानं’ इदं चार्द्धतृतीयद्वीपद्विसमुद्रान्तर्वर्तिसंक्षिप्तमनोगतद्रव्यावलम्बनं’ इति व्याख्यानानुसारेण वर्तमानानामेव संज्ञिनां मनोगतपर्यायावभासो जायत इति, तथा च सति यदुक्तं प्रज्ञापनाटीकार्या—‘मनःपर्यायज्ञानमपि पर्योपमासङ्ख्येयभागमतीति जानातीति कथं सङ्गच्छत इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—वर्तिपदं मनुज-

क्षेत्राधिकक्षेत्रवर्त्तमानेनोपगतद्रव्यावबोधनिषेधपरं नतु वर्त्तमानसंक्षिप्तमनोगतद्रव्यावबोधनियमपरं, तेनवर्त्तमानेनोपगतद्रव्यावबोधनियमपरं यथोक्तानेन मनोगतभावान् जानतीति न कश्चिद्विरोध इति ॥ १५८ ॥

तथा—असुरकुमारादिदशनिर्कायानां भवनानि कया रीत्या सन्ति, प्रज्ञापनार्थां तु 'कहि णं भंते ! दाहिणिह्मा असुरकुमारादि देवा परिव-  
सन्ति : गोअमा ! जंबूद्वीवे दीवे इभीसे रयणप्पभाए पुढ्ढीए' असीउत्तरजोअणसतसहस्रबाह्छाए मज्जे अट्ठहत्ते, जोअणसतसहस्रे चोत्तिसं  
भवणावाससतसहस्रा भवन्ती' त्येतत्सूत्रानुसारेण स्थिताना नवानामालपकाः प्रवर्त्तिताः, तेन तेषां कथं पृथक्त्वं स्यादिति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—तेषां विशेष-  
पतः स्थाननैयत्याक्षराणि शास्त्रान्तरे न दृश्यन्ते, प्रज्ञापनार्थां तु सामान्यत उक्तोतीति ॥ १५९ ॥

तथा—स्थानाङ्गे चतुर्भिः कारणैर्लोकै उच्यते भवति, तथा अन्धकारमपि, अहंनिर्वाणे लोकेऽन्धकारं भवति, तथा त्रयाणां नाशे समानमुत  
कश्चिद्विशेषो वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—लोकानुभावोदेवादीनां चतुर्णामप्युच्छेदे द्रव्यान्धकारं समानं, अङ्गं विना शेषत्रयोच्छेदे, भावान्धकारमधिकं  
स्यादिति विशेषः स्थानाङ्गवृत्त्यनुसारेण ज्ञायत इति ॥ १६० ॥

तथोपधानवाहकाना मध्ये कैश्चिद्यथाविधि प्रतिलेखनापूर्वं प्रमार्जना कृता, तदनु कश्चिदन्यस्तदवस्थः समागत्य प्रतिलेखनां करोति, काजको-  
द्धरणं न करोति, तस्य दिनवृद्धिर्भवति न वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—उपधानवाहिभिः काजकोद्धरणे कृतेऽपि यद्यन्यः कश्चित्त्रागत्योपधिप्रतिलेखनां  
करोति, तदा तत्काजकोद्धरणमपि कृतं विलोक्यते, अन्यथा दिनवृद्धिः स्यादिति ॥ १६१ ॥

तथा—प्रतिकालमेकैकं स्वाध्यायं प्रस्थाप्य कालानुष्ठानं क्रियते, तदनु अवशिष्टाः स्वाध्यायाः कालमण्डलानि च क्रियन्ते, पौरुष्याः  
सकले सति, नो चेच्चतुर्थग्रहरान्तर्विधीयत इति सामाचार्या सामान्येन प्रोक्तेऽपि कैश्चिद्विद्वीतैरुक्तभोजनानां साधूनामनुष्ठानं कार्यत इति, वदन्ति च

ते-श्रीपरमगुरुवः इत्थं कारयन्ति तथाऽस्माभिः कार्यत इति, तत्र किं भोजकानामभोजकानां वा कार्यत इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं--कालग्रहण-  
द्वयशुद्धौ वैकल्यप्रतिक्रमणे सत्यवशिष्टकालमितस्वाध्याये प्रस्थापिते सत्याहारादि कर्तुं कल्पते, नान्यथा, तदन्ववशिष्टां क्रिया सन्ध्याया करोती-  
त्यात्मीयसङ्घाटकप्रवृत्तिरिति ॥ १६२ ॥

## अथ पण्डितधनविजयगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च ।

यथा सिद्धपञ्चाशिकायामनन्तकालच्युतसम्यक्त्वादिविशेषणविशिष्टा एवैकस्मिन् समयेऽष्टोत्तरं शतं सिध्यन्तीत्युक्तं, तथा च सति  
ऋषभादयः सर्वेऽष्टोत्तरशतमनन्तकालच्युतसम्यक्त्वादिविशेषणविशिष्टा एव अन्यथापि वा ?; विशिष्टा एव चेत्तदा ऋषभदेवस्यानन्तकालच्युत-  
सम्यक्त्वमन्यथा वा ? अनन्तकालच्युतसम्यक्त्वं चेत्तदा ऋषभदेवस्य त्रयोदश भवा एव कथं ? पूर्वमपि सम्यक्त्वलाभात्, अन्यथापि वेति पक्ष-  
श्चेत्तदा सिद्धपञ्चाशिकादिग्रन्थैरसह कथं संवादः ? आश्चर्यकृत्त्वेन चेत्तदा-तदाश्चर्यं किमुत्कृष्टावगाहनया तीर्थकृत्त्वेन वा सङ्ख्यातकालपतितत्वा-  
दिना वा ? त्रिधापि वेति व्यक्त्या प्रसाद्यमिति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं-एकस्मिन् समयेऽष्टोत्तरं सिध्यन्तस्सर्वेऽप्यनन्तकालच्युतसम्यक्त्वादिविशेषणविशिष्टा  
एव सिध्यन्तीत्यक्षराणि यदि सिद्धपञ्चाशिकादिषु भवन्ति तदा बाहुबलः षड्लक्षपूर्वप्रमाणायुषोऽपवृत्तिरिव श्रीऋषभदेवस्यापि सिद्धिराश्चर्यकृत्त्वेन  
समर्थनीया, एवं तदधिकारे यद्यदसम्भवि तत्सर्व्वमाश्चर्य एवान्तर्भावनीयं ॥ १६३ ॥

तथा--श्रावकेण पूर्वं चतुर्विधाहारोपवासप्रत्याख्यानं कृते सायं प्रतिक्रमणसमये सामायिककरणानन्तरं षडावश्यकसत्यापनस्थाना-  
शून्यार्थं मुखवल्लिकाप्रतिलिखनापूर्वं चतुर्विधाहारोपवासप्रत्याख्यानं कृतं विलोक्यते : किंवा पूर्वकृतमेव प्रमाणमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं-यदि पूर्वं



तथा—सर्वेषु युगलिशेषेषु युगलिनां गर्भजगर्भव्युत्क्रान्तादिष्वेदभिन्नानां जगन्व्यपश्यतोत्कृष्टभेदभिन्नमायुस्त्रयं किञ्चित्कृष्टमेवेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—युगलिनामुत्कृष्टमायुर्यथास्थानं त्रिपल्योपमादि प्रतीतं, जगन्वं तु क्षुल्लग्नभवरूपं ज्ञेयं, यत्त्रिपल्योपमप्रमितमप्यायुरपवर्च्यं क्षुल्लकभवरूपं कश्चिज्जन्तुः करोतीत्यर्थकाक्षराण्याचाराङ्गदृश्यादौ सन्ति, परं तदपवर्त्तनमभ्यासावस्थायामेव भवति, तदूर्ध्वं तु न भवति, तेषां निरुपक्रमायुष्कत्वात्, मध्यमं तु युगलिनीगर्भेऽपि नगलसमिता गर्भजा उगद्यन्ते निष्पद्यन्ते च द्वयमेव, दोषास्तु स्वमायुरपवर्च्यं गल्भस्था एव त्रियन्ते, तदा क्षुल्लकभवादधिकसमयादिभवने सम्भवतीति ॥ १६८ ॥

तथा—मदनफलं विद्धमन्त्रमुहूर्तादनु प्रासुकं स्यात्किञ्चा सचित्तेयेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—विद्धं मदनफलमन्त्रमुहूर्तादनु वृद्धैरचित्ततया न्यवहियमाणमस्तीति ॥ १६९ ॥

तथा—द्वौसचित्तयोः सङ्घट्टो निरन्तरः परम्परश्च परिहर्तव्यः, तत्र परम्परः किं द्वाभ्यां त्रिभिर्बहुभिर्वेति सङ्ख्या प्रसाधेति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—तयोः परम्परसङ्घट्ट एकेन द्वाभ्या चान्तरितः परिहरणीयः, त्रिभिस्तन्त्रितस्तु न लंगतीति ॥ १७० ॥

तथा—प्रवचनसारोद्धारादिषु जगन्व्यत एकसमये दश तीर्थकराः समुत्पद्यन्ते इत्युक्तं, सिद्धपञ्चाशिकादिषु चैकसमये चत्वारस्तीर्थकराः सिध्यन्तीत्युक्तं, तथा चैकसमयजननना दशतीर्थकृतामेकसमय एव सिद्धिसम्भवे एकसमये चत्वारस्तीर्थकराः सिध्यन्तीति कथं सङ्गच्छत इति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—दश तीर्थकरा एकसमये समुत्पद्यन्त इत्यत्र समयशब्देन परमनिष्कृष्टकालो वा प्रस्तावो वा व्यक्ततया न ज्ञायते, चत्वारस्तीर्थकरा एकसमये सिध्यन्तीत्यत्र तु परमनिष्कृष्टकाल एव निश्चीयते, तेन न काऽपि विप्रतिपत्तिरिति ॥ १७१ ॥



तथा--श्रीभगवत्युक्ता एकपुत्रस्य नवशतपितरः कथं सम्भवन्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं--द्वादशमुहूर्तान् यावद्वैर्यमविनष्टं स्यात्तावत्काला-  
वधि नवशतमितवृषभादिभिर्भुक्ते गवादौ यो गवर्भ उत्पद्यते स तावता पुत्रो भवतीति ॥ १७२ ॥

तथा--षड्विकृतिभोक्तुः श्रद्धालोर्विकृतिप्रत्याख्यानं स्यान्नवेति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं--षड्विकृतिभोगोऽपि विकृतिप्रत्याख्यानं भवति यतः  
श्राद्धविधायक्यविकृतिसम्बन्ध्यपि तदुक्तमस्तीति ॥ १७३ ॥

तथा--सामायिकमध्ये सामायिकग्रहणे यावन्त आदेशाः पूर्वसामायिके मार्ग्यन्ते, तावन्त एवग्रन्तेः किं वा न्यूनाः?, न्यूनत्वे च सामा-  
यिकवहिनपौषधे गृहीते तन्मध्ये रात्रिपौषधग्रहणेऽपि पूर्णादेशमार्गमिति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं--सामायिकमध्ये सामायिक-  
ग्रहणे सामायिकदण्डकोच्चारणानन्तरं नइसणइ ठाउं इत्यादेशो मार्ग्यते द्विसप्तपौषधमध्ये रात्रिपौषधग्रहणे च बहुबल कारस्युं इतिपर्यन्ता आदेशा  
मार्ग्यन्ते, प्रतिलेखनादेशास्तु सान्ध्यप्रतिलेखनापाठनावसरे मार्गितत्वात्पुनर्न मार्ग्यन्त इति ॥ १७४ ॥

तथा--यतिना सचित्तपानीयपरिहरिणा श्रावकैण वा प्रभाते नमस्कारसंहितादिकालमात्रप्रत्याख्याने कृते सन्ध्याप्रतिलेखनायां च  
त्रिविधाहारप्रत्याख्याने कृतेऽकृते च सायंप्रतिक्रमणसमये तयोः पानाहारादिप्रत्याख्यानं कार्यते? किं वा चतुर्विधाहोरत्यदिप्रत्याख्यानमिति,  
प्रश्नोऽत्रोत्तरं--येन सन्ध्याप्रतिलेखनायां त्रिविधाहारप्रत्याख्यानं कृतं स्यात्तस्य पानाहारप्रत्याख्यानं कार्यते, येन तु तत्कृतं न स्यात् तस्य  
चतुर्विधाहारप्रत्याख्यानं कार्यत इति ॥ १७५ ॥

तथा--मध्वादेः सचित्ताऽचित्ता वा,? तत्सङ्घट्टे पर्युषितपूषिकादिसङ्घट्टे च साधुभिराहारादि गृह्यते नवा इति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं--प्रासुक-

पाथसि पूतरकादिसद्भाव इव मध्वादिमध्ये रसजजीवसम्भवेऽपि तस्य सचित्ता नोच्यते, तत्सद्दृष्टे तथा पर्युपितपूषिकादिसद्दृष्टे च यतीनामाहारादि गृहीतं न शुद्ध्यति, तज्जीवानां बाधासम्भवात्प्रसङ्गपरिहारार्थत्वाच्चेति ॥ १७६ ॥

तथा—अन्तर्वाच्यादिष्वेकयोजनप्रमाणं सुघोषाघण्टामानमुक्तं, पृथक् पृथक् पत्रेषु च ‘वारसजोअणिहुलेत्यादि’ सुघोषामानं दृश्यते, तेन महाग्रन्थेषु किं मानमुक्तमस्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—जम्बूद्वीपप्रज्ञप्त्यादिग्रन्थेषु एकयोजनं सुघोषाघण्टामानमस्तीति ॥ १७७ ॥

तथा—उपधानमध्ये मुखपोतिकाविस्मरणे सति शतहस्तगमने भुक्तच्छण्डने रजन्या देहचिन्तोत्थानादिषु च समनैव दिनवृद्धिरन्यनाधिका वा? तस्या च दिनवृद्धौ संत्यामुपधानमध्ये एव दिनानि कार्यन्ते? किंवा कारणे उपधानाद्बहिरिति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—उपधानंविधिषु शतहस्ताद्बहिरुत्थितवृद्धिर्मुखपोतिकाविस्मरणे भुक्तच्छण्डनादिषु च सामान्यतो दिनवृद्धिरुक्ताऽस्ति, तथैव च कार्यते, तथा तानि वृद्धिदिनानि प्रायेणोपधानमध्ये एव कार्यन्ते, महाकारणे तु नैकान्त इति ॥ १७८ ॥

तथा—उपधानालोचनापौषधा उपवासादितपससहिता विकृत्येकाशनसहिता वा दीयन्ते? तेऽपि च केवलदिवसपौषधा अहोरात्रपौषधा वेति? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—उपधानालोचनापौषधा उपवाससहिता अहोरात्ररूपा एव दीयन्त इति ॥ १७९ ॥

तथा—जम्बूद्वीपमहाविदेहे चतुर्षु विजयेषु विहरमाणजिनचतुष्टयसत्त्वे तत्रैवान्यविजयेषु साम्प्रतीनकालेऽन्यजिनाना जन्मकुमारावस्थादि सम्मान्यते नवेति? विहरमाणपदवाच्या वर्तमाना एव जिनाः समवसरणस्था एव वेति? महाविदेहक्षेत्रं च सम्पूर्णमपि कदाचित् केवलपूर्यायोपेताजिनविरहितं सामान्यतः तीर्थकरसत्तया विरहितं च भवति नवेति? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—साम्प्रतीनकाले विहरमाणजिनानाधिष्ठितविजयेषु परेषां तीर्थकृतां

ज्ञातो नास्ति, तथा कैल्यार्थाये वत्तेनाना मिना विहमाणाद्वाच्या भवन्ति, तथा सम्पूर्णमहात्रिदेहक्षेत्रं कदाचनानपि १८० ॥

जन्मकुमारवत्स्याद्यसम्भवो ज्ञातो नास्ति, तथा केवलियाय वतनाया तं विदुः ।  
नमकुमारवत्स्याद्यसम्भवो ज्ञातो नास्ति, तथा केवलियाय वतनाया तं विदुः ।

तथा—स्पर्शनेन्द्रियाद्गान्त्राणस्पर्शस्य तत्त आगताः शरीरं स्पर्शयन्ति ।  
प्रश्नोऽत्रोत्तरं—नवयोजनेभ्यः परतः पायोऽवृष्टौ तत् आगताः शरीरं स्पर्शयन्ति ।  
उत्तरं—नवयोजनेभ्यः परतः पायोऽवृष्टौ तत् आगताः शरीरं स्पर्शयन्ति ।

इति : प्रश्नोऽत्रोत्तरं नन्वयान्तरं पडिलेहाउ पडिलेहणा क्रियमाणयां पडिलेहाउ इत्यादिशमागणानन्तरं कृतेऽप्युपाधि-  
दृष्टान्तः पुष्पमालावृत्त्याद्यनुसारेण बोध्या इति ॥ १८१ ॥  
तथा—श्रावकैः पौषवोपधानादिषु सन्ध्याप्रतिशेखनाया क्रिया विरोध्यते नवेति : प्रश्नोऽत्रोत्तरं—पूर्वं कानकोद्धारे कृतेऽप्युपाधि-  
नन्वयमव्योक्तिकप्रतिशेखनानन्तरं उपधिप्रतिशेखने कृते तत्कानकोद्धारः कृतो विरोध्यते नवेति : प्रश्नोऽत्रोत्तरं—पूर्वं कानकोद्धारे कृतेऽप्युपाधि-  
नन्वयमव्योक्तिकप्रतिशेखनानन्तरं उपधिप्रतिशेखने कृते तत्कानकोद्धारः कृतो विरोध्यते नवेति : प्रश्नोऽत्रोत्तरं—पूर्वं कानकोद्धारे कृतेऽप्युपाधि-

तथा—श्रावकैः पारिवर्षिकानां पुत्रैः तत्कालकोट्यारः कृतां विलेखनानन्तरं  
उपधिमुखपोतिकाप्रतिलेखनानन्तरं उपधिप्रतिलेखने कृते तत्कालकोट्यारः कृतां विलेखनानन्तरं  
प्रतिलेखनानन्तरं तत्कालकोट्यारः कृतो विलेख्यत इति ॥ १८२ ॥  
वाचना दत्ता माला परिधाप्यत उत पूर्णं तत्तपसि मालापरिधानानन्तरं  
वचनं दत्त्वा समुद्देशादिक्रिया कारयित्वा माला

तथा—षष्ठोपधानप्रवेशे आद्यादिन एव नाष्टमः प्रवेद्य प्रवेदनकं  
आद्यवाचना दीयत इति ! प्रश्नोत्तोत्तरं=षष्ठोपधानप्रवेशाद्यदिने १८४ ॥

आद्यवाचनां दोषाश्च ॥ १८३ ॥  
परिधाप्यत इति ॥ १८३ ॥  
अस्मिन् आदयति नवेति प्रश्नोऽत्रोचरं-शुद्धयतीति सम्प्रदाय इति ॥ १८४ ॥  
कर्तुं न शुद्धयतीति ॥ १८५ ॥  
नञ्चणः प्रायः कर्तुं न शुद्धयतीति ॥ १८६ ॥

परिधाप्यत इति ॥ १८३ ॥  
तथा—जिनलये प्रत्याख्यानं पारयितुं शुद्धयति नैवेति प्रश्नोऽत्रोचर—तत्तपः प्रायः कर्तुं न शुद्ध्यतात ॥ १८४ ॥  
तथोपघानेषूह्यमानेषु विंशतिस्थानकादि तपः कर्तुं न शुद्ध्यति नैवेति प्रश्नोऽत्रोचर—

तथोपधानेषुह्यमानेषु विशतिस्थानकादि तपः कष्टु न युञ्जते

तथा—साध्वीभिः श्रागिमाभिश्च दैवसिरुप्रतिक्रमगे सुभदेनया भगई इति कथ्यते, तदनुरोधेन साध्वमाने श्राविमाभिरत्र पाक्षिकसूत्रस्था-  
नीयप्रतिक्रमणसूत्रग्रान्ते कथ्यते, पर सा कथयितुं युज्यते नेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—साध्वीनां श्राद्धीनां चैवं स्तुतिरुत्थने सामाचार्येव  
प्रमाणमिति ॥ १८६ ॥

## अथ वृद्धपण्डितशुभविजयगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च ।

यथा—तीर्थकुब्जिस्सह ये दीक्षा गृह्णन्ति ते किं तीर्थकुब्जपाठोच्चारदिकं कुर्वन्त्युत भिन्नामिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—तीर्थकुब्जैः सार्द्धं दीक्षाग्रहणं  
कुर्वद्भिः स्वयं दक्षत्वात्तत्तत्त्रेककाशानुसारेण तपस्याग्रहणं क्रियते, न तु तीर्थकरवत्, प्रथमतीर्थकृता सार्द्धं तु तीर्थकरवत् पाठोच्चारं कुर्वन्तीति  
ज्ञायते ॥ १८७ ॥

तथा—सङ्ग्रहण्यन्तर्वाच्यादिषु लोकान्तिकेदेवाना नव निकाया उत्तमचरित्रे दश निकाया कथिताः तत्र किं प्रमाणमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—  
बहुग्रन्थेषु तेषां नव निकाया उक्ताः, उत्तमचरित्रे यदि दश तदा मतान्तरमिति ज्ञेयम् ॥ १८८ ॥

तथा—चक्षुर्विकलस्य केवलज्ञानमुत्पद्यते नेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—उत्पद्यत इति ॥ १८९ ॥

तथा—फुङ्कानीरं सीररीनीर पाडलनीरं च द्विविधाहारे कल्प्यतयोक्तं, तत् किंस्वरूपमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—फुङ्कानीरं सीररीनीरं च  
देशविशेषे प्रसिद्धं भविष्यति, पाडलनीरं तु पाडलिवृक्षपुष्पमिति ॥ १९० ॥

तथा—गोआरफली चण्णदि द्विदशस्य मज्झिमा च द्विदशलं स्यान्नमेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—द्विदशलं भवतीति ॥ १९१ ॥

तथा—नल्लवाणिः सूर्यातपमन्तरेण कतिभिर्दिनैः शुष्कवणिर्भवतीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सूर्यातपतास्त्रिभिर्दिनैः शुष्कवणिः स्यात्तमन्तरेण तु यदा स्वयं शुण्यति तदा शुष्कवणिर्नित्वत्र दिनैर्यत्यमिति ॥ १९२ ॥

तथा—पौषघ्राहिण्य आस्तिक्यः गुरोः पुरो गुंहलिका कुर्वन्ति नवा द्रव्यस्तत्त्वादिति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—द्रव्यस्तत्त्वान्न शुद्धयतीति ॥ १९३ ॥

तथा—देवपनास्त्रकरणानन्तरं श्राद्धं आरत्युत्तारणमङ्गलदीपादि कृत्यं कुर्वन्ति नवेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—तयोः करणेऽधुना प्रवृत्तिर्न दृश्यते, निषेधस्तु शाल्मे दृष्टो नास्तीति क्वचिद्देशविशेषे तत्कुर्वन्त्यपीति ॥ १९४ ॥

तथा—व्याख्यानेष्वेवायां कृतसामायिका श्राद्धी आदेशमार्गणपूर्वकं प्रतिलेखना करोत्यन्यथा वेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सामायिकमध्ये प्रति-  
लेखनादेशमार्गेण यौक्तिकमिति ॥ १९५ ॥

तथा—अनेकशकलीकृतकरमर्द्धितप्रहरमात्रधृतताम्बूलदलं सचित्तमचित्त वेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—एतादृशपत्रस्याचित्तीमवेने व्यवहारो नास्तीति ॥ १९६ ॥

अथ पण्डितदेवविजयगणिकृतप्रश्नस्तदुत्तरं च,  
यथा—कश्चित् श्राद्धः स्वद्रव्येण प्रतिमा कश्चित्पुस्तकं च, तदा प्रतिमाकर्तुर्देवद्रव्यं पुस्तकलेखकस्य ज्ञानद्रव्यं च लगति नवेति प्रश्नो-  
ऽत्रोत्तरं—उभयोरपि यथाक्रमं ते उभे न लगत इति सम्भाव्यते ॥ १९७ ॥

अथ पण्डितकान्हर्जीगणिकृतप्रश्नस्तदुत्तराणि च,  
यथा—तीर्थकुद्दानमभव्याः प्राप्नुवन्ति नवेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—ते नाप्नुवन्तीति वृद्धवादः, अक्षराणि तु ग्रन्थे दृष्टानि न स्मरन्तीति ॥ १९८ ॥

तथा—श्री शत्रुञ्जयतीर्थमभव्या न स्पृशन्तीत्यक्षराणि क सन्तीति : प्रश्नोऽत्रोत्तरं—श्रीशत्रुञ्जयमाहात्म्ये सन्ति, यथा, “अमन्याः पापिनो जीवा, नामुं पश्यन्ति पर्वतम् । लभ्यते चापि राज्यादि, नेदं तीर्थं हि लभ्यते ॥ १ ॥” इति ॥ १९९ ॥

तथा—बलिचञ्चा राजधानी ईशानेन्द्रकुधा छारङ्गारमुर्मरभूताऽभूतसत्यमुत साक्षाच्छाराङ्गारभूता तत्सत्यमिति : प्रश्नोऽत्रोत्तरं—भूतशब्दस्योपमावाचकत्वेन दिव्यानुभावतो बलिचञ्चाराजधान्यङ्गारादिसदृशी जातेति सम्भाव्यते ॥ २०० ॥

### अथ पण्डितकनककुशलगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च,

यथा—श्रीभद्रबाहुस्वामिना नवमपूर्वबुद्धतः श्रीकरपः श्रीपर्युषणपञ्चादिनी यावद्वाच्यमानोऽस्ति, श्रीसुधर्मस्वामिप्रभृत्याचार्याणां तु पर्युषणासमये किं शास्त्रं वाच्यमानमभूदिति : प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सुधर्मस्वामिप्रमुखा नवमपूर्वगतमेतदध्ययनं यथावस्थितं व्याख्यातवन्त इति सम्भाव्यते ॥ २०१ ॥

तथा—गोमहिष्यजाप्रभृतीनां सर्पिष एवं क्षारमिष्टादिपयसा गोमहिष्यादितक्राणां चैकद्रव्यत्वमुत भिन्नद्रव्यत्वं वा ? आहविद्धौ त्वित्थं प्रोक्तं—‘यत् पृथक्पृथक्कनामास्वादत्वेन द्रव्यत्वं परं तेषु तक्रादिषु पृथक् पृथक् आस्वादत्वं न तु नामत्वमतस्तत्र कया रीत्या द्रव्यसङ्ख्या गण्यत इति : प्रश्नोऽत्रोत्तरं—गोमहिष्यजाप्रभृतीनां सर्पिषः क्षारमिष्टादिपानीयानां च गोमहिष्यादितक्राणां चैकद्रव्यत्वं गण्यते, यत उभयभिन्नत्वे सति भिन्नद्रव्यत्वं स्यादिति ॥ २०२ ॥

तथा—लपनश्रियां विकृतिद्वयं घृतगुडरूपं वा किमुत कटाहविकृतिरूपता गण्यत इति : प्रश्नोऽत्रोत्तरं—लपनाश्रियमाश्रित्य योगविध्यनुसारेण लपनश्रीर्द्विप्रकारा—एका विकृतिरूपा परा निर्विकृतिरूपा च, तत्र विकृतिरूपाया तु घृतगुडरूपविकृतिरूपं गण्यते ॥ २०३ ॥

तथोद्धादिनेमनवारगृहे यथा यतीनां विहर्तुं न कल्पते, तथैव पौषधिकसप्तकमेनवारगृहेऽप्यथा वेति, प्रश्नोऽत्रोच्चरं—विवाहजेमन-  
वारवत्पौषधिकसप्तकमेनवारगृहेऽपि मुनीनां विहर्तुं न कल्पत इति ॥ २०४ ॥

तथा—रात्रिराद्धं पूषिकादि केषाञ्चिद्रात्रिभोजनविरतिमतां गृहिणामनु न कल्पते, तथा यतिजनानां तदनु कल्पते नेति, प्रश्नोऽत्रोच्चरं—  
तेषां रात्रिराद्धाद्यग्रहणं तु बहुजीविराधनासम्भवाद्भान्निप्रथमप्रहरद्वयराद्धपूषिकाद्विद्विष्टादिषु पर्युपितत्वशङ्कासम्भवाच्च, न तु रात्रिराद्धाल-  
ग्रहणे रात्रिभोजनविरतिभङ्ग इति, यतिभिस्तु पर्युपितत्वसम्भावनाया तन्न ग्राह्यं, अन्यथा तु यथावसरं ग्रहणीयं, तेषां परार्थकृतावग्रहित्वेन  
विराधनाया अपावादिति ॥ २०५ ॥

### अथ पण्डितदर्शनसागरगणिकृतप्रश्नौ तदुत्तरे च

यथा—चतुर्दशीयप्रतिक्रमणप्रान्ते 'सञ्ज्ञाय संदिसाउं भगवन् ! सञ्ज्ञाय करं' इत्यादेशमार्गं, क्रियते तु नमस्कारः उपसर्गहरस्तोत्रं संसार-  
दावनलदाहनीरं स्तुतिश्चेति तत्कथमिति, प्रश्नोऽत्रोच्चरं—प्राक्षिकप्रतिक्रमणप्रान्तस्त्राध्याये स्तुतिस्तोत्राद्विपठेनमावश्यकं चूर्ण्यभिप्रायेण परम्परया  
विधीयत इति ॥ २०६ ॥

तथा—राहुविमानेनातिनीचत्वात् सूर्यविमानं कथमात्रिप्रतेऽत्युच्चत्वाच्च तेन चन्द्रविमानमिति प्रश्नोऽत्रोच्चरं—तत्त्वार्थभाष्यद्वयनुसारेण  
चन्द्रविमानाद्गुविमानमुपरिधाद्वर्त्तते, तच्चानियतचारत्वात्कदचित्सूर्यविमानस्याधस्तादशयोनानि यावच्चाधः चरतीति चन्द्रसूर्ययोरारवणे न  
काप्याशङ्कते ॥ २०७ ॥

## अथ पण्डितविवेकसागरगणिकृतप्रश्नौ तदुत्तरे च,

तथा—नवग्रैवेयकपञ्चानुत्तरविधानेषु जिनसकृतीनि सन्ति नवाः ? यदि सन्ति तदा किं शाश्वतान्यशाश्वतानि वेति : प्रश्नोऽत्रोत्तरं  
 ग्रैवेयकादिषु सुधर्मादिसभानामभावाज्जिनसकृतीनि न सन्तीति ॥ २०९ ॥

तथा—स्त्रियः सर्वार्थसिद्धविमाने यान्ति नवेति : प्रश्नोऽत्रोत्तरं—श्रीविजयचन्द्रकेवलचरित्रे देवपूजाधिकारे स्त्रियाः सर्वार्थसिद्ध-  
 गमनाक्षराणि सन्ति, तथा पृथ्वीचन्द्रचरित्रे पृथ्वीचन्द्रपूर्वमवस्थियः सर्वार्थसिद्धे गत्वा मनुष्यत्वं च प्राप्य सिद्धा इत्युक्तमस्तीति, तथा कनक-  
 माळा सर्वार्थसिद्धे गतेत्यष्टप्रकारीपूजाग्रन्थे प्रदीपपूजाधिकारे, तथाऽनुत्तरविमानगमनाक्षराणि तु श्रीवासुपूज्यचरितादौ रुद्राग्रन्थे वर्तन्ते, तदा-  
 युर्बध्न्तीति-प्रज्ञापनासूत्रत्रयोविंशतितमकर्मप्रकृत्याख्याणपदवृत्तावप्युक्तमस्तीति ॥ २०८ ॥

## अथ श्रीहीरविजयसूरिशिष्यपण्डितरामंविजयगणिकृतप्रश्नास्तंदुत्तराणि च ।

यथा—“सिद्धंति जत्तिआ किर, इह संवहारजीवरासिमज्झाओ । जंति अणाइवणसइरासीओ तंत्तिआ तंमिच्छि ॥ १ ॥” वचनानुसारेण  
 यावन्तः सिध्यन्ति तावन्त एव जीवा अनादिनिगोदाद्व्यवहारराशौ यान्त्येवं सत्यनादिसंसारमाश्रित्य विचारे यावन्तः सिद्धाः तावन्त एव सदैव  
 व्यवहारिणोऽपि मुग्धन्ते नाधिकाः, परं “जइआ होही पुच्छा, जिगाण मग्गमि दंसणं तइआ । इक्कस्स निगोअस्स य, अणंतभागो अं सिद्धि-  
 गओ ॥ १ ॥” एतदनुसारेणैकस्य सूक्ष्मबादन्यतरनिगोदस्यानन्ततमो भागः सिद्धिगतस्तथैव व्यवहारिणोऽप्येकस्य निगोदस्यानन्ततम एव  
 भागे युज्यन्ते दृश्यन्ते च “जीवाः सर्वे व्यग्रहार्यव्यवहारितया द्विधा । सूक्ष्मनिगोदा एवान्न्यासेऽन्धेऽपि व्यग्रहारिणः ॥ १ ॥” इत्येतद्व्यवहारि-



लक्षणानुसारेण बादरनिगोदादौ सिद्धेभ्योऽनन्तानन्तगुणस्तस्मान्न ज्ञायन्ते सिद्धेभ्यो व्यवहारिजीवा अधिका वा तुल्या वेति सम्यक् प्रसाद्यामिति ?  
प्रश्नोऽत्रोच्चरं—सिद्धा निगोदस्यानन्तमे भागे उक्ताः, निगोदाश्च द्विधा—सूक्ष्मा बादराश्च, यावन्तः सिध्यन्ति तावन्तः सूक्ष्मनिगोदेभ्यो व्यवहारादौ  
समायान्ति, तथा च कथं सिद्धजीवाना व्यवहारराशिजीवानां च तुल्याता, सिज्झति नक्तिये ' त्यादिगाथार्थोऽपि व्यवहारराशेस्तत्तद्व्युत्पत्त्यानुसारेणा-  
नादितया प्रतिभासात्तदनुरोधेनैव भावनीय इति ॥ २१० ॥

तथैकजीव उत्कर्षतस्सारे कतिश्च इन्द्रत्वचक्रित्वादि प्राप्नोति, तस्याप्तिप्रतिपादकशास्त्रं च किमिति प्रश्नोऽत्रोच्चरं—तदाप्तिसङ्ख्या-  
नियमः शास्त्रे न दृश्यते, द्विशतत्त्याप्त्यक्षराणि तु साक्षादेव श्रीभगवतीप्रमुखग्रन्थेषु दृश्यन्ते, परं प्रायेण बहुशस्तत्प्राप्तिर्न स्यादिति  
सम्भाव्यते ॥ २११ ॥

तथा—ब्रह्मलोकादुपरि किं सगुग्दृशो देवा अधिका उत मिथ्यादृशोऽधिका इति प्रश्नोऽत्रोच्चरं—पञ्चमदेवलोकात् परतो युक्त्या विवा-

र्धमाणे मिथ्यादृष्टिभ्यस्सगुग्दृश्यो देवा अधिकासम्भाव्यन्त इति ॥ २१२ ॥

तथा—आद्धविधिदृत्तौ प्रतिमायाः सृष्ट्या नवाङ्गतिलककरणमुक्तं, तत्र प्रथमं किं वामपादे तत्कर्त्तव्यमथवा दक्षिणपादे इति प्रश्नो-  
ऽत्रोच्चरं—जिनप्रतिमायाः पूजाकरणवसरे नवाङ्गेषु तिलकानि दक्षिणचरणादारम्याङ्गसृष्ट्या विधेयानीति ॥ २१३ ॥

इति सकलसूरिपुरन्दरपरमगुरुगच्छाधिराजभट्टारकश्रीविजयेनसूरिप्रसादिकृतप्रश्नोच्चरसङ्ग्रहे  
सूरिशिष्यपण्डितशुभविजयगणिविरचिते द्वितीयोच्छासः ॥

श्रीश्रीहीरविजय-  
भट्टारक

## अथ तृतीय उल्लासः

श्रीपार्श्व प्रणिपत्य, श्रीशङ्खपुरेभारं जिनं भक्त्या । आरभ्यते तृतीयोऽल्लासः शुभविजयविद्नेन ॥ १ ॥

अथैतद्ब्रह्मकृत्यपिहृतशुभविजयगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च-

यथा—प्रातर्व्याख्यानप्रारम्भे तीर्थङ्करा ‘ नमो तित्यास ’ इति कथयन्ति, तत्र तीर्थशब्देन किमुच्यत इति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—आवश्यक-  
हारिभद्रीवृत्त्याद्यनुसारेण तत्र तीर्थशब्देन श्रुतं द्वादशाङ्गरूपं प्रोच्यत इति ॥ १ ॥

तथा—पार्श्वस्यादिदीक्षितसाधोर्गणो भवति नेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—पार्श्वस्यादिदीक्षितमुनेर्गणो भवति, गदुक्तं महानिशीथतृतीयाध्ययन-  
प्रान्तप्रस्तावे ‘ सत्तद्गुरुरपरं परकुसीले एगमिति गुरुरपरं परकुसीले ’ इत्यस्यार्थः—अत्र विकल्पद्वयभणनोदेवमवसीयते गदेकद्विनिगुरुरम्परां यावत्कुसील-  
त्वेऽपि तं साधुसामाचारी सर्वथोच्छिन्ना न भवति, तेन यदि कश्चिन्निगुरोद्धारं करोति तदाऽन्यसाम्भोगिकादिभ्यश्चारिणोपसम्पदं गृहीत्वैव क्रियोद्धारं  
करोति नान्यथेति । किञ्च—कश्चिन्निहवपार्श्वे प्रव्रजितस्तान् विहाय साधुसमीपे आगतस्तस्य तदेव प्रायश्चित्तं यदसौ सम्यग्मार्गं प्रतिपद्यते स  
एव न तस्य व्रतपर्यायो, न भूय उपस्थापना कर्त्तव्येति बृहत्कल्पतृतीयखण्डे १२६ पत्रेऽपीति ॥ २ ॥

तथा—मुत्कलश्रावका नमस्कारत्रयेण नमस्कारादिप्रत्याख्यानं पारयन्ति तदक्षराणि क्व सन्तीति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—मुत्कलश्रावका नमस्कार-  
त्रयेण नमस्कारादिप्रत्याख्यानं पारयन्तीत्यविच्छिन्नपरम्पराऽस्ति, परमेतदक्षराणि कुत्रापि दृष्टानि न स्मरन्तीति ॥ ३ ॥

तथा स्वपक्षिणः परपक्षिणश्च के भवन्तीति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अथ कः पुनः स्वपक्षः ? को वा परपक्ष इत्याह—निह्निगाह अस्ति निहवपार्श्व-

स्यादयस्साधुलिङ्गधारिणः स्वपक्षः, आदिग्रहणाच्चरकपरित्राजकादयः परपक्ष इति बृहत्कल्पप्रथमखण्डे १२० पत्रे, एतदक्षरानुसारेण निह्वपार्श्व-  
स्थादयः स्वपक्षिणश्चरकपरित्राजकादयश्च परपक्षिण इति ॥ ४ ॥

तथैषधमेवजयोः कश्चिद्भेदो न वेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—एकजातीयशुण्ठचाद्यौषधमेकजातीयगुटिकाच्चूर्णादि भेषजमिति, पञ्चसूत्रांबृह-  
द्वृत्त्यनुसारेण भेदो ज्ञायत इति ॥ ५ ॥

तथा—कश्चिद्वृत्त्यह भव्योऽभव्यो वेति कथं ज्ञायत इति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यो जानाति स्वचित्तेऽह भव्योऽभव्यो वा स नियमाद्भव्य एव,  
यतोऽभव्यस्य हि भव्याभव्यशङ्काया अभावादित्याचाराङ्गावन्त्यध्ययनस्य पञ्चमोद्देशके वृत्तौ ॥ ६ ॥

तथा—आचार्यादीनां प्रतिमास्तूप्रतिष्ठाक्षराणि कुत्र ग्रन्थे सन्तीति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—आचार्यमूर्तिस्तूपयोः स्थापनमन्त्रो यथा ‘ उन्नमो,  
आयिरिअं भगवताण नाणीणं पचविहायारसुद्वियाण इह भगवतो आयरिआ अवयरतु, साहुसाहुणीसावयसाविआकयं पूअं पडिच्छंतु, सव्वसिद्धि-  
त्रिसुतु स्वाहा ’ अनेन मन्त्रेण त्रिवसिसेपः, उपाध्यायमूर्तिस्तूपयोः ‘ उन्नमो उवज्झायाण भगवताणं बारसंगपढगपढगाणं सुअहराणं सज्जायज्जा-  
णासत्ताणं इह उवज्झाया भगवतो अवयरंतु साहुसाहुणीसावयसाविआकयं पूअं पडिच्छंतु, सव्वसिद्धि त्रिसुतु, सव्वसिद्धि त्रिसुतु स्वाहा, ’ अनेन मन्त्रेण  
साव्वीमूर्तिस्तूपयोः उन्नमो सव्वसाहुणं भगवताणं पंचमहव्वयधराण पंचसमिआणं तिगुत्ताणं तवनियमनाणदसणजुत्ताणं मुक्कसाहगाणं साहुणो भग-  
वतो इह अवयरतु भगवइओ साहुणीओ इह अवयरंतु साहुसाहुणीसावयसाविआकय पूअं पडिच्छंतु, सव्वसिद्धि त्रिसुतु स्वाहा, ’ अनेन मन्त्रेण  
त्रिवसिसेप इत्याचारदिनकरे श्रीवर्द्धमानसूरिकृते इत्यादिग्रन्थानुसारेणाचार्यादीनां प्रतिमास्तूपप्रतिष्ठापनाक्षराणि ज्ञेयानीति ॥ ७ ॥

तथा—श्रावकाश्चतुष्पण्ण्यो चतुर्थोऽदिकं कुर्वन्ति, सा का चतुष्पण्णीति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—चतुर्दशी अष्टमी अमावास्या पूर्णिमा एताश्चतस्र-

श्रुतुष्वर्थ इति योगशास्त्रवृत्तौ 'चतुष्षण्यो' चतुर्थार्थे तत्श्लोकव्याख्यानं, तथा प्रवचसारोद्धारवृत्तौ चतुष्षण्यो अष्टमीचतुर्दश्यमावस्यापूर्णमा-  
 लक्षणा उक्ताः, तथा पञ्चाणि चैवमूचुः—'अट्टमी चाउद्दसि पुणिमा य तह अमावसा हवइ पवं। मासंमि पव्वच्छकं, तिन्नि अ पव्वाइ पक्खंमि ॥ १॥  
 बीआ पंचमी अट्टमि, इगारसी चउदसी पण तिहीओ। एआओ सुहतिहीओ, गोअमगणहारिणा भणिआ ॥ २॥ बीआ दुविहे धम्मं पंचमि नाणेसु  
 अट्टमी कम्मं। एगारसी अंगणं, चउद्दसी चउदपुन्वाणं ॥ ३॥' एवं पञ्चपण्यो पूर्णिमामावास्याभ्यां षट्पण्यो च प्रतिपक्षमुत्कृष्टतः स्यादिति  
 श्राद्धविधौ प्रतिक्रमणक्षेत्रवृत्तौ च। तथा श्रीभगवतीवृत्तौ 'चउद्दसट्टमुद्दिट्ठपुणमासिणीसु' इत्यत्रोद्दिष्टा—अमावास्या प्रोक्ताऽस्ति, विपारु-  
 वृत्तावपि तथैव, किंच 'सते बले वीरिअपुरिसकारपरक्कमे अट्टमीचउद्दसीनाणपंचमीपज्जोसवणाचाउम्मासिएसु चउत्थच्छट्ठमे न करिज्जा  
 पच्छित्त' मित्येकोनविंशपञ्चाशकवृत्त्यादिष्वनेकग्रन्थेषु पञ्चमी भणितास्ति, पञ्चम्याः पर्वत्वं महानिशीथेऽयुक्तमास्ति, नन्वेव सति त्रिपण्यो  
 'चतुष्षण्यो' षट्पण्यो षट्पण्यो वा तपःशीलादिनाऽऽराधनीयोच्यते, स्वशक्त्यपेक्ष सर्वमिका वा तामाराधयतां न कश्चिद्विषयः, तथा—'छण्हं तिहीण  
 मज्झंमि, का तिही अज्जवासरे' इत्यादिगाथा श्राद्धदिनकृत्यसूत्रेऽस्ति तद्व्याख्यानं च—८ १४ १९ एताः सितेतरमेदात्पट्तिथय इति  
 इत्यादिग्रन्थानुसारेणाविच्छन्नपरम्परया च सर्वो अपि अमावास्यापूर्णमासिणीमादितिथयः पर्वत्वेनाराध्या एवेति, अथ च—'चाउद्दसट्टमुद्दिट्ठपुणमासि-  
 णीसु षड्पुण्यमित्यस्य व्याख्या—चतुर्दश्यष्टम्यौ प्रतीते, उद्दिष्टसु महाकल्याणकसम्बन्धितया पुण्यतिथित्वेन प्रख्यातासु, पौर्णमासीषु तिसृषु  
 चतुर्मासकसम्बन्धिनीतिरिति सूत्रकृताङ्गाद्वितीयश्रुतस्कन्धसूत्रवृत्तौ लेपश्रावकाधिगारे इत्येतत्पर्वाराधनं चरितानुवादरूपं, शतवारं पञ्चमश्राद्धप्रतिमावाहक-  
 कार्तिकश्रेष्ठिकवन्नतु विधिवादरूपं, तल्लक्षण पुनरेकेन केनचिद्यत्कियानुष्ठानमाचरितं स चरितानुवादः, सर्वैरपि यत्कियानुष्ठानं क्रियते स विधिवादस्तु  
 सर्वैरपि स्वीकर्तव्य एव, न तु चरितानुवाद इति ॥ ८ ॥

तथा श्रावकाणामुपधानवहनं विना नमस्कारादिपठनं शुद्ध्यति नेवेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यथा यतीना योगवहनं विना सिद्धान्तवाचनपाठ-  
नादि न शुद्ध्यति, तथोपधानतपोऽतरा श्रद्धानामपि नमस्कारादिसूत्रभगनगणनादि न शुद्ध्यति, यदुक्तं महाविशीथे—‘से भयवं ! सुदुष्कर-  
पंचमंगलमहासुअखंधस्स विणओवहाण पन्नत्तं, एसा निअतणा कहं बालेहिं किज्जई ? गो० । जे णं केणइ न इच्छेज्जा एयं नियंतण अविणओ-  
पहाणेणं पचमंगलसुअनाणमहिज्जइ अज्झवेइ वा अज्झावयमाणस्स वा अनुज पयाइ से णं न भवेज्जा पिअधम्मे न हरेज्जा ददधम्मे न हवेज्जा  
‘भत्तिज्जुए, हीलिज्जा सुत्तं हीलिज्जा अत्थं हीलिज्जा सुत्तथोभए हीलिज्जा गुरुं, जे णं हीलिज्जा सुत्तं जाव हीलिज्जा गुरुं से ण आसाएज्जा अतीता-  
णागयवट्टमाणे तित्थयेरे आसाएज्जा आयरिअउवज्जायसाहुणो, जे णं आसाएज्जा सुअनाणमरिहतसिद्धसाहु, तस्स णं अणंतसंसारसागर-  
माहिंडेमाणस्स तासु तासु संवुडविअडासु चुलसीइलक्खपरिसकडासु सीओसिणमिस्सजोणिषु सुहरं निअंतणा इति, परं येन प्राग् नमस्कारादि-  
सूत्राण्यधीतानि, तेनापि यथायोग निर्विलम्बमेवोपधानानि विधिनाऽवश्यं वहनीयानि । सम्प्रति तु द्रव्यक्षेत्रकालाद्यपेक्षया लभालभं विभाव्याचरण-  
योपधानतपो विनाऽपि नमस्कारादिसूत्रपाठादिभगनं कार्यमाणं दृश्यते, आचरणायाश्च लक्षणमिदं कल्पभाष्ये उपदेशपदे च यथा—“ असेहेण  
समाइवं, ज कत्थइ केणई असावज्ज । न निवारिअमंकोहि, बहुमणुमयेअमायरिअं ” ॥ १ ॥ आचरणा च जिनाज्ञासमानैव, यद्भणितं भाष्यादौ—  
“ असढाइन्नऽणवज्जे, गीअत्थअवारिअंति मज्झत्था । आयरणाविहु आणात्ति, वयणओ सुबहुमन्नंति ” ॥ १ ॥ इति ध्येयम् ॥ ९ ॥

तथा—श्रीवीरतीर्थं कियत्कालं यावत् भवतीति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—‘जबुदीवे २ भारहे वासे इमंसे ओसप्यिणीए देवाणुप्पिआणं केवतीअं कालं  
तित्थं अणुसज्जिस्सइ ?’ इति भगवतीसूत्रविशतित्तमशतकाएमोद्देशकानुसारेणैकविंशतिसहस्रवर्षाणि यावत् श्रीवीरतीर्थं प्रवर्त्तिष्यते, किञ्च तित्थं भंते ।  
तित्थं ? तित्थयेरे तित्थं ? गो० अरहा ताव नियमा तित्थंकरे, तित्थं पुण चाउवण्णाइणो समणसंघो, तंजहा—समणा समणीओ सावगा साविआओ

अस्ति ' भगवत्यां, " दुष्पसहंतं चरणं, भणिअं जं भगवया इहं खेत्ते । आणानुत्तेणमिणं, ण होइ अहुणत्ति वामोहो " ॥ १ ॥ इत्युपदेशपदवचनाद् दुष्प्रसहान्तं यावच्चारित्रं भविष्यतीति ॥ १० ॥

तथा—नारकाः पूर्वभवकृतदुष्कृतं जातिस्मरणेन जानन्त्यवधिज्ञानेन वेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—' नारका नानाविधानि पापानि कृत्वा नरके व्रजन्ति, तत्रैतानि तैः स्मारितपूर्वभवदुष्कृतानि भवप्रत्ययजातिस्मरणेन नारकाः स्वयमपि जानन्ति, अवधिना तु न किञ्चिदवगच्छन्ति, तस्योत्कृष्टतोऽपि तेषां योजनप्रमाणत्वादिति भवभावनासूत्रवृत्तौ, एतदनुसारेण नारकाः पूर्वभवकृतदुष्कृतं भवप्रत्ययिकजातिस्मरणेन जानन्तीति ॥ ११ ॥

तथा—मुण्डकेवली किलक्षणो भवतीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—“ संविशो भवनिर्वेदादात्मनःसरणं तु यः । आत्मार्थं संप्रवृत्तोऽसौ, सदा रयान्मुण्डकेवलीः ” ॥ १ ॥ इति पञ्चसङ्ग्रहवृत्तौ, तदनुसारेण यः पुनः सम्यक्त्वावाप्तौ भवनेर्गुण्यदर्शनतस्तन्निर्वेदादात्मनःसरणमेव केवलमभिव्यञ्जति, तथैव चेष्टते, स मुण्डकेवली भवतीति ॥ १२ ॥

तथा—यस्मिन् काले कालान्तरे वा यावन्तो युगलिनस्तास्मिन् तावन्त एव न्यूनाधिका वेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यस्मिन् काले यावन्तो युगलिनस्तास्मिन् काले तु तावन्त एव भवन्तीति, कालान्तरे च भरतैरावतयोर्युग्मिनां न्यूनाधिकत्वं, देवकुर्वादिषु तु जातु तत्संहरणसम्भवेऽपि कुतश्चित्तदानयनमपि भवतीति न तत्र न्यूनाधिक्यमिति ॥ १३ ॥

तथा—कश्चित् सचित्तपरिहारी कारणे यदि राजौ जलं पिबति तदोष्णमप्राप्तुकं वेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यदि सचित्तपरिहारी कारणे जलं पिबति तदोष्णमेवेति ॥ १४ ॥

तथा—अप्रतिश्लेखितस्थापनाग्रे प्रावृतचोलपट्टगीतार्थस्याग्रे च काजकोद्धरणादीर्यापथिकीप्रतिक्रमणं शुध्यति नवेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—

तत्पुरः सकलक्रियानुष्ठानैर्यापथिकीप्रतिक्रमणं शुध्यतीति ॥ १५ ॥

तथा—श्रीभगवतौसूत्रोक्तत्रिविधांश्चिद्विधेनेतिप्रत्याख्यानवता प्रतिमाधरश्राद्धेन प्रतिलेखितस्थापनाग्रे साधूनामीर्यापथिकीप्रतिक्रमणद्यनुष्ठानं शुध्यति ? किंवा इर्यापथिकीप्रतिक्रमणमेवेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—तदग्रे साधोरीर्यापथिकीप्रतिक्रमणमेव शुध्यति, नान्यदनुष्ठानमिति ॥ १६ ॥

तथा—गुरुसमीपे उपधानादिक्रिया कुर्वतः श्राद्धादेरन्तरालस्थापनाया गुरोश्चान्तराले पञ्चेन्द्रियगमने अग्रे भवति नवेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अग्रे भवतीति ॥ १७ ॥

तथा—सीता जनकराज्ञा. ( जस्य ) पुत्रो रावणपुत्री वेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—बहुपु ग्रन्थेषु जनकराजपुत्री वसुदेवहिण्डौ रावणपुत्री चेति ॥ १८ ॥

तथा—प्रथमान्तिमतीर्थकृत्तीर्थश्राद्धाना मध्यमजिनश्राद्धाना च वर्णान्तरोपेता मुखवस्त्रिका शुद्ध्यति नवेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—प्रथमान्तिमतीर्थकृत्श्राद्धानां मुखवस्त्रिका श्वेता कल्पते, मध्यमजिनश्राद्धानां तु सा पञ्चवर्णापि स्यादिति ॥ १९ ॥

तथा—पञ्चदशशततापसानां गौतमेन लब्धिपरमान्नेन पारणा कारिता, तत्परमान्न वैक्रियमन्यद्वेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं न तद्वैक्रियं, किन्त्वक्षीणमहानसिलब्धैव तत्परमान्न तावज्जातमिति ॥ २० ॥

तथा—अत्र केचन भूकटिका वदन्ति यथा श्रीमता त्रिफलाद्युत्कटद्रव्यनिष्पन्नचूर्णप्रक्षेपे प्रासुकं पानीयं, तथाऽस्माकमप्युत्कटद्रव्यजनित-

चूर्णप्रक्षेपे धान्यादि प्रासुकीभवतीति किमत्र बाधकमिति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—भूकटिकृताशङ्कामाश्रित्य यथा त्रिफलाप्रक्षेपादुदके वर्णादिपरावर्त्तो भवति तथा यदि धान्यफलादावपि भवेत्तदोदकवद्धान्यादिकं प्रासुकं भवति, न च तथा, तस्मात्क्रथं प्रासुकं तदिति ॥ २१ ॥

तथैर्यापथिकी द्रव्यतः क्षेत्रतः कालतो भावतश्च कथमायातीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—द्रव्यतः सचित्तादिस्पर्शे क्षेत्रतः शतहस्ताद्व-  
हिर्गमने ऐर्यापथिकयातीत्यक्षराण्यावश्यकजातकल्पसूत्रवृत्त्यादौ सन्ति, कालतो भावतश्चैर्यापथिकीसमागमने व्यक्त्याक्षराणि शाल्वे  
नोपलभ्यन्त इति ॥ २२ ॥

तथाऽऽवश्यकयोगसम्बद्धदशवैकालिकयोगोद्वहनं शुद्ध्यति नेवेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—आवश्यकयोगालोचनां विधाय पश्चात्तत्सम्बद्धदशवैकालि-  
कयोगप्रवेशः शुद्ध्यतीति ॥ २३ ॥

तथा—श्रुतस्कन्धादिसमुद्देशानुज्ञादौ यदा समुद्देशादिनवृद्धिर्जाता तदा तद्दिनं कारयित्वाऽप्रेतनदिनेऽनुज्ञानन्दिः क्रियते ? किं वा सम्बद्ध-  
तयाऽनुज्ञानन्दि विधाय तृतीयदिने तद्दिनवृद्धिः कार्यत इति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—समुद्देशक्रियाशुद्धौ तद्दिनवृद्धौ च सम्बद्धतयाऽनुज्ञानन्दि विधाय  
पश्चाद्दिनवृद्धिः कार्यते, चेत् समुद्देशक्रियासम्बन्धिनी दिनवृद्धिर्जायते तदा तृतीयदिनेऽनुज्ञानन्दिः क्रियत इति ॥ २४ ॥

तथा—विक्रयकारिसमुच्छेदितनामलब्धनानां प्रतिष्ठितार्हत्प्रतिमानां पुनर्लक्ष्मादिकरणं शुद्ध्यति नेवेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—तासामभिधानलक्ष्मादि-  
करणं प्रायौ न शुद्ध्यति, कदाचित्कारणे यद्यावश्यकं कर्त्तव्यं स्यात् तदा तद्विधानानन्तरं प्रतिष्ठितवासक्षेपादिना शुद्धिर्भवतीति श्रीभगवत्पादा-  
नामनुशिष्टिरिति ॥ २५ ॥



तथा—‘ बारसजोअण उसहे ’ इत्येतद्वाथानुसारेण श्रीवृषभादितीर्थकृता समवसरणमानमनुत्सेधाङ्गुलिप्पन्नयोजनैरुच्यतेऽन्यथा वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—‘ बारसजोअण उसहे ’ इत्यनया गाथयोत्सेधाङ्गुलयोजनैर्विषभादितार्थकृता समवसरणमान मतान्तरेणोक्तं दृश्यते, परमस्या गाथायाः परम्पर्यं न ज्ञायते इति समवसरणावचूर्णविधिः ॥ २६ ॥

तथा—श्रीआदिदेवस्य श्रेयांसेन बहुभिरक्षुरसकुम्भैः पारणा कारितोत्तैकैवेक्षुरसकुम्भेनेति साक्षरं प्रसाद्यामिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—“ मत्वेति प्रमदोत्पन्नरोमाब्धः सोमभूपभूः । उत्पाद्वेक्षुरसैः पूर्णानि, कुम्भानगाज्जिनान्तिकम् ” ॥ १ ॥ इति ऋषिमण्डलवृत्तौ ७ पत्रे “तावदावसथद्वारे, राजसूनोरुपयन्ते । केनचिच्चक्रिरे कुम्भा, नवेक्षुरससम्भृताः ॥ २६१ ॥ श्रेयांसो जातिस्मरणाद्विज्ञादोषोज्झित रसम् । मत्वा करप्यममुं स्वामिन् ! गृहान् गेत्यभ्यधात्प्रभुम् ॥ २६२ ॥ प्रभुणाप्यज्जलीकृत्य, पाणिपात्रे पुरो धृते । स रसं कलशश्रेण्याश्चिक्षेपेक्षुसमुद्भवम् ॥ २६२ ॥ ” इति श्री अमरकविकृते पद्मानन्दकाव्ये त्रयोदशसर्गे “ अत्रान्तरे कुमारस्य, प्राभृते केनचिन्मुदा । नवेक्षुरससम्पूणा, दौक्याच्चक्रिरे घटा. ॥ ९० ॥ ततो विज्ञातनिर्दोषमिक्षादानविधिस्तु । गृह्यतां कल्पनीयोऽयं, रसं इत्यवदद्विभुम् ॥ ९१ ॥ प्रभुरप्यज्जलीकृत्य, पाणिपात्रमधारयत् । उत्सिप्योत्सिप्य सोऽपीक्षुरसकुम्भानलोठयत् ” ॥ ९२ ॥ इति श्री हेमचन्द्रसूरिकृतऋषभदेवचरित्रे, तथैवान्तर्वाच्ये च वसुदेवशिण्डौ प्रथमखण्डे च इत्यादिग्रन्थाक्षरानुसारेण बहुभिरक्षुरसघटैः पारणा जातेति । तथा—ताहे सयं चैव खोअस्स रसघडगं गहाय भावसुद्धेणं पड्डिगाहगसुद्धेण तिविहेणं तिकरणसुद्धेणं दाणेणं पड्डिगभेस्सामिति इत्याद्यावदयकचूर्णविषयकनिर्युक्तिहारिभद्रतद्वृत्तितद्वद्वादशसहस्रीवृत्तिवर्द्धमानसूरिकृतवृषभचरित्रकल्पकिरणावलीप्रभृतिग्रन्थानुसारेण त्वेकैवेक्षुरसघटेन पारणा कारितेति ज्ञायते । एतदाश्रित्य निर्णयस्तु रत्नविद्वेद्य इति ॥ ९३ ॥ ॥ २७ ॥

तथा—तृतीयाद्युपधानेषु सप्त क्षमाश्रमणानि दाप्यन्ते, तत् कुत्र विधिपत्रेऽस्तीति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—तृतीयाद्युपधानेषु तद्विधिदर्शकपत्रादौ

ससंक्षमाश्रमणदानविधानं न दृश्यते, तथापि श्री परमगुरुणामनुशिष्टिरस्ति, यतोऽग्रे मालापरिधानसमये तेषां समुद्देशानुज्ञयोर्विधीयमानत्वदुद्देशोऽपि कर्तव्यं इति तत्सप्तसमाश्रमणानि देयानीति ॥ २८ ॥

तथा—‘पणवीसजोअणे’ त्यादि गाथा कुत्रान्तर्वच्येष्वस्ति, कथं च घटनेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—इयं गाथा भूयःस्वन्तर्वाच्यपुस्तकेषु न दृश्यते, कल्पकिरणचलीवृत्तौ तु दृश्यते, गणनाघटना त्विन्द्रमात्रनिर्मापितकलशप्रमाणोपेक्षया कर्तुं न शक्यते, परमिन्द्रसामानिकविमानेन्द्रप्रकीर्णकदेवकृतकारितैः सा सम्भवत्यपि, किञ्च ‘तानेव विभराञ्चक्रुः, कुम्भान् कुम्भान्तराञ्चभुभिः । आभियोगिकगीर्वाणाः, कुर्वाणाः स्वामिशसनम् ॥ ५३२ ॥ स्वामिस्नाने हरे रिक्तरिक्तान् कुम्भान्तराञ्चभुभिः । अमराश्चक्रिणो यक्षा, निधानकलशा इव ॥ ५३६ ॥ रिक्तरिक्ता भूतभूता, रेजिरे सञ्चरिणवः । भूयो भूयः कलशास्तेऽरघट्टघटिका इव ॥ ५३७ ॥ एवमच्युतनाथेन, यथेष्टं कुम्भकोटिभिः । स्वामिनो विदधे स्नावं, चित्रमात्मा पवित्रितः ॥ ५३८ ॥” इति त्रिषष्टीयऋषभचरित्रानुसारेण कोचित्कलशाः स्नात्रोपयोगिनः परं स्थाप्याः, केचित्कलशा अभरणार्थमेव तिष्ठन्तीति, तदपेक्षया वा सा गणना सञ्जाघटीत्येतद्गाथायास्तथाविधस्थानाभावे सर्वं सर्वविद्वेद्यामिति ॥ २९ ॥

तथा—युगलिकशरीराणि सुराः समुद्रे क्षिपन्त्यथवा रवयं विनश्वरीभवन्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—‘पुरा हि मृतसिथुनशरीराणि महाखगाः । नीडकाष्ठमिवोत्पाद्य, स्रष्टाश्चिक्षिपुरम्बुधौ ॥ १ ॥” इति त्रिषष्टीयऋषभदेवचरित्रवचनात् समुद्रे युगलिकशरीराणि क्षिपन्त्यन्ययुगलिकक्षेत्रेऽप्येवं सम्भाव्यते, आरण्यकपशूना निस्सर्गतो मृतानां यथा किमप्यवयवादिक नोपलभ्यते तथा तेषामपीत्येपापि सम्भावना सञ्जायत इति ॥ ३० ॥

तथाऽन्तकृच्छब्दस्य कोऽर्थः इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—ज्ञानवरणीयादिकर्मान्तकृत् सन् सिद्धिं गत इत्यर्थ इत्यावश्यकहारिभद्रीवृत्तौ “अहृतकडा रामा” इति गाथाव्याख्यानं ॥ ३१ ॥

तथा—दशविधचक्रालसाभाचारित्यत्र चक्रालशब्देन क्रियुच्यत इति प्रश्नोऽन्योत्तरं—चक्राले नित्यकर्मणि सामान्यरी चक्रालसामान्यरी दशविधा-दशप्रकारा नासौ चक्रालसामान्यरी न दशविधचक्रालसामान्यरीति चक्रालशब्दोऽप्यत्राचार्यीति पञ्चमस्तुष्टौ तथा चक्राले चक्रालविषया चक्रत्वव्यतिषद् श्रमन्ती दशविधा सामान्यरीत्यपि प्रयत्नसारोद्धारस्तु शततमद्वारे इति ॥ ३२ ॥

तथा—तीर्णकृतां जन्मादिफल्यार्थेषु यथेन्द्रागमनं शास्त्रेषु स्पष्टतया दृश्यते न तथा च्यानकल्याणके तत्कर्ममिति । प्रश्नोऽन्योत्तरं यथा चतुर्षु फल्यार्थेषु सुरेन्द्रागमनं तथा च्यानकल्याणकेऽपि सुरेन्द्रागमनं गुणैर्गृह्यते । यदुक्तं—एतदर्थं सर्वेभ्यो सर्वेभ्यो आहिना-  
णभवेण । नलिआसणा मुनेऽं, जिणारगव्यावयारमहं ॥ १० ॥ सत्तुपयार ऊट्टिऊण सगत्तण तगविमुदं । धरणिअलमिलिआरमउद्धिमंउत्ता  
तत्तय यदति ॥ ११ ॥ पंचसु मह्येणसु गंतव्यमस्स जिणवीरिदणं । तिअत्तादिरेदिं इअ निच्छिऊण सदेवि सचलिआ ॥ १२ ॥ अए मपइइस्स-  
गिहे, इवाएसेण धणमइणमहा । मुत्तन्ति जयस्सनिअरा, मणिअरणमण्णःणिअरं ॥ १०० ॥ चत्थिअमण्णनभोगसंनय तए पमत्तयवहाणि ।  
निविहाभरणाणि अ किरणजालकुरिआणि निहियति ॥ १०८ ॥ इति यो सुयार्थचरिणे, “इदं हि वट्ठे यस्मादूर्ध्वमदिने मुदा ।  
नन्दिस्सोऽयं सममत्तय सहेवाभ्या सुरेय्ये” ॥ २७ ॥ इति श्रीशान्तिचरित्रेऽपीति ॥ ३३ ॥

तथा—सप्तपाठता इव चारणप्रणादयः सप्तकत्र कर्मगन्ति नेति । प्रश्नोऽन्योत्तरं—यथा सप्तपाठताः सप्तकत्र कर्मगन्ति तथा  
चारणश्रमणा अपि, यथा “ मञ्जिमउत्तरिमगेचिन्नाओ तो चनिअ नदिसेणपुरो । आगरिओ तमन्नेभे, तो सा चउत्तस निगइ मुमिणे ॥ ३५ ॥  
एत्तंतरेभि नाणी, चारणसमणो सममओ तत्तय । निरिणा पुट्ठो रण्णा, मुमिणाण फलं कइइ एव ॥ ८१ ॥ ” इति ॥ ३४ ॥

तथा—शीतोष्णचर्मास्त्रेषु यथाक्रमं विशद्विशतिगदशदिनानि यावदागह्यं सायुता पितृसु कश्यते, तथा यथोक्तं तालमभ्यनियत-

सेवकिकानां पानीयखण्डाभ्यामेकादिनोपपूर्वोक्तत्रिशदादिदिनेषु मोदका वध्यन्ते, ते मोदकाः पुनश्चिशदादिदिनानि यावद्विहर्तुं कल्पते नवेति ? प्रश्नो-  
 ऽत्रोत्तरं-पानीयखण्डाभ्यां वर्णरसगन्धादिपरावर्तनात्पुनर्यथोक्तकालं यावत्ते मोदका मुनीनां विहर्तुं कल्पन्त इति सम्भाव्यते, परमेतदर्थं विशेषा-  
 क्षराणि दृष्टानि न स्मर्यन्त इति ॥ ३५ ॥

तथा—येन साधुना ये योगा न व्यूढास्तेन तद्योगानां प्रवेशोत्तारणं कार्यते नवेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं-मुख्यदृष्ट्या येन ये योगा व्यूढास्तेन  
 तेषामेव प्रवेशोत्तारणादिकं विधीयते, तदभावे तु नन्दनयोगद्वारयोगाहिना सर्वेष्वव्युद्योगेषु प्रवेशस्तेभ्यो निर्गमनं च कार्यते, तयोः क्रियायाः  
 असम्बद्धत्वादिति परम्पराऽप्यस्ति, परं सर्वथैव तत्क्रिया कारिता न शुद्धयतीति ॥ ३६ ॥

तथा—चतुर्निकायेषु विमानाधिपतयः सम्यग्दृष्टयो मिथ्यादृष्टयो वेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं-विमानाधिपतितया यो देवविशेष उत्पद्यते स  
 सम्यग्दृष्टिरेव भवति, न कदापि स मिथ्यादृष्टिरित्यनादिकालीना जगद्व्यवस्थितिः, यतो विमानाधिपतितयोत्पद्यमानो देवः 'किं मे पुत्रं करणिज्जं ?  
 किं मे पच्छा करणिज्जं ? किं मे पुत्रं सेयं ? किं मे पच्छा सेयं ? किं मे पुत्रं पि पच्छावि हियाए सुहाए खमाए निस्सेसाए आणुगामिअत्ताए  
 भविस्सइ' ? इत्यादिराजप्रश्रयोक्तशुभाध्यवसायविशेषेण सम्यग्दृष्टिरेवावसीयते, सम्यक्त्वमन्तरेण तथाध्यवसायरूपपरिणामानुत्पत्तेः, न चायं  
 प्रकारो राजप्रश्रयाद्युपाङ्गे सूर्याभदेवसम्बन्धित्वाच्चरितानुवादरूपोऽतः कथं सर्वेषामप्यविमानाधिपतित्वेनोत्पद्यमानानां देवविशेषाणामयमेव प्रकार इति  
 शङ्कनीयं, अन्यन्तरे प्रकारान्तरस्यानभिधानाद् अन्येषामपि विमानाधिपतितयोत्पद्यमानानां तथाप्रकारस्य वक्तुमौचित्याद्, अत एव विजयदेवाधिकारे  
 तथाप्रकार एव विजयराजधान्यामुत्पन्नमात्रस्य विजयदेवस्यागमे भणित इति । किञ्च-विमानाधिपतिदेवानां मिथ्यादृष्टित्वेऽभ्युपगम्यमाने तद्विमानगत-  
 सिद्धायतनजिनप्रतिमानां मिथ्यादृष्टिभावितानामेव-सम्यग्दृष्टिपरिगृहीतानामेवेत्यर्थः, तासां भावग्रामतया

प्रवचने प्रतिपादनात्, न तु मिथ्याद्विपरिगृहीतानामपीति, तथानोक्त— 'जा सम्भवाविवाओ, पडिमा इयरा ण भावगामो उप्पि' बृहत्संह-  
निर्युगतौ तद्वृत्त्येकदेशो यथा याः सम्यग्द्विपरिगृहीताः प्रतिमाः ता भावग्राम उच्यते, नेतरा—मिथ्याद्विपरिगृहीता इत्यादि, किञ्च—विमानाधिपतयो  
देवाः परैर्मिथ्याद्विशोडभिधीयन्ते, ते देवाः किं तीर्थकृतामाशातनां परिहरन्ति नवा १, यदि परिहरन्तीत्युच्यते, तदा मिथ्याद्विष्टत्वं तेषां दत्ताञ्जल्येव  
सम्पन्न, 'आसायणवज्जणाओ सम्पत्त' मिति वचनेन सम्यक्तत्त्वैवाभिधानात्, तत्राशातनापरिहारोऽपि, "अहो देवाण य सीलं, विसयविसमो-  
हिआवि जिणभवणे । अच्छरसाईं समं, हासं कीलं च वज्जति ॥ १ ॥ इतिप्रवचनाभिहित एव, नापरः, तस्यागमेऽनुक्तेः, स न मिथ्याद्विष्टत्वे सति  
'खमेऽपि न सम्भवति, किन्तु नियमतः सम्यग्दृशामेवात् एव तथाशातनावर्जनस्वरूपशालिनां देवविशेषाणां वर्णवादोऽर्हतां वर्णवादवत्प्रेत्य सुलभबोधि-  
'ताहेतुर्भजितः, तथा च स्थानागसूत्रम्—'पंचहिं ठाणेहिं जीवा सुलभबोहिअत्ताए कम्म पकरेति, अरहंताण वर्णं वयमाणे, जाव विविक्तव-  
नंभनेराणं देवाणं वर्णं वयमाणे 'वृत्तिदेशो यथा—तेन देवानां वर्णवादो यथा 'अहो देवाण य सीलं' इत्यादि । यच्च कैश्चिदाशङ्क्यते—  
मिथ्याद्विशोऽपि स्थानकमाहात्म्यात्तथा तदाशातना वर्जयिष्यन्तीति, तदपि परास्तमवसातव्य, यतो मिथ्यादृशा दूरे वर्णवादस्य सुलभबोधिताहेतुत्वं  
प्रत्युत सम्यगन्वदूषकत्वमेव तस्यागमेऽभिहितं, यदुक्तम्—'शङ्का १ काङ्क्षा २ विचिकित्सा ३ मिथ्याद्विप्रशंसनम् ४ । तस्मैस्तवश्च पञ्चापि ५,  
सम्यक्तत्वं दूषयन्त्यमी ॥ १ ॥ इति योगशास्त्रे । अथ तं न परिहरन्तीति द्वितीयपक्षः, स तूषक्षणीय एव, आगमे सिद्ध्यतेनेवाशातनापरिहरण-  
स्यैवाभिधानात् 'बहूणं देवाणं देवीण य वंदणिज्जाओ अच्चणिज्जाओ, इत्यादिना यद्वन्दनपूजनदेराशातनापरिहारपूर्वकतयैव भावादिति । आस्ता सिद्धा-  
यतनेषु, यत्र सुधम्मोसभासु स्वमाणवकनैत्यतम्भेण श्रीमदहर्हदंष्ट्रालंक्रताः समुद्रकास्तिष्ठन्ति तत्रापि देवा नैव भैशुनादिप्रवृत्तिकरणदिनाऽऽशातना  
कुर्वन्तीति । तस्मात्सिद्धं सुलभबोधिताहेतुतीर्थकृदाशातनापरिहारान्धयथानुपपत्त्या विमानाधिपतयः सम्यग्दृशो भवन्तीति । किञ्च—यदि विमानाधि-

पतिर्देवो मिथ्याद्विष्टिरेपि जिनप्रतिमाः पूजयतीति कल्पयन्ति, परे कल्पयन्ति, तथा तद्देवानुवृत्त्या परेऽपि तद्विमानवासिनो देवा मिथ्याद्वेशः किं न पूजयन्तीति परिकल्पयन्ति, सम्यग्दृष्टयस्तु इमा अर्हत्प्रतिमा मोक्षाय भविष्यन्तीति बुद्ध्या पूजयन्ति, ( एवं चेत् ) ' सन्वेसि देवानं सन्वेसि ' देवीण य अञ्चणिज्जे ' इत्यादिका पाठरचना कृताऽभविष्यत्, परं सा न कृता, प्रत्युत ' बहूणं देवानं देवीण य अञ्चणिज्जे ' इत्यादिका पाठरचना कृता, ततोऽवसीयते-यं एव सम्यग्दृशो देवास्त एव जिनप्रतिमाः पूजयन्ति शक्रस्तवं च पठन्तीति सुधीभिः परिभावनीयं । यत्तु ' एवं खलु देवाणुष्णिक्काणं अंतेवासी तीसए णामं अणगारे छट्ठंछट्ठेण जाव सक्कस्स देविदस्स देवरण्णो सामाणिआ देवा केमहिड्डिया ' इति भगवत्यां ३ शतके १ उद्देशके शक्रसामानिकानां निजनिजविमानेषूपत्तिभणनात्तदाधिपत्यभणनाच्च सर्वे सामानिकसुरा विमानाधिपतयो भणिताः, तथाभणने च तदन्तर्गतः सङ्गमकामरोऽपि विमानाधिपतिरेव भणितोऽवसेयः, स चाभव्यत्वान्निग्रमात् मिथ्याद्विष्टिरेवेति कथं सम्यग्दृश एव विमानाधिपतयः सर्वेऽपीति वक्तुं पार्यते इति विकल्पयन्ति, तदपि न सम्यग्, प्रवचनाभिप्रायस्य तैरनाकलनात्, न हि ' सयांसि विमाणंसि ' इति पाठबलेन विमानाधिपतित्वं सामानिकानां सेत्स्यति, तथापाठस्य विमानाधिपतित्वं विनाऽप्यागमे उपलब्ध्यात्, यतो ज्ञाताधर्मकथाङ्गे कालिदेव्याः कालावतंसकविमाणे उत्पत्तिरभिहिता, सूरप्रभदेव्याः सूरप्रभे विमाने यावत्पद्मादेव्याः सौधर्मे कल्पे पद्मावतंसके विमाने तथा कृष्णादेव्या ईशाने कल्पे कृष्णावतंसकविमाने उत्पत्तिर्भणिता, देवीनां चात्रमाहिषीणां न भवनानि न विमानानि प्रवचनेऽभिहितानि सन्ति, अपरिगृहीतदेवीनामेव विमानानां भणनात् । अयं च भावे-यथा देवीनां पृथग् विमानानि न सन्ति, परं मूलविमान-सम्बन्धि विमानैकदेशः स्वोपात्तियोग्यः तद्विमानत्वेन भणितः, एवं सामानिकानामपि शक्रविमानसम्बन्धी तदेकदेशः तदीयप्रभुतादिना नियमितः

तदीयविमानत्वेन भण्यमानो न दोषावह इति, तदभिव्यञ्जक जिनजन्मोत्सवादौ शक्रसिंहासनमण्डनवत्तदग्रमहिषीसिंहासनमण्डनवच्च चतुरशीति-सहस्रसामानिकेदवानामपि तदहसिंहासनमण्डनमेवात्रसेयं, यदि ते सामानिकाः शक्रविमानवासिनो न स्युः ततः कथमिव तेषां सिंहासनानि शक्रविमाने मण्डितानि भवेयुरित्यपि स्वधिया पर्यालोच्यं, 'सयसि विमाणंसे' इत्यादि पाठावलोकेनऽपि न कोऽपि व्यामोहः कार्यः, एवं च विमाना-धिपतयः सम्यग्दृशो भवन्तीति आगमिकयुक्तेः आगमप्रामाण्यात् तत्सिद्धस्यार्थस्यापि प्रामाणिकत्वं प्रतिपत्तव्यमेव, यदुक्तं,-- 'तह वक्खाणेअब्बं, न्हंहा जहा तस्से अवगमो होई । आगमिअमागमेणं, जुत्तीगम्मं तु जुत्तीए ॥ १ ॥ त्ति, पच्चवस्तुक्के यथा, नवरं चन्द्रविमाने चन्द्र उत्पद्यते तत्सा-मानिकाल्मरक्षकादयश्चेति चन्द्रप्रज्ञप्त्यष्टादशग्राभृतकृत्तिप्रान्तेऽस्तीति अतोऽपि सङ्क्रमको न पृथक् विमानाधिपतिरित्यवसीयते । इति विमानाधिपत-यंसम्यग्दृष्ट्य एवेति व्यवस्थितम् ॥ ३७ ॥

तथा—समवसृतौ पुष्पाणि वैक्रियाण्यन्यानि वेति, 'प्रश्नोऽत्रोत्तरं—समवसरणे पुष्पाणि वैक्रियाण्यौदारिकाणि च जलस्थलसमुद्भवानि भवन्ति इति समवायाङ्गसूत्रनृत्त्यादिभ्यो ज्ञेयमिति ॥ ३८ ॥

तथा—पञ्चविकृतिप्रत्याख्यानिना द्विघटिकानन्तरं गुडमिश्रितचूरिमकं कल्पते नवेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—पञ्चविकृतिप्रत्याख्यानवता द्विघटि-कानन्तरं गुडमिश्रितचूरिमकं तद्दिने न कल्पते इति ॥ ३९ ॥

तथा—विकलेन्द्रियाश्च्युत्वा मनुष्यत्व प्राप्य मोक्ष यान्ति न वेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—विकलेन्द्रियाः स्वभवतः च्युत्वा मनुष्यत्वं प्राप्य मोक्षं न यान्ति, सर्वविरतिं च प्राप्नुवन्तीति रांग्रहणीहृत्यादावुक्तमस्तीति ॥ ४० ॥

१ विचार्य सुधीभिर्देवैस्तवादौ सामानिकानां विमानपार्थक्योक्ते ज्योतिष्कविमानाधिपतीनां सर्वेषां सत्यगृह्यत्वे तत्सख्याविरोधात्

तथा—साधुवत्साध्वी चारणश्रमणलब्धिगती भवति नैवेति ? प्रश्नोऽत्रोच्चरं—साधुवत्साध्वी चारणश्रमणलब्धिगती न भवति, यतः स्त्रीणां तदलब्धिनिषेधो लब्धिस्तोत्रे दशाश्रुतस्कन्धे च कथितोऽस्तीति ॥ ४१ ॥

तथा—पदाना निर्ग्रन्थानां मध्ये आहारकशरीरं कः करोतीति ? प्रश्नोऽत्रोच्चरं—पञ्चानां निर्ग्रन्थानां मध्ये कषायकुशीला निर्ग्रन्था आहारकशरीरं कुर्वन्तीति श्रीभगवत्सूत्रद्वचौ २५ शतके पञ्चनिर्ग्रन्थीसूत्रावचूर्णौ च प्रोक्तमस्तीति ॥ ४२ ॥

तथा—पञ्चमारके पक्षिणामयुः कियन्मानं विद्यते इति ? प्रश्नोऽत्रोच्चरं—“मणुआउ सम गयाई, हयाइ चउरंसऽजाइ अटुंसा । गोमहि-मुद्धरराई, पणंस साणाइ दसमसा ॥ ४२ ॥ इच्चाइ तिरिच्छाणवि, पायं सव्वारएसु सारिच्छं ।” इति वीरंजयसेहराभियक्षेत्रविचार-वृत्तौ क्षालसप्तयामपि तथैव तिरश्चामपि प्रायः सर्वारकेषु सादृश्यमिति भणनात्पञ्चमारकेऽपि पक्षिणामप्यायुर्मनुष्याद्यायुरपेक्षया हीयमान सम्मान्यते, न तु कपि नामग्राहं चतुर्थभागादिनिश्चयः प्रतिपादितोऽस्तीति ॥ ४३ ॥

तथा—पाक्षिकानां तुर्मासिक्सां त्वात्वारिकक्षणानां तत्तपांसि च क्रियद्दिनानि यावत्कृतानि शुद्धयन्तीति ? प्रश्नोऽत्रोच्चरं—तत्क्षामण-क्षानि तत्तपांसि न यथाऋतं द्वितीयां पंचमीं दशमीं च यावत्कृतानि परम्परया शुद्धयन्ति, किञ्च पाक्षिकाद्यवर्गपि यथासम्भवं तत्तपांसि प्रापणो-चानीति शब्देभ्यः ॥ ४४ ॥

तथा—उद्येते उज्जोत्तिका लगति नैवेति ? प्रश्नोऽत्रोच्चरं—शरीरोद्योतिकयोरन्तराले चन्द्रोद्योते सत्युद्योतिका लगति, चन्द्रोद्योते शरीरल्लेभ्ये सति उज्जोत्तिका न लगतीति परम्पराऽस्ति, तथा सतरहृतत्तन्दोद्दोलावलीग्रन्थेऽपि तथैवोक्तमस्तीति ॥ ४५ ॥



तथा—श्राद्धानां निफलपानीयग्रहणं कुत्र ग्रन्थेऽस्तीति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—निशीथभाष्ये ‘तुवरीफले अ पत्ते, रुक्वसिलतुप्पमद्धाना-  
ईसु । पासंदणे पवाए, आयवतत्ते वहे अवहे ॥ १ ॥’ इयं गाथा, एतच्चूर्णौ व्याख्यालेशो यथा—तुवरीफला हरितक्यादय इत्यादिवचनात्रिफला  
मिश्रितं पानीयं प्रासुकं भवतीति ॥ ४६ ॥

तथा—तुर्यव्रतप्रत्याख्यानिश्रेष्ठिविजयश्राविकाविजययोः प्रतिलाभने चतुरशीतिसहस्रसाधुप्रतिलाभनपुण्यं भवतीति अक्षराणि कस्मिन् ग्रन्थे  
सन्ति ? कस्य तीर्थङ्करस्य वारके चैतज्जातमिति व्यवस्था प्रसाद्यमिति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अयं सम्बन्धः प्रघोषेण श्रुतोऽस्ति, प्रकारान्तरेण त्वेवं  
यथा—वसन्तपुरे शिवङ्करश्रेष्ठी श्रीधर्मदाससूरिपार्श्वे हर्षेण भणति,—मम लक्षसाधर्मिकभोजनप्रदानमनोरथोऽस्ति, परं किं करोमि तथाविधं धनं नास्ति,  
गुरुभिरभाणि—याहि भृगुकच्छे श्रीभुनिसुब्रतस्वामिवन्दनार्थं, तत्र जिनदासाभिधः श्राद्धो भार्यासुहागदेवीयुतो वल्लभोजनाद्यलङ्कारणीयस्तद्वात्सल्येन  
लक्षसाधर्मिकभोजनदानपुण्यं भविष्यति, ततस्तेन तथा कृतं, तदनु पृष्ठं चतुष्ये भो जिनदासः सुकृती कीदृशोऽस्ति सत्यो वा दाम्पिको वा ?  
लोकाः कथयन्ति, शृणु—स सप्तवार्षिको गुरुमुखात् शीलोपदेशमालाव्याख्यां श्रुत्वा एकान्तरितब्रह्मव्रतं प्रतिपन्नवान्, एवं सुहागदेव्याऽपि साध्वीपार्श्वे  
एकान्तरितशीलव्रतं प्रतिपन्नं, भवितव्यवशात् परस्परं पाणिग्रहणं जातं, ततो यस्मिन् दिने जिनदासस्य मुत्कलं तस्मिन् दिने सुहागदेव्या नियमः  
यस्मिन्दिने तस्या मुत्कलं तस्मिन् तस्याभिग्रहः, तदनु गुरुसमीपे यावज्जीवमेव ब्रह्मव्रतं—प्रतिपन्नमिति उपदेशतरङ्गिणीग्रन्थानुसारेण उपदेशरसाल-  
ग्रन्थानुसारेण च तत्प्रतिलाभने लक्षसाधर्मिकप्रतिलाभनपुण्यं भवतीत्यक्षराणि सन्ति ॥ ४७ ॥

तथा—गीतार्थेन प्राप्तः स्वाध्याये क्रियमाणे श्राद्धाः समायान्ति, ते सज्जाय करं इत्यादेशं मार्गयन्ति उत सज्जाय सांभलु इत्यादेशं इति ?  
प्रश्नोऽत्रोत्तरं—स्वाध्यायान्तः समागताः श्राद्धाः सज्जाय कर इत्यादेशं मार्गयन्तीति वृद्धपरम्पराऽस्तीति ॥ ४८ ॥

तथा—गणीनां पुरः श्राद्धा श्राद्धश्च पौषधादेशं मार्गयन्ति तदा गणय आदेशं ददति नवेति : प्रश्नोऽत्रोत्तरं—उपधानादिविशेषक्रियां विना पौषधं कुर्वतां श्राद्धादीनां गणय आदेशं न ददति, श्राद्धाद्यस्त्वादेशं मार्गायित्वा पौषधादिक्रियां कुर्वन्तीति वृद्धपरम्पराऽस्तीति ॥ ४९ ॥

तथा—केवलभिर्भ्यस्मिन् काले येषां जीवानां मोक्षगमनं दृष्ट तस्मिन्नेव काले ते जीवा मोक्षं यान्ति नवेति : केचन वदन्ति—पुण्यं पापं च कुर्वतां जीवानां कालस्थितेर्होनिर्वृद्धिश्च भवतीति : प्रश्नोऽत्रोत्तरं—येषां जीवानां यस्मिन् काले केवलभिर्मोक्षगमनं दृष्टमस्ति तस्मिन्नेव काले ते जीवा मोक्षं यान्ति, परं केवलभिः सर्वसामग्र्यं सैव दृष्टाऽस्ति, तस्मान्न काऽप्याशङ्केति ॥ ५० ॥

तथा—सन्ध्याप्रतिक्रमणे पडावश्यकसूत्राणि कानीति : प्रश्नोऽत्रोत्तरं—नमो अरिहंताणमित्यादि सम्पूर्णमस्कारः करोमि भंते ! सामाहमित्यादितः अंष्पाणं वोसिरामीत्यन्तं प्रथमं सामायिकाध्ययनम् १ ॥ लोगस्स उज्जोअगरे इत्यादितः सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु इत्यन्तं द्वितीयं चतुर्विंशति-स्तवाध्ययनम् २ ॥ इच्छामि खमासमणो ! वदिउं जावणिज्जाए निसीहिआए अणुजाणह मे मिउग्गहमित्यादि तृतीयं वन्दनकाध्ययनम् ३ ॥ चत्तारि मङ्गलं, इच्छामि पडिक्कमिउं जो मे देवसिओ, इच्छामि पडिक्कमिउं पगामसिज्जाए० इत्यादि चतुर्थं प्रतिक्रमणाध्ययनम् ४ ॥ इच्छामि ठामि काउस्सगं० तस्स उत्तरीकरणं० अन्नत्थ उस्ससिएणं० सब्वलोए अरिहंतचेइआणं० पुक्खरवरदी० सिद्धाणं बुद्धाणं० वेआवच्चगराणं० इच्छामि खमासमणो अब्भुट्ठिओमि अडिभत्तरेदेवसिअं खामेउं० इच्छामि खमासमणो ! पिअं च मे जं मे इत्यादि पञ्चमं कायोत्सर्गाध्ययनम् ५ ॥ उग्गए सूरं नमुक्कास्सहिअं पच्चक्खामोत्त्यादि सर्व्वाण्यपि प्रत्याख्यानसूत्राणि पष्ठं प्रत्याख्यानध्ययनम् ६ ॥ च, इमानि प्रतिक्रमणे पडावश्यकसूत्राणि परम्परया ज्ञेयानीति ॥ ५१ ॥

तथा—पडावश्यकमूलसूत्राणि गणधरकृतान्यन्यकृतानि वेति : प्रश्नोऽत्रोत्तरं—षडावश्यकमूलसूत्राणि गणधरकृतानीति सम्भाव्यते, यतो

नन्दारुदृतौ 'सिद्धाण बुद्धाण' मित्तरयाद्यास्तिहो गाथा गणधरुता इत्युक्तमस्ति, तथा पाक्षिकद्वये नमो तेसं खमासमणामित्यत्र सर्वत्रालाणके  
सामान्येनैवैककर्तृकत्वं दृश्यते, आवश्यकं न मूलसूत्रं मूलसूत्राणि नागमः ततो गणधरकृतमित्यापन्नं, तथा सकलसिद्धान्तान्तादिपुस्तकटिप्पासु  
'पञ्चवश्यममूलसूत्राणि सुधर्मस्नागिकृतानि' ति लिखितमस्ति, तथा 'सामाङ्गमाङ्ग्याइ एक्कारसअंगाइ अहिज्जइ' इत्याद्युक्तेश्चेति ज्ञेयम् ॥ ५२ ॥

तथा—नगरस्थितवृद्धलेगुगीतायैः शाखापुरे शय्यातरगृहं कृतं, तत्ररगगीतार्थैस्तद्गृहे आहारादिकं ग्राह्यं नवाः तथा शाखापुरस्थगीतार्थै-  
र्नगरमध्ये शय्यातरगृहं कृतं भवति तदा तत्ररगगीतार्थैस्तद्गृहे आहारादिकं ग्राह्यं नवाः तथा क्रोशत्रयावधि वृद्धगीतार्थैः शय्यातरगृहं कृतं  
त्रत्पालनीय नवेति ? प्रश्नोऽत्रोचरं—नगरस्थितगीतार्थैः शाखापुरे शय्यातरगृहं कृतं भवति तदा तद्गृहे तत्रस्थसाधुभिः शाखापुरस्थसाधुभिश्चाहारादिकं न  
हारादिकं न ग्राह्यं, तथा शाखापुरस्थगीतार्थैर्नगरमध्ये शय्यातरगृहं कृतं भवति तदा तद्गृहे तत्रस्थसाधुभिः शाखापुरस्थसाधुभिश्चाहारादिकं न  
ग्राह्यं, पर परस्परं तद्गृहं ज्ञापनीयं, तथा क्रोशत्रयावधि वृद्धकृतशय्यातरगृहं मुख्यवृत्त्या सर्वैरपि साधुभिः पालितं युज्यते, परमधुना स विधिः  
सत्यापयितुं न शक्यते तथापि यदा ज्ञायते तदा सत्याप्यते इति परम्पराऽस्तीति । किञ्च यत्रोपितास्तत्तत् स्थानात् यस्या वेलाया निर्गता  
द्वितीयान्दिने तावत्याः वेलायाः परतोऽशय्यातरो भवतीत्यावश्यं टिप्पणं के इति ज्ञेयम् ॥ ५३ ॥

तथा—मुत्कलश्राद्धः स्थापनापतिलेखना करोति तदा पडिलेहणा पडिलेहावु इत्यादेश मार्गयित्वा प्रतिलिखत्यन्यथा वेति ? प्रश्नोऽत्रोचरं—  
मुत्कलश्राद्धः प्रतिलेखनदेश मार्गयित्वा मुखपदिकां प्रतिलिख्य परिधानवत् परावृत्त्य च स्थापनाः प्रतिलिखति, परं पौषसामायिकं विना पडि-  
लेहणा पडिलेहावु इत्यादेशं न मार्गयतीति परम्पराऽस्तीति ॥ ५४ ॥

तथा—प्रागुद्दयोगस्य शैक्षरय गुरुदक्षानन्तरमुपस्थापनाया अर्वाङ् मण्डलचामतीचारादिकं कथितं शुद्धयति नेनेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—तस्य-  
गुरुदक्षानन्तरमुपस्थापनाया अर्वाङ् मण्डलचामतीचारादिकं कथितं न शुद्धयतीति परम्पराऽस्तीति ॥ ५५ ॥

तथा—सर्वार्थार्थकृन्मातरश्चतुर्ह ग स्वप्नान् मुखे प्रविशतः पश्यन्त्युत काश्चिदिति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सर्वार्थार्थकृज्जनन्यश्चतुर्दश स्वप्नान्  
मुखे प्रविशतः पश्यन्ति, यदुक्तम्—“वृषभः कुम्भः सिंहः, पद्मावासाभिषेचनम् । पुष्पदाम शशो सूर्यः, पुष्पकुम्भः सितध्वजः ॥ १ ॥ पद्माकरः  
पयोराशिर्विमानं कल्पवासिनाम् । रत्नोच्चयः शिखी धेति, प्रविशन्तो मुखाम्बुजे ॥ २ ॥ इति सम्यक्त्वरहस्यवृत्तौ १४ पत्रे श्रीहिमचन्द्रसू-  
रिहृतवीरचरित्रेऽप्येवमेव, तथाच देवागन्द्गा प्रविशन्तो निष्कामन्तश्च रत्ना दृष्टाः, त्रिशल्या प्रविशन्त इति हारिभद्रीयवृत्तौ, तथा अचिरा-  
चतुर्दश स्वप्नान् मुखे प्रविशतः पश्यन्तीति वेद्यमरत्नाख्यशान्तिचरित्रे इति ग्रन्थानुसारेण तीर्थकृन्मातरश्चतुर्दश स्वप्नान् मुखे प्रविशतः  
पश्यन्तीति भावः ॥ ५६ ॥

तथो—सिद्धाना ज्ञानदर्शनचारित्रवीर्याप्यनन्तानि प्रोक्तानि तत्कथ घटते ? तेषां पृथक् पृथगेकैकसद्भावात् तद्वचक्या प्रसाद्यमिति प्रश्नोऽ-  
त्रोत्तरं—ज्ञानादीना चतुर्णां तद्धारणकर्मपुद्गलानामनन्ताना क्षाप्तेषामप्यानन्त्यं घटत एव, यदुक्तं “ज्ञानादयस्तु भावाः प्राणमुक्तोऽपि जीवति स तैर्हि ।  
तस्मात्तज्जीवत्वं नित्यं सर्वस्य जीवस्य ॥ ५१ ॥ अनन्तं केवलज्ञानं, ज्ञानावरणसङ्घात । अनन्तं दर्शनं पापि, दर्शनावरणक्षेपात् ॥ २ ॥ क्षायिके  
शुद्धसम्यक्त्वचारित्रे मोहनिग्रहात् । अनन्तसुखवीर्यं च, वेद्यविश्रयात् क्रमात् ॥ ३ ॥ आयुषः क्षीणभावत्वात्, सिद्धानामक्षया स्थितिः । नामगो-  
त्रक्षयादेवाऽनन्ताऽमूर्त्ताऽवगाहना ॥ ४ ॥” इति ॥ ५७ ॥

तथैपपातिकसूत्रे ‘पन्ताहरे’ इत्यस्य वृत्तौ साधवः पर्युषितशब्देन व्याख्यातमस्ति, तत्र पर्युषितशब्देन किमुच्यत इति

प्रश्नोऽत्रोत्तरं—प्रभातराख्वल्लक्षणकादि द्विदलं गध्याह्नादिषु शीतलं नीरसं विनष्टं च भवति तत्पर्युषितशब्देनोच्यते, कोऽर्थः—शीतलं विनष्टं वल्लक्षणकादि पर्युषितमित्यर्थः । यदुक्तं बृहत्कल्पभाष्ये “निष्काव चणगमाइ, अंतं पतं च होइ वावन्नति” एतदुक्तौ वावन्नं विनष्टमिति व्याख्यातमस्ति । तस्मादन्ताहारादौ सर्वत्र स्वाभिविशं मुख्या सम्यग् विभाव्यार्थयोजना कार्येति ज्ञेयम् ॥ १८ ॥

तथा—सगरचक्रिणः पट्टिसहस्रसुताः पृथङ्मातृका एकमातृका वेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—“ इतः पुनश्चतुःपट्टिसहस्रस्त्रीभिरन्वितः । रतिसागर-निर्मनो, नाकीवारंस्त चकभृत ॥ ४२ ॥ तस्यान्तःपुरसम्भोगजन्मा खानिरपास्यत । खीरत्नभोगादध्वन्यश्रमोऽगाच्यनिलादिव ॥ ४३ ॥ एवं सुखं वैपाधिकं, तस्यानुभवतोऽनिशम् । जलप्रभतयः पट्टिसहस्रा जज्ञिरे सुताः ॥ ४४ ॥” इति श्रीअजितनाथचरित्रानुसारेण सगरचक्रिणः पट्टि-सहस्रसुताः पृथग्मातृजाता ज्ञायन्ते, भोजचरित्रे तु सगरचक्रिणा मुनिसिंहर्षिकेनली विज्ञप्तो—भगवान् । मम सुतो भविष्यति, मुनिराह—एकस्मिन् समये पट्टिसहस्रा भविष्यन्ति, कथमिति कौतुकं वर्त्तते ? मुनिराह—समुदायकर्मवशाद्, अथ राज्ञौ यदा तुभ्यं चात्राफलेकं शासनाधिभो दास्यति, पट्टिसहस्रतीणां स्लोकं स्लोकं दातव्यं, सर्वासि पुत्रा भविष्यन्ति, तदा तथा कृतं राज्यलोभादेकया पट्टिरास्या तद्भक्षितं, जलोदरीव जतरं जातं, पूर्णमासेषु प्रसवे मर्कटकसमानाः सुता जाता धृतश्रुतरतेन वर्द्धतास्तत्राद्यसुतो जलनामा इत्येकमातृका अपीति एतेषामेकोदरावस्थानत्वं देवशक्त्या ज्ञायत इति ॥ १९ ॥

तथा—घटिकाद्वयमध्ये आनुपूर्व्यनानुपूर्वीभ्या चतुर्दशपूर्वगणलब्धिमन्तश्चतुर्दशपूर्वभृतश्चतुर्दश पूर्वाणि गणयन्ति तत् स्मरणमात्रेण वाचा वेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—चतुर्दशपूर्वभराश्चतुर्दश पूर्वाणि ताल्व्योष्टपुटसंयोगजन्यवाचा घटिकाद्वयमध्ये गणयन्ति, यदुक्तं परिशिष्टपर्वणि

“ सोऽप्युवाच महाप्राणध्यानमारब्धमस्ति यत् । साध्यं द्वादशभिर्वर्षैर्नगमिष्याम्यहं ततः ॥ ६१ ॥ महाप्राणे हि निष्पन्ने, कार्ये कस्मिंश्चिदागते । सर्वपूर्व्याणि गण्यन्ते, सूत्रार्थाभ्यां मुहूर्ततः ॥ ६२ ॥” इति, इयमपि लब्धिः केषाञ्चित् न सर्वेषां पूर्वविदामित्यापि ज्ञेयमिति ॥ ६० ॥

तथा—अंग्रासुकोदकमोदकादिकं सचित्तविकृतिमध्ये गण्यते द्रव्यमध्ये वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—श्राद्धविधौ सचित्तविकृतिवर्जनं यन्मुखे क्षिप्यते तद्द्रव्यमध्ये गण्यते इति वचनात्प्रासुकनीरोणोदकतन्दुलधावनोदकादीनां सचित्तत्वाभावाद्द्रव्यमध्ये गणनं मुद्गमोदकभेषजलडुकनिर्विकृत-वृत्तादीनां विकृतित्वाभावाद् द्रव्यमध्ये गणनं च क्रियते, तथैकस्मिन्नपि द्रव्ये पोलिका क्षोभितपोलिका लहचूई ससपुटिका गडदादिभेदेन भिन्ननाम-रसत्वादवत्वात् पृथक् पृथक् द्रव्यमध्ये गण्यते, अंग्रासुकजलमोदकादिकं तु सचित्तविकृतिमध्ये गण्यते, अधुना केचन द्रव्यमध्येऽपि गणयन्तो दृश्यन्ते, किञ्च रूप्यादिधातुशिलाकादिमुखे क्षिप्यते तद्द्रव्यमध्ये न गण्यते, रसात्वादाभावात् ॥ ६१ ॥

तथा—लोका जिनकल्पिनं नगं पश्यन्ति नवेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—लोकास्तं नगं पश्यन्ति, यतः शास्त्रे लज्जजेता जिनकल्पमङ्गीकरोतीति ॥ ६२ ॥

तथा—औषधरससङ्गमध्ये क्षिप्तं वत्सनागादिकमभक्ष्यं भवति नवेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—औषधादिमध्ये क्षिप्तं वत्सनागभङ्गिपोस्ताहिफनदिकं मौषधनिमित्तं गृहीतमभक्ष्यं न भवति परं कन्दर्पार्थं गृहीतं त्वभक्ष्यं भवतीति ॥ ६३ ॥

तथा—सार्द्धद्वीपद्वये जघन्योत्कृष्टत एकस्मिन् समये तीर्थकृतां कृत्यभिषेकाः तथा तत्र कत्यरका भवन्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सार्द्धद्वीपद्वये जघन्यत एकसमये दश तीर्थङ्करा मेरुपञ्चके शकैरभिषिच्यन्ते उत्कृष्टतस्तु विशतिः, तथा तत्र जघन्यतश्चत्वारोऽरका उत्कृष्टतस्तु पञ्च भवन्तीति ज्ञायते ॥ ६४ ॥

तथा—नक्तृत्वो गोमयाद्यौ कृत्यष्टमान् कुर्वन्तीति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—मागधस्तूप १ वरदामस्तूप २ प्रभासस्तूप ३ वेताढ्यदेवसाधन ४-  
रिमिन्वादेवसाधन ५ नभिविनिमिदेवसाधन ६ सिन्धुदेवीसाधन ७ चुण्डिमगतसाधन ८ गङ्गादेवीसाधन ९ नवनिधानप्रकटीकरणा १० योष्या-  
नगरीप्रवेशकरणा ११ चकिणोऽनुक्रमेण सादशाष्टमान् कुर्वन्तीति जम्बूद्वीपपञ्चसिद्धये, तीर्थकृच्चकिणोऽष्टमान् कुर्वन्तीत्यपि शान्तिचरित्रे  
इस्तीति शेषः ॥ ६५ ॥

तथा—चक्रित्वं प्राप्य पुनश्चक्रित्वं कियता कालेन पाप्यत इति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—जघन्यतः साभिकसागरेणोत्कृष्टतोऽनन्तकालेन तत्  
प्राप्यते इति भगवती ११ शतके ॥ ६६ ॥

तथा—कथितत्पनेन्द्रिगजीवं हन्यमान गोचरंति तदभग्नगनगनु हन्मादानं वा कथ्यत इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—तदभयदानं कथ्यते, गतः श्रीशान्ति-  
नाभजीवेन पूर्वभवे पारापतो मोचितस्तदभयदान पुष्पमालागृहौ कथितमस्तीति ॥ ६७ ॥

तथा—उपधानवाहिना तपोदिने नल्याणकृतिगिरागति तत्र तेनैव तपसा सरति नवेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—नद्धतपस्त्वात्तेन तपसा सरतीति  
ज्ञायते, अन्यथा चतुर्दश्यादिर्बोधा एतन्क कृताऽत्रेतना कल्याणकृतिगिराध्यत इति ॥ ६८ ॥

तथा—नारदास्तर्ज्जोऽपि मोक्ष एव यान्ति स्वर्गं वेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—नारदा मोक्षं स्वर्गं च यान्तीति त्रिपिपण्डलदृष्टौ, किञ्च—ते पूर्वं  
मिथ्यात्विनः पश्चात्सम्यक्तत्त्वभाजस्तत्रैवोत्तता इति, अन्यच्च भीम १ महाभीम २ रुद्र ३ महारुद्र ४ काल ५ महाकाल ६ चतुर्मुख ७ नवमुख ८—  
उन्मुखा ९ एवविधनामन्यपि सन्तीति ॥ ६९ ॥

तथा—सिन्धुदेशे श्रीवीरस्वामिगमने पञ्चशताधिकमहत्सामधुभिरनशनं कृतं तदक्षराणि प्रसाद्यानीति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—तदक्षराणि निशित्य-  
चूण्णौ सन्ति, तथा श्रूयते च अप्फायमचित्तं जानाना अपि केवलमनःपर्यायाविश्रुतज्ञानिनो न परिभुजते, अनवस्थाप्रसङ्गभीरुतया, तथा  
श्रीवर्द्धमानस्वामिना विमलसलिलशैवलपटलजसादिरहितो महाद्रहो व्यपगतशेषजलजन्तुकोऽचित्तवारिपरिपूर्णः स्वशिष्याणा तृड्वाधितानामपि  
पानाय नानुज्जे, तथा अचित्तिलिश तटस्थण्डिलपरिभोगानुज्ञा चानास्यादोषसंरक्षणाय भगवता न कृतेति, श्रुतज्ञानप्रामाण्यज्ञापनार्थं च, इत्या-  
चाराङ्गप्रथमाध्ययनतृतीयोद्देशकयुक्त्याविति ॥ ७० ॥

तथा—अन्धकारे आह्वारकरणे रात्रिभोजनदोषो लगति नवेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—जे चेव रयणिभोगणदोसा ते चेव संकडमुहंमि । जे  
जेव संकडमुहे, ते दोसा अंधयारंमि ॥ १ ॥ इत्योद्योयनियुक्तिाचनात् रात्रिभोजनदोषो लगतीति ज्ञायते ॥ ७१ ॥

तथा—ब्राह्मीसुन्दरीभ्या पाणिग्रहणं कृतं नवा ? केनन कथयन्ति—भरतेन सुन्दरी बाहुचलिना ब्राह्मी परिणीता, तर्हि बाहुचलेर्वर्पकायोत्स-  
र्गान्ते ताग्या आतर्गजादुत्तरेत्युक्तं तत्कथमिति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—भरतबाहुचलिभ्या विपरीततया पाणिग्रहणं कृतमित्यक्षराणि आवश्यक्रमलयभि-  
रिवृत्तौ सन्ति, यत्तु ताभ्या आतर्गजादुत्तरेत्युक्तं तद्व्याक्तनभातृसम्बन्धात् द्वाभ्या समुदिताभ्या कथनात् यतितया च युक्तिमदेवेति ॥ ७२ ॥  
तथा—नेजोलेक्षयायाः पुद्गलाः सचित्ता अचिता वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—लब्धिः पुद्गलरूपा न भवति, शक्तिरूपा भवति, परं तेजोलेक्षयापुद्गला  
जीवेन मुखाज्जीवप्रदेशसहितां निष्कासितास्तस्माज्जावप्रयोगनिष्काशितत्वात् सचित्ता ज्ञायन्ते इति ॥ ७३ ॥

तथा—देशविरतिसम्यक्त्वधारिणौ द्वादशदेवलोके यातो नवति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—तौःद्वावप्युत्कृष्टतो द्वादशदेवलोके यात इत्यक्षराणि पञ्चव-  
षासुत्रे वृत्तौ च सन्तीति ॥ ७४ ॥



तथा—सम्यक्त्वप्राप्त्यनन्तरं क्रियता कालेन देशचारित्रं सर्वचारित्रं वा लभ्यते इति : प्रश्नोऽत्रोत्तरं—पल्योपमगृथवत्वेन देशचारित्रं सङ्ख्यातसागरोपमप्रमाणेन सर्वचारित्रं न लभ्यते, इति प्रवचनसारोद्धारवृत्ताविति ॥ ७९ ॥

तथा—दधि गृहस्यैरुदनादिना संसृष्टं तद्धिने प्रहरानन्तरं निर्विकृतिकं भवति, तथा दुग्धमपि राक्षकूरगृथकादिना संसृष्टं निर्विकृतिकं भवति नवेति : प्रश्नोऽत्रोत्तरं—कूरमिश्रं दधि करवरूपं जायते, तद् घटिकाद्वयादनु निर्विकृतिकं भवति, यच्च दधि दुग्धं वा 'दुद्धदहि वज्रकुले' त्यनुसारेण कूरादिमिश्रं विधीयते तस्माप्यावचूरिवचनात्पर्युपितं सत् निर्विकृतिकं भवतीति ॥ ७९ ॥

तथा—महागिरिसुहस्तिनौ केन कारणेनार्योपपदौ जाताविति : प्रश्नोऽत्रोत्तरं—“स्वामिना स्थूलभद्रेण, शिष्यौ द्वावपि दीक्षितौ । आर्य-महागिरिरार्यसुहस्ती चाभिधानतः ॥ १ ॥ तौ हि यक्षार्यया नाल्यादपि मात्रैव पालितौ । इत्यार्योपपदौ जातौ, महागिरिसुहस्तिनौ ॥ २ ॥” इति परिशिष्टपर्यप्युक्तमस्तीति ॥ ७७ ॥

तथा—पद्मदशकर्मोदाननिषेधवता धान्यनालिकेरादिफलगुहरीहरितालपशूनां विक्रये भक्षोऽभक्षो वा : तथा—सद्यालपुत्रादीनां श्राद्धानां कर्मोदानस्य सम्भवो निषेधो वेति : प्रश्नोऽत्रोत्तरं—धान्यादीनां द्रुतपरिमाणदूर्ध्वं क्रयादिकरणे भक्षोऽन्यथा तु नेति, तथा सद्यालपुत्रादीनां परिमित-त्वादङ्गालादिकर्मकरणेऽपि न कर्मोदानसंज्ञेति वृद्धोक्तिः ॥ ७८ ॥

तथा—उपवासी श्राद्धः सन्ध्यायां सामाधिकं विधाय मुखवस्त्रिकां प्रतिलिख्य प्रत्याख्यानं करोत्यन्यथा वा : यदि तथैव तदा वन्दनक-दाननिषेधः कस्मादिति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सामाचारीप्रमुखग्रन्थेषु भोजनदिवसे वन्दनकदानानन्तरं प्रत्याख्यानकरणाक्षराणि सन्ति, परमुपवासदिने

वन्दनकदानानन्तरं प्रत्याख्यानकरणविधिर्नस्ति, मुखपोतिका तु प्रतिलेखिता युज्यते, यस्मात्तां विना प्रत्याख्यानं न शुद्धयतीति सामान्यमस्ति, तथोपयानेऽपि तथैव करणादिति ॥ ७९ ॥

तथा—प्रतिवासुदेवमाता कति स्वप्नान् पश्यतीति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सा त्रीन् स्वप्नान् पश्यतीति, यदुक्तं श्रीअजितसिंहसूरिकृतशान्तिचारित्रे पृष्ठप्रस्तावे—“ प्रत्यर्द्धचाकिणां त्रींश्चान्येषामुत्तमजन्मिनाम् । एकैकमश्विकाः स्वप्नं, पश्यन्त्येषां हि मय्यतः ॥ १९ ॥ ” इति, तथा सप्ततिशतस्थानकेऽपि, किं च—स तान् गज १ कुम्भ २ वृणभा ३ ख्यान् पश्यतीति परम्परया ज्ञेयम् ॥ ८० ॥

तथा—स्वयन्बुद्धाः प्रत्येकबुद्धाश्च नशा अनशा वेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—स्वयन्बुद्धानां पात्रादिर्द्वादशाविध उपधिस्तथा—“पत्तं १ पत्तात्रंधो २ पायट्टवणं च ३ पायकेसरिया ४ । पडलौ ५ रयत्ताणं ६, गुच्छओ ७ पायनिज्जोगो ॥ १ ॥ तिल्लेय य पच्छागा १० रयहरणं चैव ११ होइ मुहपत्ती १२ ” इति, प्रत्येकबुद्धानां तु जघन्येन रजोहरणमुहपत्तिरूपो द्विविधः, उत्कृष्टतस्तु चोलपट्टक १ मात्रक २ कल्पत्रिकवर्जो ५ नवविध इति पाक्षिकसूत्रबृहद्दत्तौ, एतदनुसारेण स्वयन्बुद्धाः प्रत्येकबुद्धाश्च चोलपट्टाभावेन सप्तावरणा अपि नशा एव ज्ञायन्ते इति ॥ ८१ ॥

तथा—प्रथमाङ्गस्याष्टादशसहस्रपदानि सन्ति, तत्रैकपदप्रमाणं किमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—“ पढमं आयारंगं, अष्टारसपयसहस्रपरिमाणं । एवं सेंसांगिहु, दुगुणादुगुणप्पमाणइ ॥ १ ॥ ” एवमेकादशाङ्गानां त्रिकोटीसप्त ( अष्ट ) पटिल्लस ( पट् ) चत्वारिंशत्सहस्रपदानि भवन्ति, तत्रैकपदस्य ५-१०८६८४० एतावन्तः श्लोका अष्टाविंशत्यक्षराणि च भवन्तीत्यनुयोगद्वार ( कर्मग्रन्थ ) वृत्ताविति ॥ ८२ ॥

तथा—सुपार्थनाथस्यैका पद्य नव च फणाः क्रियन्ते तत्कथमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—“ जेणपंचनवसिरासु नागसिज्जासु तिसुवि पत्तेयं । जणणी सुमिणे पिच्छइ, गब्भत्थस्सावि सामिस्स ॥ १ ॥ ० तेणगाइफणा नेया । सुपार्थफणपद्यककृत्ताविदमपि कारणं पुब्बानार्यो [ एवं ] वदन्ति—

भगवतः छद्मस्थावस्थाया कायोत्सर्गस्थस्योपरि 'सर्वर्त्तकपक्षिपरिहराय वन्दनागतधरणेन्द्रेण वैक्रियपञ्चाहुलकरो घृत इति, अत्रार्थे वसुदेवहिंशिड-  
द्वितीयखण्डोऽवलोकनीयः, कथावलीप्रथमखण्डेऽप्युक्तं 'नवफणरयणाहरोहिं तेहिं समोसरणे सकेण विउविज्जइ तिविहं पि सुपाससीसाइं, ' " इग  
पण नव य सुपासो, पासो फण तिन्नसगइगार कमा । फणिंदिमत्तीए नक्केसु " ॥ १ ॥ इति वचनात् सुपार्थपार्थनाथयोः  
फणकृतिर्ज्ञेयेति ॥ ८३ ॥

तथा—'नवण्हं मासाणं बहुपाडिपुत्ताण अद्धमाणराइंदियाण ' मित्यत्र नव मासाः सप्त रात्रय एव भवन्ति, यतो यस्य मध्यरात्रावुत्पत्तिः  
तस्य मध्यरात्रावेव च जन्म तर्हि कथं सार्धः सप्त रात्रयः प्रोक्ता इति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—भगवज्जन्मनि नव मासाः सप्त रात्रय एव भवन्ति, परं  
सिद्धांतशैलीवशात् 'अद्धमाणराइंदियाण ' मिति पाठो ज्ञायत इति ॥ ८४ ॥

तथा—'केवलिना कति परीषहा भवन्तीति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरम्—केवलिना क्षुधा १ तृषा २ शीतो ३ षण ४ दंश ५ चर्या ६ शय्या ७-  
वघ ८ रोग ९ तृणस्पर्श १० मल ११ रूपैकादश परीषहा भवन्तीति भगवत्यष्टमरातके नवमोद्देशके इति ॥ ८५ ॥

तथा—'अनुत्तरविमानेषु जीवः कति भवान् करोतीति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरम्—विजयादिषु उत्कर्षतो वारद्वयं, सर्वार्थसिद्धिविमाने एकवारं इति  
जीवाभिममवृत्तौ, 'विजयादिषु द्विचरमा' इति तत्त्वार्थमृत्रचतुर्थोऽव्यये, सर्वार्थसिद्धिविमानादागतोऽनन्तरमेव सिद्धयत्येव, विजयादिचतुर्थं गतो मनु-  
ष्येष्वेऽज्जायाति, तत्रापि जघन्येन एकं द्वौ वा भवौ उत्कर्षतश्चतुर्विंशतिभवान्, तत्र नरभवेऽष्टौ भूयो नरभवेऽष्टौ ततः सिद्धयत्येव, विजयादिषु  
द्विरुत्पन्नस्य नियमात् सिद्धिरनन्तरमव एवेति प्रघोषः, प्रज्ञापनायां संख्यातमवानिति ॥ ८६ ॥

तथा—विष्णुऋमार एको द्वौ वेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरम्—वासुपुज्यतीर्थं नमुचिक्तोपद्रववारकः प्रथमो, द्वितीयः श्रीशान्तिनाथतीर्थेऽभूदित्यष्टा-  
विंशत्युत्तराध्ययनचतुर्दशसहस्रीवृत्तौ ज्ञेयम् ॥ ८७ ॥

तथा—श्रीह्रीप्रभृतिषड्देव्यश्चतुर्विंशतिजिनयक्षिण्यः षट्पञ्चाशद्विक्रुमार्यः सरस्वती श्रुतदेवी शासनदेवी चेत्येतासां मध्ये का भवनपति-  
निकायवासिन्यः काश्च व्यन्तरनिकायवासिन्य इति साक्षरं न्यक्त्या प्रसाद्यमिति, प्रश्नोऽत्रोत्तरम्—श्रीह्रीप्रभृति षड् देव्यो भवनपतिनिकायान्तर्गता  
इति मलयगिरिकृतवृक्षेत्रविचारटीकायामिति, तथा चतुर्विंशतिजिनयक्षिण्यस्तु व्यन्तरनिकायान्तर्गता एव सम्भाव्यन्ते, यत उक्तं संग्रहणीसूत्रे-  
‘वतरं पुण अट्टविहा पिसायभूआ तहा जक्खे’ त्यादि ॥ तथा षट्पञ्चाशद्विक्रुमार्यस्तु श्रीआवश्यकचूर्णौ षट्पञ्चाशद्विक्रुमारीणां ऋद्धिवर्णने  
‘बहूहि वाणमंतरेहि देवेहि देवीहिंय सद्धि संपरिवुडा’ इत्याद्युक्तानुसारेण व्यन्तरनिकायान्तर्गता ज्ञायन्त इति । तथा शासनदेवी तु जिनयक्षिण्येव  
नापरेति, तथा सरस्वती श्रुतदेवी तु पर्यायान्तरमिति ज्ञायते परं कुत्रापि तदायुर्माननिकाया न दृश्यन्त इति ॥ ८८ ॥

तथा—“सुत्ते अत्ये भोअण, काले आवसए अ सज्जाए । संथारएवि अ तहा, सत्तेया हुंति मंडलिओ” ॥ १ ॥ एतद्गाथोक्तः-  
सप्तमण्डलीसत्यापनस्थानकानि कानि भवन्तीति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—प्रातः स्वाध्यायकरणं सूत्रमण्डली, व्याख्यानमर्थपौरुषी चार्थमण्डली २  
भोजनमण्डली प्रतीता ३ कालप्रवेदनं कालमण्डली ४ उभयकालप्रतिक्रमणमावश्यकमण्डली ५ स्वाध्यायप्रस्थापनं स्वाध्यायमण्डली ६ संस्तारक-  
विधिभणनं संस्तारकमण्डली च ज्ञायते ७, किञ्च तृतीयग्रहरप्रतिलेखनदेशमार्गमण्डली प्रश्नोत्तरसमुच्चयवचनादावश्यकमण्डल्यन्तर्भूतेति बोध्यम् ॥ ८९ ॥

तथा—वीरनिर्वाणात् १५२ वर्षे “जीअं काऊण पणं, तुसमिणिदत्तस्स कालिअज्जेण । अवि अ सरारं चत्तं, न य भणिअमहम्मसंजुत्तं” ॥ १ ॥  
एतद्गाथोपदेशतचरित्रः कालिकाचार्यः प्रथमः, वीरात् ३३५ वर्षे पढमाणुभोग कासी० इति ऋषिमण्डलसूत्रानुसारेण प्रथमानुयोगकर्त्ता द्वितीयः,

वीरात् ४५३ वर्षे गर्दभिल्लोच्छेदी तृतीयः, वीरात् १८४ वर्षे आर्यक्षितसूरिः शक्रपृष्ठनिगोदविचारव्याख्याता शक्रदत्तनामा कालिकाचार्यः चतुर्थः, प्राकृतदीपालिकाकल्प १ संस्कृतकालिकाचार्यकथा २ श्राद्धविधिविनिश्चय ३ श्राद्धविधिविनिश्चय ४ विचारसुतसंग्रह ५ भरहेसरवाहुलीवृत्ति ६-प्रमुस्रग्रन्थानुसारेण वीरात् ९९३ वर्षे पञ्चमीतः चतुर्थ्यो पर्युषणापञ्चाङ्गेता पञ्चम इत्येतत्कालिकाचार्यपञ्चकं सत्यमसत्यं वेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरम्—

[illegible][illegible]

तथा—कृतगृहसत्कप्रत्याख्यानः श्राद्धो गृहे गत्वाऽन्यत्र भोजनं करोति तदा शुद्धयति किं वा तत्र दन्तधावनं विधयेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—  
कृतगृहसत्कप्रत्याख्यानः श्रावको गृहे गत्वा पारितगृहसत्कप्रत्याख्यानो दन्तधावनकरणमन्तराप्यन्यत्र भुङ्क्ते तदा शुद्धयतीति वृद्धाः ॥ ९३ ॥  
तथा—चक्षुर्विकलस्य साधोः पार्श्वे कालिकोत्कालिकयोगस्य क्रिया कृता शुद्धयति नवेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—कालिकोत्कालिकयोगक्रिया  
चक्षुर्विकलस्य साधोः पार्श्वे प्रायो न शुद्धयतीति ज्ञातमस्ति ॥ ९४ ॥

तथा—‘वारस मुहुत्त गर्भे,’ ‘इवरे चउवीस विरह उक्कोसो’ एतद्विरहकालः सम्मूर्च्छजमनुष्याणां कियता कालेन भवतीति प्रश्नोऽत्रो-  
त्तरम्—इह मनुष्या द्विविधाः—सम्मूर्च्छजाः गर्भजाश्च, तत्राद्याः कदाचित् भवन्त्येव, जघन्यतः समयस्योत्कृष्टतस्तु चतुर्विंशतिमुहूर्त्तान्तरकालस्य  
प्रतिपादितत्वात्, उत्पन्नानां तु जघन्यत उत्कृष्टतश्चान्तर्मुहूर्त्तस्थितिकत्वेन परतः सर्वेषां निर्लेपकत्वसम्भवात्, यदा तु भवन्ति तदा जघन्यत  
एको द्वौ त्रयो वा, उत्कृष्टतस्तु असङ्ख्याताः, इतरे तु संख्येया भवन्तीत्यनुयोगद्वारष्टत्तौ । त्रसत्वं—त्रसत्वेनोत्पत्तिः, सततमनवरतं, जघन्यत  
एकं समयमुत्कर्षत आवलिकाऽसङ्ख्येयभागं कालं, परतोऽवश्यमन्तरम् । अपि चास्तां सामान्येन त्रसत्वम्, किन्तु द्वीन्द्रियास्त्रीन्द्रियाश्चतुरिन्द्रियास्ति-  
र्यक्ष्णैश्चेन्द्रियाः सम्मूर्च्छजमनुष्याः अप्रतिष्ठाननरकावासनारकवर्जाः शेषाः प्रत्येकं नारका अनुत्तरसुरवर्जाः शेषाः प्रत्येकं देवाश्च निरन्तरमुत्पद्यमाना  
जघन्यत एकं समयमुत्कृष्टत आवलिकाया असङ्ख्येयभागं कालं इति पञ्चसंग्रहष्टत्तौ ४९ पत्रे, एतदक्षरानुसारेणोत्कृष्टतः कदाचिदावलिकाया  
असंख्येयभागकालानन्तरं सम्मूर्च्छजमनुष्याणां चतुर्विंशतिमुहूर्त्तविरहकालः सम्भवतीति ॥ ९५ ॥

तथा—एकेन केनचिच्चारित्रब्रह्मचर्यादिव्रतं गृहीतं, पश्चात्कर्मवशाद्भ्रमम्, अपरेण तु तद्भङ्गभयादेव न गृहीतं, तयोर्मध्ये को गुरुः कश्च लघुरिति  
साक्षरं प्रसाद्यमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरम्—येन व्रतग्रहणवेलायां शुभाध्यवसायेन यत्कर्मार्जितं बोधिलभस्वर्गायुर्वन्धादि तदर्जितमेव, गौतमप्रतिबोधित-

हालिकवत्, कर्मवशाच्च तद्भङ्गेऽपि निन्दागर्हादिना नन्दिषेणादिवत् शुद्धोऽपि स्यात्, तदपेक्षया स लघुकर्मा । येन तु तद्भङ्गभयादेव न गृहीतं स गुरुकर्मा, तद्भङ्गणलाभाभावादिति । अन्यथा तु “वयमङ्गे गुरुदोसो, धेवस्सवि पालणा गुणकरी उ । गुरुलाघवं च नेअं, धम्ममि अओ अ आगारा ॥ १ ॥ इत्यपि प्रत्याख्यानपञ्चाशके प्रोक्तमस्तीति ॥ ९६ ॥

तथा—दद्या पर्युषितौदनमेकीकृत्य करम्बको विहितः, स तृतीयदिने यतीना कल्पते नवेति प्रश्नोऽत्रोत्तरम्—दद्या तत्रेण च द्वितीयदिनोदनो द्वितीयदिने तृतीयदिने वा करम्बको विहितः स तृतीयदिने साधूनां विहर्तुं कल्पते इति परम्पराऽस्तीति ॥ ९७ ॥

तथा—उपधानवाहिना परिपूर्णप्रवेदनक्रियाकरणानन्तरं मुखवल्लिकाप्रतिलेखनं विनाऽऽलोचनं क्षामणकं च क्रियमाणं परमगुह्यं पार्श्वे दृष्टमस्ति, सम्प्रत्यपि वाहिना परिपूर्णप्रवेदनक्रियाकरणानन्तरं मुखवल्लिकाप्रतिलेखनं विनाऽपि आलोचनं क्षामणकं च क्रियमाणं परमगुह्यं पार्श्वे दृष्टमस्ति, सम्प्रत्यपि च कार्यमाणमस्तीति ॥ ९८ ॥

तथा—श्राद्धादिना जपमालादिकं साधुवन्नमस्कारद्वयेन त्रयेण वा स्याप्यते इति प्रश्नोऽत्रोत्तरम्—श्राद्धैर्जपमालादिकं नमस्कारत्रयेण स्याप्यते इत्यविच्छिन्नपरम्पराऽस्ति, परमुत्थापनमुभयोरप्येकैव नमस्कारेणेति बोध्यम् ॥ ९९ ॥

तथा—जीवानामिन्द्रत्वप्राप्तिः सङ्कदनेकशो वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—इन्द्रत्वं चकित्वं चानेकशः प्राप्नोति जीवो, यतः—“देर्विदचक्क-वट्तिणाई मुत्तुण तित्थयरभावं । अणगारभाविआवि अ, सेसा य अणंतसो पत्ता ॥ १ ॥’ एषा गाथा प्रत्याख्यानप्रकीर्णके ६१ देवेन्द्रत्वं चक्रवर्तित्वादिकं च मुक्त्वा शेषा भावा अनन्तशः प्राप्ताः, देवेन्द्रत्वं चक्रवर्तित्वं तु अनेकशः प्राप्यते, न त्वनन्तश इति भावार्थः ।

तथा—देविदचक्रवद्वित्तणाहं रज्जाहं उत्तमा भोगा । पत्ता अणंतलुत्तो, नयडहं तत्तिं गओ तेहिं ॥ १ ॥ ’ एषा मरणसमाधिप्रकीर्णके महाप्रत्याख्यान प्रकीर्णके च, अत्रापि अनन्तकृत्व इति अनन्तशब्दोऽनेकपर्यायो ज्ञेयः । एभिरक्षरैरिन्द्रत्वमनेकशः प्राप्यते भव्यैरिति ॥ १०० ॥

तथा—जीवप्रदेशादाकाशप्रदेशस्तुल्यो वाऽधिको वा हीनो वेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—जीवप्रदेशाकाशप्रदेशयोर्निर्विभागभारूपत्वेन तुल्यत्वमेवेति मन्तव्यम् ॥ १०१ ॥

तथा—कश्चित्सधुरन्तर्मुहूर्तमानाभ्या पष्ठसप्तगुणस्थानकाभ्यामुत्कर्षतो देशोनपूर्वकोटिं यावत्तिष्ठतीति तयोरन्तर्मुहूर्तं समानं न्यूनाधिकं वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—पष्ठगुणस्थानस्यान्तर्मुहूर्तं महत् सप्तमस्य च लघ्विति भगवतीसूत्रवृत्तीयशतके, तत्रैव मतान्तरेण द्वे अपि प्रत्येकं पूर्वकोटिमाने प्रोक्ते स्त इत्यपि ज्ञेयम् ॥ १०२ ॥

तथा—तीर्थकुञ्जननी चतुर्द्दश स्वप्नान् स्फुटान् पश्यति, चक्रवर्त्तिजननी त्वस्फुटानित्यक्षराणि सन्ति प्रयोषो वेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—चक्रवर्त्तिमाता अस्फुटान् पश्यति, तदुक्तं—“ चतुर्द्दशाप्यमून् स्वप्नान्, या पश्येत् किञ्चिदस्फुटान् । सा प्रभो प्रमदा सूते, नन्दनं चक्रवर्त्तिनम् ” ॥ १०३ ॥ इति वासुपूज्यचरित्रे ॥ १०३ ॥

तथा—स्फटिकादिपृथ्वी सचित्ताऽचित्ता वेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—स्फटिकादिपृथ्वी सचित्ता ‘फलहमणिरयणविधुम’ इति वचनात्, रत्नान्यचित्तानि भवन्ति, सुवण्णरयणमणिमुत्तियसंखासिलप्पवालरत्तरयणाणि अचित्तानि’ इत्यनुयोगद्वारसूत्रप्रान्तवचनादिति ॥ १०४ ॥



तथा—नव नारदाः कस्मिन् वारके सञ्जाता इति साक्षर प्रसाद्यमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—नव नारदाः वासुदेवसमानकालीनाः सम्भाव्यन्ते, तत्तच्चरि-  
त्रादिषु तद्धारके तेषां गमनागमनादिश्रवणादिति ॥ १०५ ॥

तथा—शान्तिनाथजनन्या द्विश्वतुर्दश स्वप्ना दृष्टा उत्तैकवारमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—शान्तिनाथजनन्या द्विश्वतुर्दश स्वप्ना दृष्टा, यदुक्तं  
शत्रुञ्जयमाहात्म्येऽष्टमपर्वणि “ द्विःस्वप्नदर्शनादर्हच्चकिञ्चनम्सुनिश्चया । रत्नगर्भेव सा गर्भे, बभार शुभदोहदा ॥ १६ ॥ ” इति, एवमन्य

त्रापीति ॥ १०६ ॥

तथा—तपःकरणांशक्तस्य श्राद्धस्य आलोचनाप्रायश्चित्तद्वयं क्व न्यापयते जिनालयेऽन्यत्र वा तत्कियद्दीयत इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—  
आलोचनाप्रायश्चित्तविषये द्रव्यमोचनं तु तपःसामर्थ्याऽभावे आलोचनाऽऽदातुः सम्पत्त्यनुसारेण दीयते न त्वियत्तान्वितं, तद्वन्नं चामारिजिनमन्दि-  
चित्कोशादिषु यथावसरमुपयुज्यते इति ॥ १०७ ॥

तथा—श्रावको वन्दनकानि ददत् मुखवस्त्रिकया गुरुपादं प्रमार्जयति तदाऽऽशातना लगति न वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—मुखवस्त्रिकया गुरुपाद-  
प्रमार्जने आशातना ज्ञाता नास्ति, प्रत्युत तत्प्रमार्जनं युज्यते, यथा शिष्या गुरुपादौ रजोहरेण प्रमार्जयन्ति तद्वदिदमपि ज्ञेयमिति ॥ १०८ ॥

तथा—छत्तिकोपधानवहनानन्तरं षण्मासमध्ये मालापरिधानं शुद्धयति किं वा षण्मासानन्तरमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—तद्वहनानन्तरं षण्मास-  
मध्ये एव मालापरिधापनं शुद्धयतीत्येकान्तो ज्ञातो नास्ति परं त्वरितं परिधाप्यते तदा वरमिति ॥ १०९ ॥

तथा—उपधानवाचना तपःपूर्त्तौ तपोदिने एव दीयतेऽन्यथा वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—पूर्णे तपस्युपधानवाचना दीयमानाऽस्ति, परं  
तपोदिने एव दीयते इत्येकान्तो ज्ञातो नास्तीति ॥ ११० ॥

तथा—क्षारककरीरादिकमातपे दत्त्वा पश्चात्तैलादिदाने सन्धानकं भवति न्वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—क्षारककरीरादिकं दिनत्रयमातपे दत्त्वा पश्चात्तै-  
लादिदापने न सन्धानकं जायत इत्थं श्रीपरमगुरुपार्श्वे श्रुतं नास्ति, एवंविधान्यक्षराण्यपि दृष्टानि न सन्ति, प्रत्युत क्षारककरीरादिकमध्ये स्थितं  
पानीयं दिनत्रयोपरि यदि न शुष्यति तदा सन्धानकं जायत इति ॥ १११ ॥

तथा—‘पच्छा इरिआवहियाए’ इति पाठानुसारेण श्राद्धानां सामायिककरणान्तरमीर्यापथिकीप्रतिक्रमणं दृश्यते, तस्यार्थः प्रसाद्य  
इति ‘प्रश्नोऽत्रोत्तरं—एतस्य विस्तरः सर्वोऽप्यावश्यकचूर्णिणमध्येऽस्त्यन्ये ग्रन्थास्तु सर्वे तदनुसारिणो वर्तन्ते, तथाऽऽवश्यकचूर्णिणमध्ये  
ईर्यापथिकी सामायिकसम्बद्धा कथिता नास्ति, यतो ‘जइ चेइयाइं अत्थि’ इत्यादिकस्तत्र पाठः कथितोऽस्ति, तस्माच्चैत्यगमनसम्बद्धाऽसौ  
ज्ञायते, अन्यस्तु सामायिककरणविधिर्यापथिकीप्रतिक्रमणमुखवस्त्रिकाप्रतिखेवनादिः सर्वः परम्परया ज्ञायते, तत ईर्यापथिकीं प्रतिक्रम्यैव  
सामायिकं कर्णीयमिति ॥ ११२ ॥

तथा—‘सरीरमुस्सेह अंगुलेण तह’ इति वचनादेकान्तेन किं शरीरमानमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—उत्सेधाङ्गुलेन शरीरमानमुक्तमस्ति, तथापि  
तत्प्रायिकं सम्भान्यते, तेन न काप्यनुपपत्तिः, यद्येकान्ततः शरीरमानमुत्सेधाङ्गुलेनैव स्यात्तदा प्रज्ञापनोपाङ्गदावुक्तो द्वादशयोजनप्रमाणशरीरोऽ-  
सालिकाजीवो महाविदेहादिचक्रिणां प्रमाणाङ्गुलेन द्वादशयोजनप्रमाणस्य स्कन्धावारस्य विनाशहेतुः कथं सम्भवति ? कथं वा द्रुतलक्षयोजन-  
वैक्रियरूपेण सौधर्षदेवलोके गतेन तेन चमरेन्द्रेणैकः पादः पद्मवरवेदिकायां मुक्तोऽपरश्च सुधर्मसमायामित्यादिकं भगवत्युक्तं  
सम्भवतीति बोध्यम् ॥ ११३ ॥

तथा—मुखपौतिकाप्रतिलेखनाया 'मुत्तथ तत्तदिह्री' त्यादि भावना कथितास्ति, सा स्थापनाचार्यप्रतिलेखनायां क्रियते न वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—प्रवचनसारोद्धारसूत्रवृत्तिप्रतिक्रमणहेतुगर्भप्रमुखग्रन्थादिषु मुखवस्त्रिकादेहयोः पञ्चाशत्प्रतिलेखनानां भावना कथिताऽस्ति न तु स्थापनाचार्यप्रतिलेखनायाः, तथापि मुखवस्त्रिकाप्रतिलेखनायास्त्राणि कारणानि कथितानि, यथा—जइवि पडिलेहणाए, हेऊ जियरक्खणं जिणाणा य । तहवि इमं मणमक्खडनिजंतणत्थं मुणी बिंति ॥ १ ॥ इति, तानि तु स्थापनाचार्योद्विप्रतिलेखनायामपि ज्ञायन्त इति बोध्यम् ॥ ११४ ॥

तथा—आढानामुपवासो तन्दुलधावनं रक्षानीरं च कल्पते नेवेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—तेषामुपवासे प्रासुकमुष्णोदकं चेति पानीयद्वयं कल्पते तन्दुलधावनं रक्षानालं च प्रासुकं भवति, परं आढानां न कल्पत इति ॥ ११५ ॥

तथा—कृष्णेनाऽष्टादशसहस्राधूनां वन्दनकानि दत्तानि किं लब्ध्याऽन्यथा वा ? यदि लब्ध्या तदा वीरासालविकस्यापि तथैवान्यथा वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—कृष्णेन सहस्रादिपरिवारसहितथावचापुत्रादीनामग्रेसराणां वन्दनकानि दत्तानि, तदन्यायिसमस्तपरिवारस्यापि तानि समागता-न्येव, ततो मनसा त्वष्टादशसहस्राधूनां दत्तान्येव, यदीत्थं न कथ्यते तदा वेला न प्राप्नोति, यतो दिनमानं तदा महन्नाभूत्तया कृष्णस्यापि वन्दनकदानलब्धिर्ज्ञाता नास्ति, तस्माद्वीरासालविकस्य वन्दनकदाने न काप्याशङ्केति ध्येयम् ॥ ११६ ॥

तथा—चैत्रमासवृद्धौ कल्याणकादि तपः प्रथमे द्वितीये वा मासि कार्यत इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—प्रथमचैत्राऽस्ति तद्वितीयचैत्रसितपक्षाभ्या चैत्रमाससम्बद्धं कल्याणकादितपः श्रीतातपादैरपि कार्यमाणं दृष्टमास्ति, तेन तथैव कार्यमन्यथा भाद्रपदवृद्धौ मासक्षणादितपांसि कुत्र क्रियन्तः इति ॥ ११७ ॥

तथा—‘ उच्चनीयमज्जिमकुलाइं अडइ ’ इति अत्र लुम्पाका नीचशब्देन सर्व्वाणि नीचकुलानि वदन्ति, तत्कथमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—  
नीचकुलानि—दरिद्रकुलानि उच्चकुलानि—ऋद्धिमत्कुलानीति श्रीदशवैकालिकट्टच्यादिषु व्याख्यातमस्तीत्यतो नीचशब्देनाऽनृद्धिमत्कुलानि ज्ञेयानि  
न तु गर्हणीयकुलानि, तथा च दशवैकालिकेऽपि ‘ पडिकुट्टकुलं न पविसे ’ इत्यादि सूपपन्नमिति ॥ ११८ ॥

तथा—समुदानीभिः किमुच्यते इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—उच्चावचं धनोपेक्षया उत्तमाधमं कुलं चरेत् सा समुदानीभिः उच्यते इति श्री-  
दशवैकालिकसूत्रपिण्डैषणाध्ययनवृत्त्यादिपूक्तमस्तीति ॥ ११९ ॥

तथा—पौषधिकेन जिनालये गत्वा प्रहरे सार्द्धप्रहरे वा देवा वन्दितास्तस्य कालवेलायां पुनर्देववन्दनं युज्यते न वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—  
येनाऽकाले देवा वन्दितास्तस्य कालवेलायां पुनर्देववन्दनं युज्यते, यतः कालवेलाकार्यं कालवेलायामेव कर्त्तव्यं, परम्पराऽप्येवमेव दृश्यत इति ॥ १२० ॥

### अथ पण्डितदेवविजयगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि ।

यथा—उपस्थापनायाः प्राक् दशवैकालिकयोगोत्तरं सप्तमण्डल्या आचम्यानि कारयितुं कल्पन्ते न वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—निर्व्यूहेऽपि दशवैकां-  
लिकयोगे विनोपस्थापनां सप्तमण्डल्या आचम्यानि कारयितुं न कल्पन्ते, योगविधावप्येतदुक्तमस्तीति ॥ १२१ ॥

तथा—चतुरशीतिलक्षपूर्व्यायुषां श्रीऋषभदेवेन सार्द्धं मोक्षं गतानां भरतस्याष्टनवतिभ्रातृणामायुरपवर्त्तनं कथमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—  
बाहुवलेरिव यदि तेपामायुश्चतुरशीतिलक्षपूर्व्वप्रमाणं कापि ग्रन्थे प्रोक्तं स्यात् तदा तदपवर्त्तनस्य हरिवंशकुलोत्पादयुगलिकायुरपवर्त्तनादिवदाश्रया-  
न्तर्भावान्न दोष इति ॥ १२२ ॥

तथा—यतिः श्राद्धगृहे गत्वोपविश्य भक्तादिकं गृह्णाति न वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यतिः श्राद्धगृहे कारणं विनोपविश्य भक्तादिकं न

गृह्णाति, “ तिष्ठमण्यरागरस, निसिज्जा तस्स कप्पइ । जराए अभिभूअस्स, गिलाणस्स तवस्सिणो ॥ १ ॥ ” इति दशवैकालिकपष्टाध्ययने प्रतिपादितत्वादिति ॥ १२२ ॥

तथा—पौषधदिने श्राद्धः प्रतिक्रमणं कृत्वा देवान् वन्दित्वा पश्चात् पौषधं करोति तथा कृतः पौषधः शुद्धयति न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं-पौषधं कालोलयां कृत्वा प्रतिक्रमणं च कृत्वा देवान् वन्दत इति विधिः, कालातिक्रमादिकारणवशात् पूर्वं देवान् वन्दित्वा पश्चात्पौषधं गृह्णातीति ॥ १२४ ॥

तथा—प्रवालाद्यक्षमालाग्रे प्रतिक्रान्तिः शुद्धयति न वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सूत्रीयनिश्चलमणिकाक्षमालाग्रेऽस्यापनपुरःसरक्रियाकरणविधिर्दृश्यते परम्परयेति ॥ १२५ ॥

तथा—साधूनां सप्त चैत्यवन्दनानि प्रोक्तानि, तेषां मध्ये प्रतिक्रमणयोर्द्वं चैत्यवन्दने कुत्र स्थाने क्रियते इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—प्राभातिकप्रतिक्रमणे ‘ इच्छामो अणुसार्द्ध ’ इति कथनानन्तरं यद्देववन्दनं क्रियते, तत्रैकं चैत्यवन्दनं, सन्ध्याप्रतिक्रमणे तु दैवसिकप्रतिक्रमणस्थापनाद्वर्गां यद्देववन्दनं क्रियते तच्चैत्यवन्दनं द्वितीयमित्यक्षराणि सङ्गाचारवृत्तौ सन्तीति ॥ १२६ ॥

तथा—एकोनविंशदधिकद्विशतपष्ठोच्चारः कृतोऽस्ति, परं शक्त्यभावे एकान्तरोपवासैः कर्तुं शुद्धयति न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—एकोनविंशदधिकद्विशतपष्टा उच्चरितास्तदा पष्टा एव कर्तुं शुद्ध्यन्ति ॥ १२७ ॥

तथा—आश्विनचैत्राऽस्वाध्यायमध्ये उपवासः क्रियते स विंशतिस्थानकमध्ये प्रक्षेप्तुं शुद्धयति न वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—आश्विनचैत्राऽस्वाध्यायमध्ये सप्तम्यादिदिनत्रयकृतोपवासो विंशतिस्थानकमध्ये प्रक्षेप्तुं न शुद्ध्यतीति ॥ १२८ ॥

तथा—श्रीवीरजन्मनि गुलपर्पटिकादिभोजनं लात्वाऽऽगच्छन्ति तदुपरि यतीनां वासक्षेपः कृतः शुद्धयति नवा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—  
श्रीवीरजन्मनि गुलपर्पटिकादिभोज्योपरि सुविहितानां वासक्षेपपरम्परा नास्तीति ॥ १३० ॥

### अथ पण्डितश्रीविनयकुशलगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च—

यथा—‘चरगपरिन्वाय बंभलगो जा’ इति वचनानुसारेण द्वादशे स्वर्गे त्रैवेयके च मिथ्यात्विनः केऽवतरन्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—द्वादश-  
स्वर्गे गोशालकमतानुसारिणः आजीविका मिथ्यादृशो व्रजन्ति, त्रैवेयके तु यतिलिङ्गधारिनिह्मवादयो मिथ्यादृष्टयो व्रजन्तीत्यौपपातिकादौ  
प्रोक्तमस्तीति ॥ १३१ ॥

तथा—तामलिनाऽन्ते साधवो दृष्टाः सम्यक्त्वं च प्राप्तमिति प्रघोषः क्व शब्देऽस्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अयं प्रघोषः श्री जिनेश्वरसू-  
क्तकथानककोशे वर्तते ॥ १३२ ॥

तथा—इन्द्रासर्वेऽपि सर्वदा सम्यग्दृष्टय एव मिथ्यादृष्टयोऽपि वा कदाचिद्भवन्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सर्वेऽपीन्द्रास्सर्वदा सम्यग्दृष्टय  
एव सम्भाव्यन्ते, न तु मिथ्यादृष्टयो, यतो जम्बूद्वीपप्रज्ञस्यादौ निर्वर्णकल्याणकादौ ‘निराणदे अमुपुणनयणे’ इत्यादिभक्तिप्राग्भारसूत्रकानि  
तेषां विशेषणान्युपलभ्यन्ते ॥ १३३ ॥

तथा—छक्रियाख्योपधाने उच्चरितपञ्चमीतपसां षष्ठिने पञ्चमी समेति तदा पञ्चम्युपवासं कृत्वा सप्तमदिने आचागलं करोति किं वा  
षष्ठं करोतीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सप्तमदिने उपवासस्यावश्यकरणीयत्वेन षष्ठं करोति, शक्यमात्रे तु तदनुसारेणैवोपधानप्रवेशं करोतीति ॥ १३४ ॥

तथा—येषां नक्षत्राणां द्वित्र्यादितारकास्सन्ति तेषु प्रत्येकमेकस्मिन्ना विमानवाहकास्सन्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—केषुविन्नक्षत्रेषु यद्यपि ताराबाहुल्यं प्रोक्तमस्ति, तथापि तत्र मौलं यन्नक्षत्रविमानं तत्र चतुस्सहस्रमिता विमानवाहकाः, तारारूपविमानेषु तु प्रत्येकं द्विसहस्रमिता विमानवाहका भवन्तीति सम्भाव्यते सङ्ग्रहणीष्टन्याद्यनुसारेणेति ॥ १३५ ॥

तथा—ध्यानानि रूपीण्यरूपीणि वेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—ध्यानान्यरूपीणि, आत्मपरिणामरूपत्वात्तेषामिति ॥ १३६ ॥

तथा—सम्यक्त्वधारिणो देवा एकस्मिन् समये कति च्यवन्ते इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सम्यग्दृष्टिर्देवा उत्कर्षत एकस्मिन् समये सङ्ख्याता एव च्यवमानास्सम्भाव्यन्ते आगमानुसारेण, यतस्तत्र सम्यग्दृष्टा देवानां मनुष्येभ्योत्पादोऽभ्यधायि, तेषां च सङ्ख्यातत्वादिति ॥ १३७ ॥

तथा—प्रथमदिने एक उपवासः कृतो द्वितीयदिने तु द्वितीय इत्थं कृतं षष्ठतप आलोचनामध्ये समायाति न वा ? तथा प्रहरानन्तरं प्रत्याख्यात उपवास आलोचनामध्ये आयाति न वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यद्यपि संलग्नतया प्रत्याख्यात षष्ठादितपस्तथा कालेवैलप्रत्याख्यातमुपवासतपश्च बहुफलदायि भवति, तथापि विशकलिततयोच्चारित षष्ठादितपः कालातिक्रमेणोच्चारितमुपवासतपश्च सर्वथाऽल्लोचनामध्ये नायातीत्येकान्तो ज्ञातो नास्तीति ॥ १३८ ॥

तथा—सौधर्मे किल्बिषिकाणां विमानानि द्वान्निशल्लक्षमध्येऽन्यानि वा ? तेषां देवानां च सम्यक्त्वं भवति न वा ? तथा तत्र प्रतिमास्सन्ति न वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सौधर्मे द्वान्निशल्लक्षविमानानि देवलोकमध्ये, किल्बिषिकविमानानि तु स्वर्लोकादधः सङ्ग्रहिण्यादौ प्रतिपादितानि सन्ति, तथा तेषां सम्यक्त्वप्रतिमापूजाक्षराणि शास्त्रे दृष्टानि न स्मरन्तीति ॥ १३९ ॥

तथा—लवणसमुद्रे वृद्धकलशानां लघुकलशानां च मुखानि सर्वथा पानीयस्याधो वर्तन्ते किंवा सहस्रयोजनानामुपरीति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—  
कलशानां मुखानि पानीयस्याधो भूमिसम्बद्धानि वर्तन्त इति प्रवचनसारोद्धारसूत्रवृत्तिक्षेत्रसमासानुसारेण ज्ञायत इति ॥ १४० ॥

तथा—मेरोर्मखलास्वरूपं केनाकारेण विद्यत इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—  
अनेन स्थापिताकारेण मेरोर्मध्ये, नतु बहिस्तान्मेखला वर्तत  
इति ॥ १४१ ॥

तथा—प्रतिमाधरो यतिर्यदि परीषहादिना न क्षुम्यति तदा अवधिज्ञानादि प्राप्नोति, यदि च क्षुम्यति तद्वैष्णवोऽस्तीति प्राप्नुयात्,  
परं स कथं क्षुम्यति, यतः स्वयं पूर्वधरस्ततः पूर्वं दत्तोपयोगो भविष्यति, पूर्वधराज्ञया च प्रतिमा प्रतिपन्नोऽस्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यथा  
प्रतिमाप्रतिपत्तुः स्वयं पूर्वधरत्वं तथा दातुरपि, तथापि तयोच्छ्रयस्थत्वेन तस्मिन्समये श्रुतोपयोगाभावोऽपि भवति, तेन स कथं क्षुम्यति इत्याशा-  
ङ्का निरवकाशेति ॥ १४२ ॥

तथा—त्रिषष्ट्यधिकशतत्रयपाखण्डिकास्समवसरणाद्ब्रह्मिस्तिष्ठन्ति किंवा मध्ये इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—पाखण्डिकाः प्रायो बहिरेव भवन्ति,  
कश्चित्तु कदाचिन्मध्येऽपि समेति तदा कोऽत्र प्रश्नावकाश इति ॥ १४३ ॥

तथा—शीतोदायास्समुद्रे प्रवेशः कथं जायते अधोग्रामगामित्वेनेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—शीतोदायाः प्रवेशस्तु जयन्तद्वाराऽधो भूत्वा लवणा-  
ब्धावनेकयोजनसहस्राणि भूम्यन्तर्गत्वा भवतीति लघुमुहूर्त्क्षेत्रसमासविचारसप्ततिवृत्त्यादावस्तीति ॥ १४४ ॥

तथा—‘आयरियउक्ज्झाए’ इत्यादिगाथात्रयं केचन न पठन्ति, वदन्ति च योगशास्त्रवृत्तौ ‘काऊण वंदणं तो’ इत्यत्र श्राद्धानामेव  
प्रोक्तमस्ति न यतीनामिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—योगशास्त्रवृत्तिर्जीर्णपुस्तकपट्कं विछेदितं, तत्र सर्वत्रापि ‘काऊण वंदणं तो’ इति गाथायाः



भावदेवसुरिकृत-

पाठः सढो इति पदेनैव संयुक्तो दृश्यते, तत्र अशठा इति व्याख्यानं साधुश्राद्धयोः समानमेवावश्यकर्तव्यं दृश्यते, तथापि भावदेवसुरिकृत-  
प्रश्लोऽत्रोत्तरं—जघन्यतस्सर्वसङ्कांतिषु घटाद्व्यात्प्राप्त्य

सामाचार्या अवचूर्णवेत्ताथात्रयं केषांचिन्मते साधवो न पठन्तीति प्रोक्तमस्ति, तन्मतान्तरं ॥ १४५ ॥  
तथा—मिलन्ती तिथिः कियद्घटीप्रमाणा शुद्ध्यति सर्वसङ्कान्तिष्विति, प्रश्लोऽत्रोत्तरं—

मिलन्ती तिथिः शुद्ध्यति, न तु न्यूनैति परम्परास्ति ॥ १४६ ॥  
तथा—ऐरावणाद्याः सर्वदा गजतुरावृषभरूपिणः १ किं वा सूररूपिणः २ किं वा वाहनवसरे गजादिरूपिणः ३ तेषां योषितोऽपि किं-

रूपिण्यः इति प्रश्लोऽत्रोत्तरं—ऐरावणाद्या वाहनकाले गजादिरूपा अन्यदा तु सूररूपिणः, तेषां योषितस्तु सदा सूररूपा इति ज्ञातमस्ति ॥ १४७ ॥  
तथा—श्रीपार्श्वनाथप्रसादात्सर्वजीवो नमस्कारं श्रुत्वा मौलो धरणेन्द्रो ज्ञातो नास्तीति ॥ १४८ ॥

इति प्रश्लोऽत्रोत्तरं—सर्वत्राक्षरानुसारेण मौलो धरणेन्द्रो ज्ञातो नास्तीति ॥ १४८ ॥  
तथा—श्रीमल्लिजिनस्य द्वादशपर्वदामवस्थितिर्देशनादौ सर्वजिनवत् किंवा भिन्नत्वमिति प्रश्लोऽत्रोत्तरं—देशनकाले द्वादशपर्वदामवस्थिति-

इति प्रश्लोऽत्रोत्तरं—सर्वजिनस्य द्वादशपर्वदामवस्थितिर्देशनादौ सर्वजिनवत् किंवा भिन्नत्वमिति प्रश्लोऽत्रोत्तरं—देशनकाले द्वादशपर्वदामवस्थिति-  
तथा—श्रीमल्लिजिनस्य द्वादशपर्वदामवस्थितिर्देशनादौ सर्वजिनवत् किंवा भिन्नत्वमिति प्रश्लोऽत्रोत्तरं—देशनकाले द्वादशपर्वदामवस्थिति-

तथा—श्रीमल्लिजिनस्य द्वादशपर्वदामवस्थितिर्देशनादौ सर्वजिनवत् किंवा भिन्नत्वमिति प्रश्लोऽत्रोत्तरं—देशनकाले द्वादशपर्वदामवस्थिति-  
तथा—श्रीमल्लिजिनस्य द्वादशपर्वदामवस्थितिर्देशनादौ सर्वजिनवत् किंवा भिन्नत्वमिति प्रश्लोऽत्रोत्तरं—देशनकाले द्वादशपर्वदामवस्थिति-

तथा—श्रीमल्लिजिनस्य द्वादशपर्वदामवस्थितिर्देशनादौ सर्वजिनवत् किंवा भिन्नत्वमिति प्रश्लोऽत्रोत्तरं—देशनकाले द्वादशपर्वदामवस्थिति-  
तथा—श्रीमल्लिजिनस्य द्वादशपर्वदामवस्थितिर्देशनादौ सर्वजिनवत् किंवा भिन्नत्वमिति प्रश्लोऽत्रोत्तरं—देशनकाले द्वादशपर्वदामवस्थिति-

तथा—श्रीमल्लिजिनस्य द्वादशपर्वदामवस्थितिर्देशनादौ सर्वजिनवत् किंवा भिन्नत्वमिति प्रश्लोऽत्रोत्तरं—देशनकाले द्वादशपर्वदामवस्थिति-  
तथा—श्रीमल्लिजिनस्य द्वादशपर्वदामवस्थितिर्देशनादौ सर्वजिनवत् किंवा भिन्नत्वमिति प्रश्लोऽत्रोत्तरं—देशनकाले द्वादशपर्वदामवस्थिति-

तथा—देवकमासि कल्याणकानि पूर्वे पाश्चात्ये वा मासि क्रियन्ते ? केचन परपाक्षिका वदन्ति— प्रथमश्रावणकृष्णपक्षे द्वितीयश्रावण-  
शुक्लपक्षे च कल्याणकतपो विधीयते, तत्सङ्गतं वितथं वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—देवकमासापेक्षया वृद्धिप्राप्तं मासं विमुच्य कल्याणकतपःकरणं  
शुक्तिमदिति ॥ १५१ ॥

तथा—यथाऽऽहारे हस्तशतादूर्ध्वमानतमभ्याहृतं भवति, वज्रादिषु तथैवान्यथा वेति : प्रश्नोऽत्रोत्तरं—‘ आइन्नं तुक्कोसं, हत्थसयातो घरे  
उ तिन्नि तहिं ’ इत्यादिपिण्डविशुद्ध्यादिगाथानुसारेण वल्लैषणायामपि ज्ञेयं, य एवाहारदोषास्त एव वस्त्रदोषा इति ॥ १५२ ॥

तथा—पञ्चाविआ सुहत्थी, अज्जाए जक्खविद्वनमाए । पञ्चावणासिसेहो, तओ परं साहुणी वग्गे ॥ १ ॥ आलोअणवयदाण’मित्यादिगाथाः  
कुत्र ग्रन्थे सन्ति, छूटकपत्रे तु दृश्यन्ते, समीचीना असमीचीना वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—‘स्वामिना स्थूलभद्रेण, विष्णौ द्वावपि दीक्षितौ । आर्यम-  
हागिरिश्चार्यसुहंस्ती चाभिधानतः ॥ १ ॥ तौ हि यक्षार्यया बाल्यादपि मात्रेव पालितौ । इत्यायोपपदौ जातौ, महागिरिसुहस्तिनौ ॥ २ ॥ ’ इति  
परिशिष्टपर्वण्युक्तमस्ति, ‘ पञ्चाविओ सुहत्थी ’ इत्यादिगाथास्त्वास्पदं नास्तीति ॥ १५३ ॥

तथा—श्रीवीरजन्मपत्री छूटकपत्रे चैत्रशुद्धित्रयोदशी भौमे उत्तराफाल्गुनीनक्षत्रे सिद्धियोगे रात्रिघटी १५ मकरलक्ष्ये सिद्धार्थराजगृहे पुत्रो  
जातः स्कन्दपुराणादुद्धृता इत्येवं लिखिता दृश्यते, परं वीरजन्मपत्रीयमेवान्यथा वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—वीरजन्मपत्री तु स्कन्दपुराणान्ना छूटकपत्रे  
लिखिता दृश्यते न तु ग्रन्थे दृष्टाऽस्तीति ॥ १५४ ॥

तथा—२५६ आवलिकायुःप्रमाणं सूक्ष्मनादरनिगोदयोरुभयोः किं वाऽऽद्यस्यैवेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सूक्ष्मनिगोदस्य क्षुल्लकभवग्रहणरूपमेवा-  
न्तर्मुहूर्त्तमायुर्भवति, नादरनिगोदस्य तु क्षुल्लकभवग्रहणरूपं किञ्चिन्न्यूनान्तर्मुहूर्त्तरूपं च भवति, सामान्येन तु उभयोरप्यन्तर्मुहूर्त्तमुच्यते इति ॥ १५५ ॥

तथा—श्रेणिकटृष्णयोर्मोसाशनमासीन्न वेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—शुद्धसम्यक्त्वतां प्रायो मासाद्यभक्ष्यभक्षणं न युक्तिमत्, तथापि तथावि-  
धाक्षरोपलम्भं विना सम्यग्दृष्टयो मासाद्यभक्ष्य नैव भक्षयन्तीति नियमस्तु वक्तुं न शक्यते ॥ १५६ ॥

तथा—कूणिकरावणयोस्तोर्थकरत्वं कुत्र ग्रन्थे प्रोक्तमस्ति ? कस्मिन् क्षेत्रे कतिभैरिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—रावणाख्यभवादारम्य रावणजी-  
वस्य चतुर्दशे भवे तीर्थकरत्वं त्रिपट्टीयपद्मचरित्रे प्रोक्तमस्ति, क्षेत्रव्यक्तित्तु न दृश्यते, कूणिकस्य तु तीर्थङ्करत्वप्राप्त्यक्षराणि कुत्रापि दृष्टानि न  
स्मरन्तीति ॥ १५७ ॥

तथा—चैत्रमासीयकायोत्सर्गविस्मृतौ यत् स्वयं योगोद्धहनं न कल्पते तथान्येषा योगक्रियाप्रवेदनादिक कारयितुं शुद्धयति न वा ? तथा  
कालग्रहणं दण्डिकाधरणं दिगलोकश्च शुद्धयति न वेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—चैत्रसम्बन्धिकायोत्सर्गकरणे तस्य योगसम्बन्धिनी क्रिया स्वयं कर्तुं परेषां  
कारयितुं च न कल्पत इति ॥ १५८ ॥

तथा—चैत्राश्विनमासचतुर्मासकद्विकसत्कास्वाध्यायः पञ्चमीचतुर्दशीयामद्वयानन्तरं यल्लगति तद्यामद्वय तिथिमोगापेक्षया किंवा औद-  
यिकापेक्षयेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—चैत्राश्विनमासयोः पञ्चमीतिथेरर्द्धास्वाध्यायो लगति, न तु सूर्योदयात्, एवं चतुर्मासकस्यास्वाध्यायोऽपि चतुर्दशीतिथे-

रर्द्धाह्नगतीति वृद्धसम्प्रदाय इति ॥ १५९ ॥

तथा—श्रीऋषभदेवस्य पूर्वपञ्चमे ललिताङ्गदेवभवे स्वयम्प्रभानाम्नी या देव्यासीत् सैव द्युत्वा निर्नामिका समुत्पन्ना किं वाऽन्या कान्चिदिति ?  
प्रश्नोऽत्रोत्तरं—ऋषभदेवस्य पाश्चात्यपञ्चमभवे ललिताङ्गदेवस्य स्वयम्प्रभादेवीच्यवनादनु अन्यो निर्नामिकाजीवः स्वयम्प्रभास्थाने समुत्पन्न इत्याव-  
श्यकमलयगिरित्त्वाद्यनुसारेण ज्ञायते, तेन न कोऽप्यत्र शङ्कावकाश इति ॥ १६० ॥

तथा—कल्पसूत्रे द्विचत्वारिंशत्स्वप्नास्त्रिंशन्महास्वप्ना द्वासप्ततिसम्बन्धे स्वप्ना इत्यादि यदुक्तं तेषां नामानि पृथक् पृथक् क्वापि ग्रन्थे सन्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—द्वासप्ततिनामानि ग्रन्थे दृष्टानि न स्मरन्तीति ॥ १६१ ॥

तथा—श्रीवीरजिनजन्मोत्सवावसरे मेराविन्द्रस्य सन्देहो यः समुत्पन्नः स सौधमेन्द्रस्य ततः कथं प्रथममच्युतेन्द्रः स्नपयतीति युक्तिमदिति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—श्रीवीरजन्माभिषेकावसरे सौधमेन्द्रस्य संशयसमुत्पन्नः, तदनु सन्देहापनोदात् सौधमेन्द्राज्ञया अच्युतेन्द्रः प्रथमं स्नपयतीति नायुक्तिमत्, श्रीवीरचरित्रादौ तथैव दर्शनादिति ॥ १६२ ॥

तथा—जिनकल्पिकः कथं मोक्षं न याति ? कर्मणो बाहुल्यादन्यद्वा किमपि कारणं ? तस्य क्षपकश्रेण्युपशमश्रेण्योर्मध्ये कापि भवति नवेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—जिनकल्पिकस्तास्मिन् भवे मोक्षं न याति, तथाकल्पत्वात्, किंचोपशमश्रेणिं तु कश्चित्प्रतिपद्यते, न तु क्षपकश्रेणि, पञ्चवस्तुके तथाभिधानादिति ॥ १६३ ॥

तथा—उपधानोत्तरणदिनस्य प्राग्दिने योगोत्तरणदिनवत्तप एव कृतं विलोक्यते एकाशनपारणकेऽप्युत्तरितुं कल्पते नवेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—एकाशनकादिपारणकेऽप्युत्तारयितुं कल्पते, न तु योगादिवत्तपोनियम इति ॥ १६४ ॥

तथा—प्रतिमाधरश्राद्धयः पर्वदिवसपौषधान् रात्रिकायोत्सर्गाश्चास्वाध्यायसम्भवे कथं कुर्वन्तीति रीतिः प्रसाद्येति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अस्वाध्यायसम्भवे प्रतिमाधरश्राद्धयो मौनेन कायोत्सर्गान् पौषधादिकं च कुर्वन्तीति वृद्धवादः ॥ १६५ ॥

तथा—जीवाभिगमादिषु नपुंसकस्य यत् चरणमुक्तं तत्सम्यक्त्वं देशसंयमं सर्वसंयमं वा, पञ्चदश भेदाः सिद्धानां प्रोक्तास्तत्र मूलनपुंसकत्वे कृत्रिमत्वे वा मोक्षः ? तत्साक्षरं प्रसाद्यमिति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—जातिनपुंसकस्य सम्यक्त्वं देशविरतिं च यावत्प्रतिपत्तिर्भवति, न तु परतः, तेन मोक्षावाप्तिरपि कृत्रिमनपुंसकानामिति ॥ १६६ ॥

तथा—कालमानं किं विकृतिपक्वान्नस्यैव उत सर्वपक्वान्नस्यैव प्रश्नोऽत्रोत्तरं—विकृतिपक्वान्नस्यैव च सर्वपक्वान्नस्य कालमानं समान-  
मिति वृद्धाः ॥ १६७ ॥

तथा—योगे कल्पाकल्पविभागः तृतीयभाष्यावचूणौ लहचुई प्रारभ्य तत्रं यावद्विखितस्तत्र तत्रं फूलवधारितिमन्यद्वा, चेत्फूलवधारितं  
तथा—योगे कल्पाकल्पविभागः तृतीयभाष्यावचूणौ लहचुई प्रारभ्य तत्रं यावद्विखितस्तत्र तत्रं फूलवधारितिमन्यद्वा, चेत्फूलवधारितं  
तर्हि अपुष्पवधारितं कल्पत एव, तदेव अपुष्पवधारितं पूरणपटीरड्यादिकं कल्पते नवा १ तथा लहिगटुं पलेवधारकवडी प्रमुखं भगवतीयोगे चम-  
रोद्देशकं यावदाचारङ्गसप्तसप्तिकोत्तराध्ययनं यावच्च न कल्पते, तर्हि तदन्येषु स्थानेषु योगे तानि घोलवटकादीनि कल्पन्ते नवा १ तथा आचा-  
मान्वावितकटकाणकटकाणिका योगमध्ये कल्पन्ते नवेति १ प्रश्नोऽत्रोत्तरं—ग्रन्थोक्ताक्षरानुसारेण फूलवधारितं तत्रं पटीरड्यादिकं च योगेषु न  
कल्पते, अन्यतु कल्पते, परं साम्प्रतं वृद्धवादानुसारेण तत्रं कल्पते, पूरणपटीरड्यादिकं त्वचामान्ययोगमेव योगेषु कल्पते, तथा लहिगटुं पलेव-  
इत्यादिकं भगवतीचमरोद्देशकानुज्ञादिस्थानत्रय विनाऽन्यसर्वयोगेषु कल्पते वगारकवडीप्रमुखं तु साम्प्रतीनवृद्धवादानुसारेणचामान्ययोगमेव

कल्पते नवेति ॥ १६८ ॥  
तथा—कटकाणकादिकमप्याचामान्ययोगं कल्पत इति ॥ १६८ ॥  
तथा—गृहचैत्ये यदि केनचिद्वर्ता भूषणानि कारितानि कालान्तरे च स गृहस्थो गृहकार्ये आपतिते तानि व्यापारयति तदा कल्पन्ते नवेति  
प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यदि देवार्थमेव कारितानि तदा न कल्पन्ते, यदा तु साधारण्येन कारितानि तदा कल्पन्ते, अत्राभिप्राय एव प्रमाणमिति ॥ १६९ ॥  
तथा—पौषधवता श्राद्धानां कर्पूरादिभिः कल्पादिपुस्तकपूजा पौषधवतीनां श्राद्धीनां च गृहलिकान्यूछनकादिकरण शुद्धयति नवेति  
प्रश्नोऽत्रोत्तरं—पौषधवता श्राद्धानां कर्पूरादिभिः कल्पादिपुस्तकपूजा न घटते, द्रव्यस्तवरूपत्वाद्, गुल्फारम्प्येणापि तथा दृष्टत्वाच्च, एवं पौषधवतीनां

प्रश्नोऽत्रोत्तरं—पौषधवता श्राद्धानां कर्पूरादिभिः कल्पादिपुस्तकपूजा न घटते, द्रव्यस्तवरूपत्वाद्, गुल्फारम्प्येणापि तथा दृष्टत्वाच्च, एवं पौषधवतीनां  
श्राद्धीनां गृहलिकान्यूछनकाद्याश्रित्यापि ज्ञेयमिति ॥ १७० ॥

तथा—श्रीज्ञातासूत्रेऽष्टमाध्ययने अर्दानशत्रुराज्ञो ( जस्य ) मल्लीस्वरूपावगमाधिकारे 'तएणं से मल्लिद्वे कुमारे तस्म चित्तरस्स सण्डा-  
सगं छिन्दावेती'त्यत्र सन्दंशशब्देन किमुच्यते ? तस्य किं छेदितं ? वृत्तौ व्याख्यातं न दृश्यते, आवश्यककृत्ति-उपदेशमाला-दोषघट्टीष्टि-  
श्राद्धविधिप्रमुखग्रन्थेषु मृगावतीसम्बन्धे सन्दंशक्र एव लिखितोऽस्ति, परं सन्दंशकस्यैवार्थः कः ? तेन तस्यार्थः साक्षरं प्रसाद्य इति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं  
सन्दंशकशब्देनात्राङ्गुष्ठप्रदेशिन्योरग्रमुच्यते, यतो विशेषावश्यकवृत्तौ भित्रकरसम्बन्धाधिकारे—निरपराधस्यैकचित्रकरस्याङ्गुष्ठप्रदेशिन्योरग्रं छेदितं  
शतानीकनरपतिनेत्युक्तमस्तीति ॥ १७१ ॥

तथा—तत्रैव मह्यध्ययने ' जाव वीसतिमाओ पुरिसजुगाओ जुगंतकरभूमी, दुवासपरिआए अंतमकासी ' त्यत्र मल्लिजिनादारभ्य तत्तीर्थे  
विंशतिपुरुषं यावत्साधवः सिद्धास्ततः परं सिद्धिगमनव्यवच्छेदोऽभूदिति वृत्तावुक्तं, तर्हि किं पट्टप्रतिष्ठितानां साधूनां केवलज्ञानाभावः ? किंवा सर्वेषां  
साधूनां केवलव्युच्छिन्तिः ? यदा च सर्वेषां मनुष्याणां केवलज्ञानव्यवच्छेदस्तर्हि प्रज्ञापनादृत्यादौ प्रथमपदे पञ्चदशभेदसिद्धगतातीर्थसिद्धाधिकारे  
सप्तस्वन्तरेषु तीर्थव्यवच्छेदेषु सिद्धिगमनं कथमुक्तं ? तीर्थव्युच्छिन्नौ यदा मोक्षमार्गस्तदा तीर्थे सति सिद्धिगमनं कथं न स्यात् ? यदि चात्र  
पट्टप्रतिष्ठिता एव चिन्त्यन्ते तदा 'दुवासपरिआए अन्तमकासी'त्यत्र साधव एव सिद्धाः, एवमशेषतीर्थेङ्कराणामपि सति शासने केवलव्यवच्छेदो भवति  
नवेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—श्रीमल्लितीर्थे विंशतितमपट्टधरादनु सर्वसाध्वादिसिद्धिगमनव्युच्छेदो ज्ञेयो, नैवं सति सुविध्यादीनां तीर्थकृतमन्तरेषु तीर्थन्यु-  
च्छेदे कथं सिद्धिगमनमुक्तमित्याशङ्कनीयं, तत्र तीर्थन्युच्छेदेषु मुक्तिमार्गस्यान्युच्छिन्नत्वात् जातिस्मरणादिना तत्प्राप्तेर्नन्दीष्टस्यादावुक्तत्वाच्च, यत्र च  
तीर्थे सत्यपि मुक्तिगमनव्युच्छेदस्तत्र संहरणतोऽसाधारण्येन ज्ञेयं, तथा सर्वतीर्थकृतां शासने सति केवलव्युच्छेदो भवति नवा, इत्यत्र नैकान्त इति ॥ १७२ ॥  
तथा—येन श्राद्धेन सचित्तपरिमाणं कृतं भवति तस्य च नीलवनस्पत्याः संख्या वर्त्तते चिर्मटकजातिरित्येव प्रत्याख्यातमस्ति, तेन च

विर्मट सचित्तं सत् भक्षितं तज्जातीयमन्यत्फल किञ्चिद्भक्षितं च तदा तस्य सचित्तमेकमेव लयः ? किंवा सचित्तद्विकं जातं ? यथा चाम्भसि निपानान्तरे पीतेऽपि सचित्तमेकमेव गणयन्ति तथाऽत्र न्यायः ? किं वा पृथगण्यते सचित्तमिति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—प्रत्याख्यानकर्तुर्विवक्षैव प्रमाणमिति ॥ १७३ ॥

तथा—सगरचक्रिणः पुत्रैर्यदाऽष्टापदप्रासादरक्षार्थं खातिका खाता जान्हवी वानीता तदा नागकुमाराणां भवनेषु मृत्तिका पानीयं च पतितं, अत्र के नागकुमारा अवसीर्यते ? नागकुमाराणां भवनानि भवनपतित्वेन रत्नप्रभायाः प्रमाणाङ्गुलनिष्पन्नसहस्रयोजनानामधो वर्तन्ते, एतावती भूमिः कथं खातुं शक्यते, दण्डरत्नप्रभावात्कदाचित्तदपि भवति, परं सहस्रयोजनाधश्च नरक्षेत्रप्रमाणो नरलोकस्याध एव सीमन्ताभिध इन्द्रकनरकावासा वर्तन्ते, तेन तत्र नागकुमाराणां भवनानामसम्भवोऽतः के ते नागकुमाराः ? ये श्रीमदुत्तराध्ययनवृत्तौ नागकुमारास्तदधिपो ज्वलनप्रमश्च उत्तरीः तद्विशेषः शास्त्रादौ विलोक्य प्रसाद्य इति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—प्रज्ञापनाद्यनुसारेण 'चउत्तीसा चउचत्ते' त्यादिगाथोक्तानि भवनपतीनां भवनानि योजनसहस्रदधः सन्ति, वसुदेवहिण्डयाद्यनुसारेण पुनरवर्गापि अनियतप्रमाणाः कायमानाकारा मण्डपाः प्रासादाश्च ज्ञायन्ते, यथा रत्नप्रभाया उपरि तद्विशेषः शास्त्रादौ विलोक्य प्रसाद्य इति ॥ १७४ ॥

नसहस्रदधः सन्ति, वसुदेवहिण्डयाद्यनुसारेण पुनरवर्गापि अनियतप्रमाणाः कायमानाकारा मण्डपाः प्रासादाश्च ज्ञायन्ते, यथा रत्नप्रभाया उपरि तद्विशेषः शास्त्रादौ विलोक्य प्रसाद्य इति ॥ १७४ ॥

तथा—गणधरो ज्येष्ठोऽन्यो वा तार्थस्थापनादिने एव तीर्थकरस्य व्याख्यानानन्तरं व्याख्यानं करोति, उत सर्वदा भगवद्वाख्यानानन्तरं मुहूर्त्तमेकं व्याख्यानं करोतीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—ज्येष्ठोऽन्यो वा गणधरः सर्वदा द्वितीयपौरुष्यां करोतीत्यसराण्यावश्यकवृत्त्योदौ सन्ति, न तु तीर्थस्थापनादिने एव मुहूर्त्तमेकं व्याख्यानं करोतीति ॥ १७५ ॥

तथा—श्रविर्द्धमानजिनस्य प्रथमसमवसरणे सालवृक्ष उर्ध्वमभूमिक्त्वा सर्वदाऽपि सार्थेऽचलदिति : प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यत्र भगवन्तास्तिष्ठन्ति

यत्र च निषीदन्ति तत्र देवा अशोकवृक्षं विकुर्वन्तीति समवायाङ्गादावभिप्रायोऽस्ति, तेन तदुपरिवर्त्तिनः सालवृक्षस्यापि तथैव सम्भावना, न तु सार्द्धं चलनं प्रथमसमवसरण एव वा तद्विधानमिति ॥ १७६ ॥

तथा—लघुविबुधानां पर्यायज्येष्ठा गणयः क्षामणकं न कुर्वन्तीति रीतिर्दृश्यते, परं भोजनमण्डलीस्थानादेशं प्रतिक्रमणमण्डलीस्थानादेशं प्रतिक्रमणावसरे गमनागमनालोचनादेशं च मार्गयन्ति नवा ? तेषां पुरतो वृद्धगणीनां प्रतिक्रमणादिकं कृतं शुद्धयति नवेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—लघुविबुधानां क्षामणकादि सर्वं शास्त्रानुसारेण कृतं शुद्धयतीति ज्ञायते, साम्प्रतीनव्यवहारेण तु क्षामणादिकं न कुर्वन्ति, मण्डल्यदेशमार्गणादिकं तु केचित्कुर्वन्ति केचिन्न कुर्वन्तीति दृश्यते, तेन नात्रार्थे आग्रहः कार्य इति ॥ १७७ ॥

### अथ पण्डितरत्नहर्षगणिकृतप्रश्नौ तदुत्तरे च—

यथा—ग्रामान्तरगतः श्राद्धः श्रुतभवनदेवतयोर्मध्ये कस्याः कायोत्सर्गं करोतीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—पाक्षिकचातुर्मासिकसांवत्सरिकं दिवसं विना श्राद्धानां स्थानान्तरगतानामपि ‘सुअदेवया भगवई’ इत्येव स्तुतिः पठनाहो नान्येति ॥ १७८ ॥

तथा—८ पूर्वार्द्धैरेक उपवास इत्यादिगणनया गणितं तपस्तृतीयपञ्चमोपधानमध्य आयाति नवेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—पञ्चमङ्गलमहाश्रुतस्कन्धः १ प्रतिक्रमणश्रुतस्कन्धः २ शक्रस्तवाध्ययनं ३ चैत्यस्तवाध्ययनं ४ नामस्तवाध्ययनं ५ श्रुतस्तवासिद्धस्तवाध्ययनं चेति ६ पडुपधानानि, तत्र चतुर्थपष्ठे विना चत्वार्युपधानानि मूलविधिनाऽपरविधिना चोद्यमानानि सन्ति, तत्रापरविधावष्टभिः पुरिमाद्धैरेक उपवास इत्यादिगणना भवति, नतु मूलविधौ प्रयोजनाभावात्, चतुर्थपष्ठयोर्मूलविधिनैवोद्यमानत्वात्तद्गणनाप्रयोजनं नास्तीति ॥ १७९ ॥



## अथ पण्डितपद्मानन्दगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च—

यथा—‘छण्हं तिहीण मज्झमि, का तिही अज्ज वासरं ?’ इत्याद्यागमवक्तव्यं तत्कुत्रागमेऽस्ति स नामग्राहं प्रसाद्यो, यतोऽत्र स्तनिकाः राज-समक्षमेव वदन्ति—यज्जनजीर्णग्रन्थमध्ये द्वितीयाएकादशीप्रमुखतिथीना चतुल्यवर्षा विना माननमाराध्यत्वेन नास्तीति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—छण्हं तिहीण मज्झमि, का तिही अज्ज वासरं ? इत्यादिगाथा श्राद्धदिनकृत्यसूत्रेऽस्ति, तच्चाख्यानं च ८-१४-१५—एतास्सितेरभेदात् षट् तिथय इति, द्वितीयाएकादशीप्रमुखतिथीनामक्षराणि तु श्राद्धविधेरन्यत्र न सन्ति, तथा ज्ञानपञ्चम्यक्षराणि महानिशीथे सन्तीति ॥ १८० ॥

तथा—तीर्थकृतां समवसरणाभावे चतुर्मुखत्वाभावे च कथं द्वादशपर्वदा व्यवस्थितिरिति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—समवसरणाभावेऽपि तीर्थकृता द्वाद-शपर्वदामवस्थितिर्यथा समवसरणे तथैवेत्यवसीयते ॥ १८१ ॥

तथा—त्रिविधाहारप्रत्याख्यानवतां श्राद्धानां रात्रौ यत्सवित्तजल्पानं तर्किक ग्रन्थस्थमुत परम्परगतं ? तत्र कया युक्त्या दिवसे सचित्तजलं न शुद्धयति रात्रौ च ? शुद्धयतीति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—दिवससम्बन्धित्रिविधप्रत्याख्याने ‘तह तिविह पच्चक्खणे, भन्नति अ पाणो-छआगारा’ इति वचनात् ‘पाणस्स’ इत्युच्चारो भवति, तथा च प्राप्तुकमेव जलं कल्पते, रात्रिकत्रिविधाहारप्रत्याख्याने तु पाणस्सेत्युच्चार-आवात्सचित्तजलमपि कल्पत इति ॥ १८२ ॥

तथा—पञ्चशतघनुप्रमाणयाः प्रतिमायाः पूजनं कया युक्त्या देवैर्विधीयते ? किं विकुल्योत्प्लुत्य वा ? तत्र राजप्रश्नीयमध्ये महत्य-रिमाणं शरीरं सूर्याभदेवेन कृतमित्युक्तं नास्ति उत्प्लुत्य तु न शोभते, यथा भवति तथा प्रसाद्यामिति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—प्रतिमानुसारेण देवाः शरीरं कृत्वा पूजां कुर्वन्ति, अनभिधाने त्वविवक्षैव वजिमिति सम्भाव्यते ॥ १८३ ॥

तथा—दिने रविर्मण्डलपरावर्त्त करोति, तत्राधिकमासि कथं करोति ? मण्डलानि तु अयने अयने नियतान्येव सन्ति, क्षेत्रमानमपि नियतमेवास्ति, तत्र केचन वदन्ति—हीयमानदिनपूर्त्तये मासवृद्धिरस्ति, हीयमानदिनपूर्त्तकृते तु वृद्धिमहिनास्सन्ति, तथा ' आसोढे मासे दुपया ' अनेन मानेन श्रावणान्त्यादिने चतुरङ्गुलवृद्धिर्विलोक्यते, द्वितीयश्रावणान्त्यादिनेऽपि चत्वार्येवाङ्गुलान्युताष्टौ : यदि चत्वारि तदा किं षष्टिदिनेषु पुनः पुनः तत्रैव भ्राम्यति, येनाङ्गुलमानं तादृगवस्थं, तत्र मण्डलसाङ्गत्यं यथा भवति तथा प्रसाद्यमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सूर्यसम्बन्धिर्त्रिंशन्मासेषु गतेषु चन्द्रसम्बन्धिनं एकत्रिंशन्मासा भवन्ति, तत्रैकत्रिंशत्तमो मासोऽभिषिद्धत उच्यते, तेन सूर्यमण्डलानां नियतत्वेऽपि अधिकमासि पौरुष्यादि-प्रमाणे न किञ्चिदनुपपन्नत्वं, विशेषपजिज्ञासायां मण्डलप्रकरणं विलोकनीयमिति ॥ १८४ ॥

तथा—अष्टम्यादितिथिवृद्धौ अग्रेतन्या आराधनं क्रियते, यतस्तद्दिने प्रत्याख्यानेवेलायां घटिका द्विघटिका वा भवति, तावत्या एवाराधनं भवति, तदुपरि नवम्यादीनां भवनात् सम्पूर्णयास्तु विराधनं जातं, पूर्वदिने भवनाद्, अथ यदि प्रत्याख्यानेवेलायां विलोक्यते, तदा तु पूर्वदिने द्वितयमप्यस्ति, प्रत्याख्यानेवेलायां समग्रदिनेऽपीति सुष्ठु आराधनं भवतीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—' क्षये पूर्वा तिथिः कार्यो, वृद्धौ कार्यो तथोत्तरा ' इति समास्वातिवाचकवचनग्रामाण्याद् वृद्धौ सत्यां स्वल्पाऽप्यग्रेतना तिथिः प्रमाणमिति ॥ १८५ ॥

तथा—एकादशोत्तराध्ययनक्षतुर्दशसहस्र्यां १३१ पत्रे ' जोगवं उक्ताहणवं ' इति द्वयमपि शिष्यस्योक्तमस्ति, तत्कथं शिष्यस्य श्राद्धस्य च कार्यत इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—योगा मनोवचनकायसम्बन्धिनः उपधानं तपोविशेषः, एतद्वद्वयमपि मुनीनामेवोक्तमस्ति, श्राद्धानामुपधानोद्धाहनं तु महानिशीथाक्षरग्रामाण्यादेवेति ॥ १८६ ॥

तथा—सेचनकहस्तिना प्रच्छन्ना खालिका कथं ज्ञातेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—हैमवीरचरित्रे सेचनकहस्तिना विषङ्गज्ञानेन प्रच्छन्ना खालिका ज्ञातेत्युक्तमस्तीति ॥ १८७ ॥

तथा—द्रोणः कियन्मणमान इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—चतुर्भिः कुड्यैः प्रस्थः, प्रस्थैश्चतुर्भिराढकः, चतुर्भिराढकैर्द्रोणः, अत्र नाममालावृत्तौ कुड्यवशब्देन प्रसूतिद्वयं व्याख्यातमस्ति, तदनुसारेण यद्भवति तद्द्रोणमानमवसेयं, परमियन्मणमानो द्रोण इति तु क्वापि व्यक्तं दृष्टं न स्मरतीति ॥ १८८ ॥

तथा—कल्पसूत्रे वाच्यमाने पार्श्वेऽस्वाध्यायो भवेत्तदपनयनं च कर्तुं न शक्यते तदा तद्वाचनं शुद्धयति नेवेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—पार्श्वेऽस्वाध्यायो भवति तथाप्यवश्यकरणीयत्वात्कल्पसूत्रवाचनं शुद्धयतीति ॥ १८९ ॥

तथा—वर्षाकाले नीलिका फुल्लिका च कियद्भिर्दिनैः प्रासुकीभवतीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—वर्णादिकपरावर्त्ते सति प्रासुकीभवति, परं दिवसमानं ज्ञातं नास्तीति ॥ १९० ॥

तथा—केचन वदन्ति—नमस्कारसहितप्रत्याख्याने उदिते सूर्ये योक्तुं कल्पते, योगशास्त्रे तु ‘अहो मुखेऽवसाने चे’ त्यनेन घटिकाद्वयमध्ये योक्तुं न कल्पते, घटिकाद्वयप्रारम्भोऽपि किं प्रातः करेखादर्शनत उत सूर्योदयत इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—नमस्कारसहितप्रत्याख्याने सूर्योदयादारभ्य मुहूर्त्तान्तरे प्रत्याख्यानमङ्गभयाद्भोक्तुं न कल्पते ‘उगण सूर्ये नमुष्कारसहिअं पच्चक्खामि’ इत्यादिसूत्रव्याख्याने योगशास्त्रादौ च तथैव दर्शनादिति ॥ १९१ ॥

तथा—प्रतिक्रमणहेतुगुणैर् रात्रिकप्रतिक्रमणविधौ रात्रिकप्रायश्चित्तकायोत्सर्गस्ततः चैत्यवन्दनं ततः स्वाध्यायः, एवं पश्चात्प्रतिक्रमणादौ

चत्वारि क्षमाश्रमणान्युक्तानि सन्ति, एवं तु न क्रियते, तत्किं बीजमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यतिदिनचर्यादौ स्वाध्यायादनु चत्वारि क्षमाश्रमणानि प्रोक्तानि, श्राद्धदिनकृत्यवृत्तिवन्दारुष्ट्यादौ तु स्वाध्यायादनु प्रतिक्रमणस्थापनमुक्तं, ततस्तानि स्वाध्यायात्पूर्वं ज्ञायन्ते, अयं च विधिः परम्परया बाहुल्येन क्रियमाणोऽस्ति, सामाचारीविशेषेण चोभयथापि अविरुद्धमेवेति ॥ १९२ ॥

तथा—द्रव्यलिङ्गिनो द्रव्यं जिनप्रासादे प्रतिमायां वा जीवदयायां वा ज्ञानकोशे वा कुत्र कुत्र व्यापयति इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—द्रव्यलिङ्गिनो द्रव्यं जिनानां प्रासादे प्रतिमायां च नोपयोगि, जीवदयायां ज्ञानकोशे चोपयोगीति ज्ञातमस्ति ॥ १९३ ॥

तथा—चक्रवर्त्तिपाण्डवप्रमुखाणां देवैर्विभूषणादिकं प्रदत्तमस्ति, तत्किं स्वकोशसत्कं वा स्तोत्रादितं वा ? , यदि स्वकोशसत्कं स्यात् तदा कथं कीलिकाविघटनादिकं दृश्यते, शाश्वतवस्तुनो विघटनाभावाद्, यदि स्वकृतं तदा कथं तत्र तेषामस्माकमिदं सारवस्तिव्युक्तिरिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—चक्रवर्त्तिप्रमुखाणां देवैर्यदाभरणोदिकं दीयते तदैदारिकपुद्गलैर्निष्पादितं, अथवा कस्यचित्सत्कं पुरातनमपि सम्मान्यते द्वारिकानगरीवदिति ॥ १९४ ॥

तथा—पौषधिकश्राद्धाः सायं काजकोद्धरणानन्तरं उपधिमुखपातिकादेशं मार्गयन्ति, प्रातस्तु प्रागेव, तथा पौषधशालाप्रमार्जनवसतिप्रमार्जनदेशमपि सायमेव, तत्र किं बीजमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—प्रायः सामाचार्येव बीजमिति ॥ १९५ ॥

तथा—विंशतिविहरमाणजिनानां तन्मातापितृणां च नामानि कुत्र सन्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—विंशतेरपि विहरमाणजिनानां तन्मातापितृणां च नामानि छूटकपत्रे स्तोत्रादौ च सन्तीति ज्ञेयं ॥ १९६ ॥

तथा—बहुभिरुल्लेखैर्वा भूमिं न स्पृशन्तीति यदुच्यते तत्कुत्र स्थल इति प्रसाद्यमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—महीतले कुत्रापि न स्पृशन्तीति संग्रहणीहृत्याद्यभिप्रायः ॥ १९७ ॥

तथा—इदानीं भरते मनुजानां तिरश्चां च जातिस्मरणमस्ति न वा ? यदि नास्ति तदा कुतो व्यवच्छिन्नं ? तथाऽविज्ञानमपीदानीमस्ति नेत्यपि च प्रसाद्यमिति : प्रश्नोऽत्रोत्तरं—वर्तमानकाले जातिस्मरणस्याविज्ञानस्य च व्यवच्छेदः शाल्ने प्रतिपादितो नास्तीति ॥ १९८ ॥

तथा—त्रयोदशचतुर्दशगुणस्यानयोर्द्विचरमसमयं यावत् षट्संहननसत्ता केन हेतुना ? यतो मोक्षगमनमाद्येनैव भवतीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यद्यपि मोक्षगमनमाद्येनैव भवति तथापि प्राकृतनसंहननानां सत्तासद्भावे को विचार इति ॥ १९९ ॥

### अथ पण्डितविद्याविजयगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च ।

यथा—चैत्राश्विनाऽस्वाध्यायदिनेषु यत्तपः कृतं स्यात्तत्तपो रोहिण्यालोचनादिषु समेति नत्रेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सप्तम्यादिदिनत्रयकृतं तप आलोचनायां न गण्यते, रोहिण्यादितथाविधसप्तम्यद्धतपसि तु गण्यते, न तु सर्वत्रेति ॥ २०० ॥

तथा—सूतकगृहं साधव आहारार्थं यान्ति नत्रेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यत्र देशे सूतकगृहे यावद्विर्वासैरत्रोद्योगादयो भिक्षार्थं व्रजन्ति तत्रात्माभिरपि तथा विधेयमिति वृद्धव्यवहारः ॥ २०१ ॥

तथा—छट्टभत्तिः अट्टभत्तं वडित्ता कोडुम्बिअपुरिसे सहोवेइ इत्यत्र छट्टभत्तिः इति का विभक्तिरस्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—छट्टभत्तिः इति प्रथमान्तपदं ज्ञायते ॥ २०२ ॥

तथा—विंशतिस्थानादिषु देववन्दनं मुखवलिक्का विना घटते नवेति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—मुखवृत्त्या मुखवलिक्कां विना देववन्दनं न घटते ॥ २०३ ॥  
 तथा—राजप्रश्नीयोपाङ्गे ‘भिलुगानाम पावसमणा परिवसन्ती’ त्यत्र श्रवणशब्दस्य कोऽर्थ इति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—श्रवणशब्देन पाख-  
 ण्डिविशेषो ज्ञायते ॥ २०४ ॥

तथा—केचन श्रद्धाः पुरा नमस्कारस्तोत्रावचूरिगतपञ्चपदानामानुपूर्वगुणनं कुर्वन्त आसन्, तेषां च कैश्चिदुपाध्यायैः कैश्चित्पाण्डितैश्च  
 निवेधितमस्ति, प्रख्यापितं च—नेदं गुणनं सार्वत्रिकं किंतु कारणे सत्येव गण्यते, मन्त्रादिवत्, खण्डितनमस्कारगुणे चास्ति दूषणमपीत्यत्रार्थे परम-  
 गुरूणां वचः प्रमाणमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—नमस्कारानुपूर्वगुणनं पञ्चपद्या नवपद्या वा क्रियते, श्रद्धाविध्यादाबुक्तत्वात्, नात्र कश्चिद्विचार इति । यदुक्तं  
 श्रीमहानिशीथतृतीयाध्ययने ‘से भयवं ! जहुत्तविणओवहाणेणं पंचमंगलमहासुअक्खंधमहिज्जिचा णं पुब्बाणुपुब्बीए पच्छाणुपुब्बीए अणाणु-  
 पुब्बीए सरवंजणजाव परिचिअं काळण’मिति, तथा योगशास्त्राष्टमप्रकाशादौ ‘एकेनापि वर्णेन स्मरणस्योक्तत्वा’दिति नात्र कश्चिद्विचार इति ॥ २०५ ॥

### अथ पण्डितकान्हर्षिगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च ।

यथा—उपधानवाहिश्रद्धाश्रद्धीनां कल्पदिनपञ्चक्रमध्ये उत्तरितुं न कल्पते नवेति ! प्रश्नोऽत्रोत्तरं—महत्कारणं विना उत्तरितुं न कल्पते,  
 यदि च तथाविधकारणे उत्तरति तदारम्भवर्जनं करोतीति ॥ २०६ ॥

तथा—पारणादिने वाचना कल्पते नवेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—पारणादिनेऽपि वाचना कल्पत इति ज्ञातमस्तीति ॥ २०७ ॥

तथा—पारणादिनानन्तरमुत्तरितुं कल्पते नवेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—न कल्पते इति ॥ २०८ ॥

तथा—आत्मीयप्रतिक्रमणविधिस्सम्पूर्णः क मूलमूत्रेऽस्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—आवश्यकवृत्त्यावश्यकचूर्ण्यदौ कियान् विधिरुपलभ्यते, कियान्स्तु सामाचार्यादाविति ॥ २०९ ॥

तथा—सूर्यग्रहणं यद्भवति तदस्वाध्यायिका कुत आरभ्य कियद्यावद्भवति : तथा यौगिकानां कियन्ति प्रवेदनानि न शुद्धचन्तीति : प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यत्सूर्यग्रहण भवति तत् आरभ्याहोरात्रं यावदस्वाध्यायिका, तदनुसारेणैकं प्रवेदनमशुद्धं ज्ञायत इति ॥ २१० ॥

तथा—सप्तदशभेदपूजाया कियमाणाया पूजा पूजा प्रति स्थालीमध्ये कलशो ध्रियते नवेति : प्रश्नोऽत्रोत्तरं—पूजां पूजां प्रति स्थालीमध्ये कलशो धरणीय एवंविधो नियमो ज्ञातो नास्ति, यदा यद्वस्तुनः पूजा तदा तद्वस्तुमोचनप्रवृत्तिः स्थालीमध्ये दृश्यत इति ॥ २११ ॥

तथा—चतुर्दशीं पूजां कृत्वा स्थालीमध्ये प्रदीपं मुक्त्वा ऊर्ध्वस्था गायन्ति : किं वा प्रदीपाधिकारो नास्तीति : प्रश्नोऽत्रोत्तरं—चतुर्दशी-पूजातः पश्चात्स्थालीमध्ये प्रदीपो मुच्यत एवेति नियमो ज्ञातो नास्तीति ॥ २१२ ॥

तथा—त्रिरश्वोऽस्थि सरसं भवति तस्यास्वाध्यायिका कियतः प्रहरान् यावद्भवतीति : प्रश्नोऽत्रोत्तरं—तिर्यगस्थि त्रिप्रहराणामुपरि यावत्सरसं तावदस्वाध्यायिका भवतीति ज्ञायते ॥ २१३ ॥

अथ पण्डितजनानन्दगणिकृतप्रश्नस्तदुत्तरं च ।

तथा—ब्राह्मीसुन्दर्यौ बालब्रह्मचारिण्यौ किं वा कृतोद्वाहिके इति : प्रश्नोऽत्रोत्तरं—कृतोद्वाहिके इति ॥ २१४ ॥

## अथ पण्डितकुअरविजयगणिकृतप्रश्नस्तदुत्तरं च ।

यथा—मुक्ताफलानि सचित्तान्यचित्तानि वा ? पृथ्वीकायदलान्यपृक्कायदलानि वेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—मुक्ताफलान्यचित्तानि, पृथ्वीकायरूपाणि च भवन्तीति ॥ २१५ ॥

## अथ पण्डितचारित्रोदयगणिकृतप्रश्नस्तदुत्तराणि च ।

यथा—शाम्बप्रद्युम्नश्रवणौ सार्द्धोष्टकोटिभिस्साधुभिस्सह सिद्धशिखरिणि सिद्धिं प्राप्नोतु, तन्नाम्ना साधुद्वयं तु रैवतागिरौ दृश्यते, तथा चैक्यं स्यादित्येतन्निर्णयः प्रसाद्य इति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सार्द्धोष्टकोटिभिः सह तौ शत्रुञ्जये सिद्धिं प्रापतुः, यत्तु रैवताचले तन्नाम्ना शिखरद्वयं दृश्यते तत्तु कार्पोत्सर्गकरणादिनाऽपि भवत्येवेति ॥ २१६ ॥

तथा—जिनालये क्षेत्रपालप्रतिमाया मानने पूजने सिन्दूरचढापने च सम्यक्त्वस्य दूषणं लगति नेवेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—क्षेत्रपालप्रतिमायाः क्षेत्ररक्षाकरत्वेन सिन्दूरतैलचढापने दूषणं न लगति, मानने तु सम्यक्त्वस्य दूषणं लगति ॥ २१७ ॥

तथा—श्रीकल्पसूत्रे ‘पंचहत्युत्तरं होत्था’ इति हस्तोत्तरासु जन्मं कथं सम्भवति ? यतो यस्मिन्नक्षत्रे उत्पद्यते तस्मात्त्रयोदशे जन्म भवतीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यस्मिन्नुत्पद्यते तस्मात्त्रयोदशे नक्षत्रे जन्म भवतीत्येवंविधो नियमो ज्ञातो नास्तीति ॥ २१८ ॥

तथा—पौषधपारणान्तरं स्त्रीसिंवेनेन पौषधस्य दूषणं लगति नेवेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—पौषधस्य दूषणं न लगति, परं पर्व्वतिथिविराधना भवतीति ॥ २१९ ॥



तथा—यावज्जीवं रात्रौ चतुर्विधाहारप्रत्याख्यानवतः स्त्रीसेवने भङ्गोऽभङ्गो वेति : प्रश्नोऽत्रोत्तरं—स्त्रीसेवने ओष्ठचुम्बने सति प्रत्याख्यान-  
भङ्गो भवति, नान्यथेति श्राद्धविधिवचनादिति ॥ २२० ॥

तथा—देशवकाशिकं गौषधस्थाने क्रियते, तत्र कः क्रियाविधिः, तथा देशवकाशिकमध्ये पूजास्नानादिकं सामायिकं च कर्तुं कल्पते नवेति :  
प्रश्नोऽत्रोत्तरं—देशवकाशिके 'देसावगासिअं उवभोगपरिभोगं पच्चक्खामी' त्यागेवोच्चारविधिः तथा स्वचिन्तितानुसारेण पूजास्नानादिकं सामायिकं  
च क्रियते, न कश्चिदेकान्त इति ॥ २२१ ॥

तथा—यथात्र मरते मेरुदिशि ध्रुवो वर्तते तथा महाविदेहेष्वैरवते च सोऽस्ति नवा : तथा जम्बूद्वीपे कति ध्रुवास्सन्तीति : प्रश्नोऽत्रोत्तरं—  
भरतवदन्यत्रापि ध्रुवाः सम्भाव्यन्ते, परमेतत्प्रतिपादकान्यक्षराणि तु दृष्टानि न स्मरन्तीति ॥ २२२ ॥

तथा—अष्टाशीतिग्रहाणां सर्वतारकाणां च मण्डलानि कति सन्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यथा चन्द्रसूर्ययोर्मण्डलानां सङ्ख्यादिविचारः शान्ने  
उपलभ्यते, न तथा परग्रहाणामपि, तथा तारकाणां मण्डलान्यवस्थितान्येव भवन्ति, न तु चन्द्रसूर्यमण्डलवदनियतानीति ॥ २२३ ॥

तथा—दीपालिकादिपुर्व्वणि सुखभक्षिकादिकरणे मिथ्यात्वमारम्भो वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—आरम्भो लगतीति ज्ञातमस्ति, न तु  
मिथ्यात्वमिति ॥ २२४ ॥

तथा—श्राद्धविधावशनादिचतुष्काधिकारे स्त्रियास्सम्भोगे चतुर्विधाहारो न भज्यते, बालादीनामोष्ठादिचुम्बने तु भज्यते, द्विधाहारे तदपि  
कल्पते, अत्र प्रथमस्थाने मुखसङ्गमेऽपीतिपदं नास्ति, तर्हि पृच्छतां श्राद्धानामग्रे मुखसङ्गमे त्रिचतुर्विधाहारप्रत्याख्यानयोर्भङ्गोऽभङ्गो वे (वा कथनीय इ)  
ति : प्रश्नोऽत्रोत्तरं—बालादीनामित्यत्रादिशब्दात्स्त्रिया अपि मुखसङ्गमे भज्यत इति ज्ञायते ॥ २२५ ॥

तथा—अष्टम्यां प्रतिमायां स्वयमारम्भकरणविधेर्घोऽस्ति, तत्र सचिच्चपुष्पादिभिः पूजां करोति नवेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सचिच्चपुष्पादिभिः पूजां न करोतीति ॥ २२६ ॥

तथा—अशोधितपट्टावल्यां चित्रावालगच्छीयाः श्रीदेवभद्रोपाध्याया इत्युक्तमस्ति शोधितायां तु अस्यां चैत्रगच्छीया इति तत्र को हेतुरिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—श्रीभुजिमुन्दरसूरिकृतगुणविल्यां चैत्रगच्छीया इत्युक्तमस्ति, तेन शोधितायां तथैव लिखितमस्ति, कुत्रचित्तु चित्रावालगच्छीया इत्यपि दृश्यते, परं तदपि चैत्रगच्छस्य नामान्तरमिति सम्भाव्यते ॥ २२७ ॥

तथा—‘अद्भुतज्ञेसु दीवसमुद्देशु’ तिपाठे ‘अनखुयायार’ इति ‘अनखयायार’ इति वा पाठः कथ्यते इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अनखुयायार इति पाठ आर्षत्वात् श्रीतातपादैरादिष्टोऽस्तीत्यसौवेव पठनीय इति ॥ २२८ ॥

तथा—श्रीस्थूलभद्रस्य यतित्वे वेद्यागृहस्थितिः सा सिद्धान्तोक्ता नवाः यदि सिद्धान्तोक्ता स सिद्धान्तो नामग्राहं प्रसाद्य इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—नन्दीस्मिन्ने पारिणामिक्यां बुधौ स्थूलभद्रः कार्मिक्यां तु वेद्या सारथिश्च उदाहरणतयोक्तास्सन्ति, एतदर्थप्रतिपादने स्थूलभद्रस्य यतित्वेऽपि वेद्यागृहेऽवस्थानमन्तमस्तीति ॥ २२९ ॥

तथा—श्रीहैमनेमिचरित्रे कृष्णंजरासंक्षुब्धधाधिकारे जरामोचनशङ्खेश्वरपार्श्वनाथानयनाधिकारः कथं नोक्तः? सोऽधिकारः शास्त्रीयो नवेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—तीर्थकल्पपादौ सोऽधिकारोऽस्तीति शास्त्रीय एवेति ॥ २३० ॥

तथा—नेमिचरित्रे सर्वसाधूनां द्वादशावर्तवन्दनं कृष्णो ददौ इत्युक्तमस्ति, न त्वष्टावृश सहस्राणामिति तदुक्तिर्लौकिकी शास्त्रीया वेति, यदि शास्त्रीया तदा कथं तदुपपत्तिः ‘पयद्विआणं च तदयं तु’ इति वचनात्, सर्वेषां च पदस्थत्वाभावात्, यदि सर्वेषां पदस्थत्वं तदा ते

कास्मिन्पदे स्थिता इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यथा नेमिचरित्रे तथावश्यकष्टरूपादावपि सर्वेषां साधूनां द्वादशावर्तवन्दनकमुक्तमस्ति, सर्वशब्देन समागतैवेति काऽऽरेकाः, किञ्च सर्वेषामिति पदं विवक्षितसर्वपरं, तेन पदस्यानामेव वन्दनकप्रदानं सम्भाव्यते, पदस्येष्वपि चाष्टादशसहस्रसङ्ख्या विचारेण सर्वं समञ्जसमेवेति ॥ २३१ ॥

ये गुरोर्निकटस्थास्ते कथं तदपयन्तीति विचारेण सर्वं समञ्जसमेवेति, नेमिचरित्रे त्वेवं “विना च कनकवर्ती, रोहिणीं देवकीं तथा । तथा—श्रीकल्पसूत्रे श्रीनेमिश्चत्वारिंशत्सहस्राण्यायां उक्तास्सन्ति, नेमिचरित्रे त्वेवं “विना च कनकवर्ती, रोहिणीं देवकीं तथा । पत्न्योऽपि प्रात्रजन् स्वामिसन्निधौ सकला अपि ” ॥ १ ॥ वसुदेवहिण्ड्यामपि द्वासप्ततिसहस्राण्यायां उक्तास्सन्ति, नेमिचरित्रे त्वेवं “विना च कनकवर्ती, रोहिणीं देवकीं तथा । गताः, अन्या अपि सहस्रशः कृष्णादिपत्न्यः श्रीनेमिपार्श्वे प्रव्रजितास्सन्तीति कथं सङ्गच्छते, तथा सर्वेषामपि तीर्थकृतां श्राद्धश्राद्धीसाधुसाध्वी-संख्या कल्पसूत्रोक्ताऽपि सन्देहमावहतीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—तीर्थकृतां पार्श्वे यैः सम्यक्त्वलामपूज्यैः सप्तविंशत्यादि प्रतिपन्नं त एव तीर्थकृत्य-स्वरूपं गणनीया नान्ये इति न कोऽपि शङ्कावकाश इति ॥ २३२ ॥

अथ पण्डितकीर्तिविजयगणिश्रुतप्रश्नास्तदुत्तराणि च ।  
यथा—केचन जीवा इलिकागत्या भवान्तरं यान्ति, ये च सर्वतो मारणान्तिकसमुद्घातं कुर्वन्ति ते कन्दुकगत्या भवान्तरं यान्तीति

यथा—केचन जीवा इलिकागत्या भवान्तरं यान्ति, ये च सर्वतो मारणान्तिकसमुद्घातं कुर्वन्ति ते कन्दुकगत्या भवान्तरं यान्तीति

मारणान्तिकसमुद्घातं कुर्वन्ति ते इलिकागत्या भवान्तरं यान्ति, ये च सर्वतो मारणान्तिकसमुद्घातं कुर्वन्ति ते कन्दुकगत्या भवान्तरं यान्तीति

श्रीभगवत्यां प्रोक्तमस्ति ॥ २३३ ॥

१ पाठस्तावदेवं—यदा मारणान्तिकसमुद्घातगतो भ्रियते तदेलिकागत्योत्पत्तिदेशं प्राप्नोति, तत्र च जीवदेशस्तत्रोत्पत्तिदेशे प्राप्तत्वात्

यदा तु मारणान्तिकसमुद्घातात्प्रतिनिवृत्त सन् भ्रियते तदा सर्वप्रदेशसंहरणतो मेन्दुकगत्योत्पत्तिदेशं प्राप्त सर्वेण समवहत इत्युच्यते श० १७-३६

तथा—प्रस्थापितस्वाध्यायद्वयकृतकालद्वयानुष्ठानकृतकालमण्डलद्वयप्रतिकान्तवैरात्रिककालस्य स्थण्डिलदिगमने प्रहरातिक्रमे वाऽवशिष्टानुष्ठानं सन्ध्यायां कल्पते नवेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—प्रभाते सकलक्रियाकरणाऽशक्तौ स्वाध्यायद्वयं प्रस्थाप्य कालद्वयक्रियां करोति, तदनु एकं कालमण्डलं विधायैकं स्वाध्यायं प्रस्थापयति तदनु द्वितीयं कालमण्डलं कृत्वा वैरात्रिककालं प्रतिक्रामति, तदा सन्ध्यायामवशिष्टानुष्ठानं कर्तुं कल्पते, नान्यथेति योगविधावुक्तमस्ति ॥ २३४ ॥

तथा—योगशास्त्रतृतीयप्रकाशवृत्तौ ‘शुचिः पुष्पाभिपस्तोत्रैर्देवमभ्यर्च्य वेदमनि’ इति १२२ श्लोकव्याख्यानं पूर्वं गण्डूपादिकं कृत्वा पश्चात्प्रत्याख्यानं प्रोक्तमस्ति तत्किमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—योगशास्त्रे शुचिभवनप्रकारो लोकप्रसिद्धोऽनुवादपरतया प्रोक्तोऽस्ति, नत्वयं विधेय-तयेति प्रत्याख्यानवतां गण्डूषकरणं विनाऽपि देवपूजा शुद्धयतीति न कश्चिद्विरोधः ॥ २३५ ॥

तथा—“सामाहअपुन मिच्छामिठाउकाउसगमिच्चाइं, सुत्तं भणिअ पलंविअभुअकुप्पर घरिअपरिहरणओ” ॥ १ ॥ इति बृहत्प्रतिक्रम-णहेतुगर्भगथामाश्रित्य केचन मतिनः प्रश्नयन्ति—यत् श्रीमन्तः कटिदवरकनन्धनं कुर्वन्ति, तत्कुत्र शास्त्रे प्रोक्तमस्तीति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—आवश्यकदृष्टिधर्मरत्नप्रकरणवृत्त्यादौ श्रीआर्यरक्षितसूरिभिः स्वर्णितुः कटीदवरको बन्धित इति प्रोक्तमस्ति, तेन तदाचरणया साम्प्रतमपि बध्यत इति बृहद्वादः ॥ २३६ ॥

तथा—प्रथमोपाङ्गे कूणिकवर्णके ‘माउपिउसुजाए’ एतत्सूत्रवृत्तौ पित्रोर्विनीततया सुपुत्र इत्युक्तं तत्किमिति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—कूणिकः पित्रोर्विनीत एवास्ति, यत्स्वन्तराले श्रेणिकस्य किञ्चिद्विद्विरूपमाचरितं तन्निदानवशादेव, कथमन्यथा पितृमरणशोककुलितो राजगृहं विहाय चम्पाया-मुषित इति ॥ २३७ ॥



गणे पंचसया ' इत्युक्तं तत्कथमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—उपदेशमालावृत्तौ प्रव्रज्याधिकारे पञ्चशतपरिकरितत्वमुक्तं, ऋषिमण्डले तु निर्वाणाधिकारे एकोनपञ्चशतत्वमिति न कश्चिद्विरोध इति ॥ २४३ ॥

तथा—ज्ञाताधर्मकथाङ्गग्रन्थमाध्यने श्रेणिकराजस्य धारिण्या देव्या एक एव मेघकुमारनामा पुत्रः प्रोक्तः, अनुत्तरौपपातिके तु जालि-  
कुमारप्रमुखाः सप्त सुता उक्तास्तत्कथमिति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—श्रेणिकस्य सा धारिणी अन्याऽथवा तस्या एव धारिण्या जालिप्रमुखाः सप्त पुत्रा  
मेघकुमारप्रव्रज्यातः पश्चाज्जाता इति सम्भाव्यते ॥ २४४ ॥

तथा—' उम्मुक्कभूसणंगो ' इत्याद्यक्षरानुसारेण पौषधमध्ये श्राद्धानामभरणमोचनमुक्तमस्ति, साम्प्रतं तु ते परिदधति, तत्कथमिति,  
प्रश्नोऽत्रोत्तरं—उत्सर्गमार्गेण यदि सर्वतः पौषधं प्रतिपद्यते, तदा तन्मोचनमेव युक्तं, विभूषालोभादिनिमित्तत्वेन, सामायिके तयोरपि निषिद्धत्वात्,  
अदि देशतः करेति तदा तत्परिधानमपि भवतीति ॥ २४५ ॥

तथा—लम्बुत्तरदोषः श्राद्धानां लगति नवा इति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—एकोनविंशतिदोषाधिकारे लम्बुत्तरदोषप्रतिषेधः कृतो नास्ति, तथाप्य-  
विच्छिन्नपरम्परयौचित्येन च लम्बुत्तरदोषनिवारणं न दृश्यते इति ॥ २४६ ॥

तथा—प्रतिष्ठाधिकारे साधूनां वासक्षेपाक्षराणि क्व सन्ति ? यदि च सन्ति तदा प्रतिष्ठावत्प्रतिदिनं ते वासक्षेपपूजां कथं न कुर्वन्तीति  
प्रश्नोऽत्रोत्तरं—पञ्चचत्वारिंशदागमानां मध्ये आवश्यकवृद्धृत्तौ गणधरपदप्रतिष्ठाधिकारे साधूनां वासक्षेपाक्षराणि सन्ति, प्रतिदिनं  
वासक्षेपपूजाक्षराणि तु साधूनां कुत्रापि न सन्तीति तद्विधानं कुतस्त्यमिति ॥ २४७ ॥

तथा—क्रियावादिनामक्रियावादिनां च मिथ्यादृशा सकामनिर्जरा भवति नवा ? यदि सकामनिर्जरा तर्हि ग्रन्थाक्षराणि प्रसाद्य नीति

वाल्मीकिनां वाक्यतत्त्वानां  
यतोऽकामनिर्जरावतामुत्कर्षतो न्यन्तरेष्वेव  
भवतीत्यवसीयते, यतोऽपि तच्च ॥ २४८ ॥

प्रश्नोऽत्रोत्तरं—क्रियावादिनामक्रियावादिना च केषाञ्चित्सकामानिर्जराऽपि भवतांत्यवसायतः, यथा—  
 सकामानिर्जरेति तत्त्वम् ॥ २४८ ॥

तथा—कृतसामायिकस्य श्राद्धस्य अनागतानि न स्मृतिपथनामाः पर सामायिकात्सामायाकात्परम्पर्यादिति । तत्राह—  
सामायिकानि संलभ्यानि कृतानि शुद्ध्यन्तीति एवंविधाक्षराणि शास्त्रे दृष्टानि न सम्मान्यत इति वृद्धवादः,  
सामायिकानि कर्तव्यानि, परं द्वितीयादिसामायिकेषु स्वाध्यायदेशमार्गणं न सम्मान्यत उक्तः, श्राद्धविधिचौ तु आर्य-  
सामायिकानि कर्तव्यानि, परं द्वितीयादिसामायिकेषु स्वाध्यायदेशमार्गणं न सम्मान्यते ॥ २५० ॥

विन्ताद्युपयोगं विधयैवेति ॥ २४९ ॥  
तथा—‘ तस्मै णं अज्गत्स नत्तु होत्था इट्ठे कते ’ इति, राजप्रश्नीयोपाङ्गः प्रदशा आपन्नः पृष्ठः प्रदश आभ्यर्च्यते । २५० ॥

कपुत्रः कथं प्रोक्त इति, प्रश्नाऽत्रासरं कुर्वन्ति नवीत प्रश्नाऽत्रासरं ॥ इत्यादि  
तथा—शंखाकापुरुषा गार्हस्पत्ये पिशिताशनं कुर्वन्ति नवीत प्रश्नाऽत्रासरं ॥ १ ॥ इत्यादि  
प्रयो न भवतीति ज्ञायते ॥ २५१ ॥

प्रायो न भवतीति ज्ञायत ॥ २५१ ॥  
तथा—“पिण मोटा अंगुण सांमलो, निम निशिमोजनकरता टली, जाय हान  
अनेकजन्मुयातहेतुत्वन च . प्रज्जना त . श्रीवीरपार्थे प्रब्रज्य

वहूक्तं रात्रिभाजनचतुष्पद्या, सातकं कथाञ्चित् मान्यमवात ॥ १३ ॥  
 ष्पद्यामुक्तं तनु लौकिकं वर्त्तते, तदप्यनर्थवाक्यरूपतया कयाञ्चित् मान्यमवात ॥ १४ ॥  
 तथा—श्रीविमलनाथप्रपौत्रश्रीधर्मघोषस्याविर्पाश्र्वे प्रव्रज्य महावलकुमारः पञ्चमकल्पे

तथा-श्रीविमलनाथप्रपात्रश्रावणनाथः

सिद्ध इति भगवत्येकादशशतैकादशोद्देशकादावुक्तं, तथा सति श्रीविमलनागश्रीवीरयोः श्रीकल्पसूत्रादिग्रन्थे महदन्तरं दृश्यते तत्कथमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—भगवतीवृत्तौ द्वितीयव्याख्याने इत्युक्तमस्ति, तेन कल्पसूत्रोक्तकालमानमाश्रित्य न काऽप्यनुपपत्तिरिति ॥ २५३ ॥

तथा—नन्दीवृत्तौ १३ पदे 'खित्तोगाहण' गाथाविचारे बुद्धद्वारे सर्वस्तोकाः स्वयम्बुद्धसिद्धास्तेभ्योऽपि प्रत्येकबुद्धसिद्धाः सङ्ख्येय-गुणास्तेभ्योऽपि बुद्धिबोधितासिद्धाः सङ्ख्येयगुणास्तत्कथं ? यतो बुद्धिबोधितानां केवलश्राद्धसमाग्रे व्याख्यानस्य दशवैकालिकवृत्त्यादौ निषेध-दर्शनादिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—बुद्धिशब्देन तीर्थकर्यः सामान्यसाध्यश्चोच्यन्ते, तत्र तीर्थकरिणामुपदेशे विचार एव नास्ति, सामान्यसाध्वीनां तु यद्यपि केवलश्राद्धानां पुरस्तादुपदेशनिषेधः, तथापि श्राद्धीमिश्रितानां कारणे केवलानां न पुरस्तादुपदेशः सम्भवत्यपीति न काप्यनुप-पत्तिरिति ॥ २५४ ॥

तथा—“काळण सामईयं इरिअं पडिक्कामिय गमणमालोए । वंदितु सूरिमाई, सज्जायावस्सयं कुणई ” ॥ १ ॥ श्राद्धादिनकृत्य-१३१ गाथायाः क्लोडर्य इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—गाथाया अर्थो वृत्तौ सुप्रसिद्ध एव, यत्तु सूत्रपाठमात्रेण सामायिकानन्तरमैर्यपिथिकीप्रतिक्रमणं प्रतिभाति तत् सविस्तराण्यावश्यकचूर्णक्षराण्यनुसरणीयानि, येन संशयापनेदो भवति, सर्वेषामेवंविधपाठानां तन्मूलकत्वादिति ज्ञायते ॥ २५५ ॥

तथा—सूत्रकुदङ्गप्रथमश्रुतस्कन्धचतुर्थीध्ययनवृत्तौ “ छिन्नपादभुजस्कन्धाश्छिन्नकण्ठोष्ठनासिकाः । छिन्नतालुशिरोमेण्डू, भिन्नाशि-हृदयोदराः ॥ १ ॥ ” इत्युक्तं, तत्र नारकाणां नपुंसकत्वे छिन्नमेण्डू इति कथमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—नारकाणां नपुंसकत्वेऽपि मेण्डूसत्ता न विरुध्यते, 'महिलासहावो सर वण्णमेओ, मिढं महंतं मउआ य वाणी' इत्यादिलक्षणस्य पुष्पमालादावुक्तत्वादिति ॥ २५६ ॥

तथा—हैमपद्मचरित्रे रामकेवलिवनचतुर्थनरकस्थरावणशत्रुकाभ्यां युध्यमानं परमाधार्मिककदर्थितं लक्ष्मणं दृष्ट्वा सतिन्द्रस्तत्र गत्वा



किञ्चिदुःखं श्येषधयदित्युक्तं, तत्र चतुर्थनरके संतिन्द्रगमनं परमाधार्मिककदर्थनं च कथं सङ्गच्छते, 'सहसारांशिय देवा नारयनेहेण नंति तइयभुव । तिसु परमाहम्भिककयावि० इति पञ्चसङ्गइसङ्गहण्योः प्रामाण्यादिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—'तिसु परमाहम्भिक कयावी' ति संग्रहणीवचनस्य प्रायिकत्वाच्चतुर्थपृथिव्या रावणदेः परमाधार्मिककृताऽपि वेदना सम्भवतीति न विरोधः, 'सहसारांशिय' ति पञ्चसंग्रहगाथामाश्रित्य तु पञ्चसंग्रहपुस्तकमत्र हस्तप्राप्यं नास्तीति प्रत्युत्तरं न लिखितं, तेन तत्समयान्तरे ज्ञास्यत इति ॥ २१७ ॥

तथा—द्रव्यलिङ्गिद्रव्यनिष्पन्नचैत्यमविधिचत्यमित्यागमोक्तिः, पुस्तकादिक्षेत्रेषु तद्द्रव्यव्यापारणं युक्तमयुक्तं वा ? यदि युक्तं तर्हि चैत्ये कथमयुक्तं ? तदपि पुस्तकं सुविहितैः कथं गृह्यते इति, तथा कैश्चिच्चिरन्तनाचार्यैः शिथिलपथमपास्य स्वद्रव्यानीतमुक्ताफलपटलं लेष्टुना चूर्णीकृतं उग्रविहाराङ्गनीकारसमये, यदि तद्द्रव्यं पुस्तकादिषु करुणीयमभविष्यत्तदा मुक्ताफलचूर्णनेन तद्द्रव्यविनाशनं नाकारिष्यदिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—चैत्यमाश्रित्य विध्यविधिविचारः शास्त्रेषु प्रोक्तोऽस्ति, न तु पुस्तकमाश्रित्य, तेन न तयोः साम्यम्, तत एव च परम्परयापि तत्पुस्तकं गृह्यमाणमस्तीति न काऽप्यनुपपत्तिः । यच्च कैश्चिच्चिरन्तनदर्शनिभिः सुविहितमार्गाङ्गीकारे मुक्ताफलानि लेष्टुना चूर्णीकृतानि तदुग्रवैराग्यवृत्ताख्यापनार्थमिति न काऽप्यनुपपत्तिरिति ॥ २१८ ॥

तथा—चतुसंहस्रभूपैस्सह श्रीनाभेयजिनो दीक्षां जग्राह, तेषां दीक्षोच्चारः केन कारित इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—तेऽपि श्रीप्रथमजिनेन सह प्रभुवद् व्रतं जगृहुरिति ऋषभचरित्रादौ ॥ २१९ ॥

तथा—वन्दारुचौ 'सिद्धे भो ! पयओ०' वृत्तव्याख्याने त्रिकोटिपरिशुद्धत्वेन प्रख्यातायेत्यत्र त्रिकोटिशब्दस्य कोऽर्थ इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सूत्रा १ अर्थ२तदुभय३रूपाः कष १ च्छेद २ तापलक्षण ३ परीक्षात्रयरूपा वा तिष्ठः कोट्यः सम्भाव्यन्ते ॥ २१० ॥

तथा—वन्दनकनिर्युक्तौ 'देविंद राय' इत्यादिगाथायां गिह्वइसागारिशब्दयोर्लघुवृत्तौ व्याख्यानं नास्ति, बृहद्वृत्तौ किं व्याख्याम-  
मस्ति नवा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—बृहद्वृत्तौ तद्व्याख्यानं नास्ति, परं भगवतीपोडशशतकद्वितीयोद्देशकवृत्तौ गृहपतिशब्देन माण्डलिको राजा सागा-  
रिकशब्देन च सामान्यगृहस्थश्च प्रोक्तोऽस्तीति ॥ २६१ ॥

तथा—किरणावल्यां दशमस्त्रयाधिकारे 'विबुहेहिं अलंकितो' ति पाठः, आवश्यकवृत्तौ तु अन्यत्, तरिकरणावल्यां कुतस्तद्धि-  
खनमिति व्यक्त्या प्रसाद्यमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—आवश्यकवृहद्वृत्तौ 'पउमसरो विउधंपंक्तो' इति पाठोऽस्ति, तस्याऽर्थो विबुधपङ्कजं पमसरः,  
तथा किरणावल्यां 'विबुहेहिं अलंकितो' ति पाठः कल्पचूर्णितः कुतश्चिदन्तर्वाच्यतो वा लिखितो भविष्यतीति सम्भाव्यते इति ॥ २६२ ॥

### अथ पण्डितधनहर्षगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च ।

यथा—सुधर्मसुरत्वपदव्यपेक्षया यथा ईशानसुरत्वपदवी अधिका, तथा भुवनपतिज्योतिष्कव्यन्तराणामन्योऽन्यं का पदवी न्यूना का  
च अधिकेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—व्यन्तरज्योतिष्कभवनपतीनां यथोत्तरं बाहुल्येन महर्द्धिकत्वमिति पदव्यधिकाताऽपि तथैवेति ॥ २६३ ॥

तथा—गङ्गादिनदीजलं यथा लवणाब्धौ विश्राम्यति, तथा मानुषोत्तरपर्वतसम्मुखविनिर्गतनदीजलमपि कुत्र विश्राम्यतीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—  
मानुषोत्तराभिमुखनिर्गतनदीजलं पुष्करवरसमुद्रे विश्राम्यतीति स्थानाज्ञादावस्तीति ॥ २६४ ॥

तथा—अष्टोत्तरीयस्नात्रे क्रियमाणे कुतधौतिकाः श्राद्धा जघन्यत उत्कृष्टतश्च कियन्तो मृग्यन्ते इति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—जघन्यतोऽष्टौ  
श्राद्धाः कुतधौतिकास्तिष्ठन्ति, उत्कर्षतस्तु यथेच्छमिति ॥ २६५ ॥

तथा—जिनमन्दिरादवष्टोत्तरीयस्नात्रे विधीयमाने वीक्षितुं गातुं नन्तुं श्राद्धञ्च आयान्ति नवेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—गानाद्यर्थं श्राद्धञ्च तिष्ठन्ति अष्टोत्तरीयस्नात्रविधिपत्रेषु तथा लिखितत्वादिति ॥ २६१ ॥

तथा—कस्यापि श्राद्धस्य द्वादशव्रतसम्बन्धिनी चतुष्पद्यादिरूपाः जोडिः कृत्वा दत्ता भवति, तदन्तर्गतः प्रथमव्रताद्याधिकारविशेष उपधि-  
मुखवाग्निप्रतिषेधनानन्तरं क्रियमाणे स्वाध्याये कस्यापि वक्तुं कल्पते नवेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—प्रतिषेधनास्वाध्यायसमये गाथापञ्चकादि वक्तुं कल्पते इति ॥ २६७ ॥

तथा—चम्पकादिपुष्पवासितवारि सकलार्द्रवस्तुप्रत्युत्पत्त्याख्यानवतः श्राद्धस्य पातुं कल्पते नवा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सकलार्द्रप्रत्युत्पत्त्याख्यानवतस्त-  
द्वारि कल्पते पातुमिति ॥ २६८ ॥

तथा—चतुर्मासाष्टाहिका चतुर्दशी यावत्पूर्णमा यावद्धा गणनीयेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—चतुर्मासाष्टाहिका सम्प्रतं चतुर्दशी यावद्गणनीया,  
पूर्णमा तु पर्वतिथित्वेनाराध्या एवेति ॥ २६९ ॥

तथा—चैत्राश्विनाष्टाहिकामध्ये पूर्णिमा गण्यते नवा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—चैत्राश्विनाष्टाहिकामध्ये पूर्णिमा गण्यते ॥ २७० ॥

तथा—“कीडी चूड्यलाओ, कुंयु उदेहि धीमिष्टा, इहो मंकुण जुआ, खुडही जूया य गदहिआ ॥ १ ॥” इत्याराधनापताका-  
गाथायां चूडेतीति प्रसिद्धो जीवविशेषपक्षीन्द्रियनीवमध्ये प्रोक्तो दृश्यते, ‘बेइदिआमाइवाहाई’ इति जीवविचारद्वीन्द्रियगाथाप्रान्ते माइवाहा  
पदेन चूडेलि इत्यर्थः श्रुतोऽस्ति तेन किं प्रमाणमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—चूडेछिविषये मतान्तरमवसेयं, मतान्तरविषये च न व्यामोह इति ॥ २७१ ॥

तथा—सरुजः पुंसो यन्निविधाहारनिगोदधरूपं सागारिकमनशनं कार्यते तदुच्चारणमिधिः कथं इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—पूर्व निवसितमेवाकृत-  
त्रिविधाहारचतुर्विधाहारप्रत्याख्यानस्य पुंसः 'जह मे हुञ्ज पमाजो' इति गागोचारपूर्वकं सागारिकमनशनं कार्यत इति ॥ २७२ ॥

तथा—सूक्ष्मनिगोदाक्षिर्गतो जीयः पुनः सूक्ष्मनिगोदमभये जाति नवा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सूक्ष्मनिगोदाक्षिर्गतो जीयः पुनरपि सूक्ष्म-  
निगोदे यातीति ॥ २७३ ॥

तथा—उपाश्रये समागच्छन् मुत्कलः श्राद्धः निसीहीति तस्याक्षिर्गच्छंश्च आनस्सहीति वकित नवा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—मुत्कलः श्राद्धः  
निसीहीति वकित न त्वावश्यकीति ॥ २७४ ॥

तथा—जिनमन्दिराक्षिर्गच्छद्भिः साधुभिः श्राद्धैश्च आनस्सहीति नयतव्यं नवा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरम्—आनस्सहीति साधुभिर्नयतव्यं  
न तु श्राद्धैरिति ॥ २७५ ॥

तथा—अणिमाद्या अष्टौ महासिद्धयः कस्यां लब्धावन्तभर्नन्ति, महाव्रतिनां अणुव्रतिनां गिश्वाद्दशां वा ताः सम्भवन्ति नवा इति  
प्रश्नोऽत्रोत्तरम्—अणिमादयो वैक्रियलब्धावन्तर्भवन्ति ताश्चासम्यग्यद्दशां सम्भवन्तीति ॥ २७६ ॥

तथा—श्रीवीरतीर्थङ्कुने देशानां दत्त्वा देवच्छन्दान्तः प्राप्ते सति एकादशगणपरगध्याद् ज्येष्ठत्वादौतम एव भर्गदिवानां वदति, षड्धर्षि-  
त्वेन स्थापितत्वात् सुधर्मस्वामी वा ? अन्यो वा यः कश्चिद्व्रणधरो वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—दीक्षया ज्येष्ठत्वात्सति गौतमस्त्वामिति गौतमस्त्वामेव  
धर्मदेशना विधत्ते, असति च तस्मिन्नन्योऽपि यो ज्येष्ठो भवति स विधत्ते इति ॥ २७७ ॥

तथा—श्रीजम्बूप्रभवस्वामिभ्यां सार्द्धं तपस्या गृहीता, श्रीजम्बूस्त्वामिनश्च सार्वर्वागुरशीतिर्वर्षाणि, श्रीग्रभवस्त्वामिनस्तु सार्वर्वायुः षड्धाक्षीतिर्वर्षाणि,

सह दीक्षासमयग्रहणे ३० त्रिंशद्वर्षीय इति जम्बूस्वामिनि सत्येव प्रभवस्वामिनः स्वर्गभक्तत्वं सम्पनीपद्येत, तेनैतत् पद्मावलीगतं लेख्यकं कथं मिलतीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—श्रीजम्बूस्वामिदीक्षानन्तरं कियद्दिवर्षैः श्रीप्रभवस्वामिनो दीक्षा सम्भाव्यते, तथा च सति न कोऽपि विरोधो, यदुक्तं परिशिष्टपूर्वाणि—“ पञ्चमः श्रीगणधरोज्येवमभ्यर्थितस्तदा । तस्मै सपरिवाराय, ददौ दीक्षा यथाविधि ॥ १ ॥ णितुनापृच्छच चान्येद्युः, प्रभवोऽपि समागतः । जम्बूकुमारमनुयान्, परिव्रज्यामुपादेदे ॥ २ ॥ ” २७८ ॥

तथा—आकाशप्रदेशपरमाण्वोः कतमः सूक्ष्म इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—प्रदेशापेक्षया द्वयोस्तुल्यत्वमेव, विभागाभावात्, अवगाहनापेक्षया त्वेक-  
प्रमर्वादिप समागतः । जम्बूकुमारभुयान्, पाण्डुरज्यानुपायः ॥ २७८ ॥

तथा-प्रवचनसारोद्धारवृत्त्यादौ इन्द्रियविषयप्रमाणता आत्माङ्गुलेन प्रोक्ताऽस्ति, चक्षुष उत्कृष्टविषयतायां कृतलक्ष्यो जनरूपो विष्णु-कुमारो दृष्टान्तः प्रोक्तोऽस्ति, तथाहि-चक्षुः सातिरेक्योजनलक्षाद्रूपं गृह्णाति, सातिरेकत्वं तु विष्णुकुमारादयः स्वपदपुरःस्थितं गत्तादिकं तन्मध्य-गतं च लेष्टादिकं पश्यन्तीति नवतत्त्वमहावचूर्णोऽस्ति, इति चक्षुषः सातिरेकलक्ष्यो जनदूरस्थरूपग्रहणविषये दृष्टान्तकरणोद्दिष्टविष्णुकुमारविकुञ्चित-रूपमात्माङ्गुलेन सम्भाव्यते, अन्यथा न दृष्टान्तसङ्गतिरित्येवं सति प्रश्नोत्तरसमुच्चयचतुर्थप्रकाशप्रान्ते यद्विष्णुकुमारविकुञ्चितरूपमुत्सेधाङ्गुलनिष्पन्न-लक्ष्यो जनप्रमाणमुक्तमस्ति तत्कथमिति प्रश्नोद्बोधोत्तरं-विष्णुकुमारकृतं सातिरेकलक्ष्यो जनप्रमाणरूपं चमरेन्द्रादिवत्प्रमाणाङ्गुलेनापि सम्भवतीति न कापि विप्रतिपत्तिः, यच्च प्रश्नोत्तरे उत्सेधाङ्गुलेन प्रोक्तमस्ति तत्र किञ्चिद्विधेयमस्तीति ॥ २८० ॥

वाच्यं ? कश्चित्सुधुर्भस्वामिनं वक्ति, कश्चिच्च मण्डलीस्वामिनं गीतार्थं वक्ति, कश्चित्तु तीर्थङ्करं ब्रूते ' च्यारे खमासमणे अरिहन्तादिक वांदइ ' इति

प्रतिक्रमणहेतुगर्भबालावबोधे लिखितमस्ति, लघुप्रतिक्रमणहेतुगर्भे भगवच्छब्देन चत्वारोऽर्थाः प्रोक्ताः सन्ति, तेन भगवच्छब्देन किमत्र वाच्य-  
मिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—भगवच्छब्देन पारम्पर्येण धर्म्मार्चार्यः श्रूयते, यच्च प्रतिक्रमणहेतुगर्भबालावबोधे ‘च्यारे स्वमासमणे अरिहंतादिक वादइ’  
इत्युक्तमस्ति तत्र स बालावबोधः केन कृत इति ज्ञापनीयं तदनु ज्ञास्यत इति ॥ २८१ ॥

तथा—जिनमन्दिरे मूलनायकस्य दृष्टिर्द्वारशाखायाः कियत्तमे भागे समानेयाः विवेकविलासादौ कथमस्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यदुक्तं  
विवेकविलासे—“द्वारशाखाद्विभागैरधः पक्षाद्विधीयते । मुक्त्वाष्टमं विभागं च, यो भागः सप्तमः पुनः ॥ १ ॥ तस्यापि सप्तमे भागे, गजांश-  
स्तत्र सम्भवेत् । प्रासादप्रतिमाद्विनिर्नियोज्या तत्र शिल्पिभिः ॥ २ ॥ अष्टभागीकृताया द्वारशाखायाः यः सप्तमो भागः सोऽप्यष्टभागीक्रियते तस्य  
सप्तमे भागे प्रतिमाद्विनिर्नियत इत्यवसेयमिति ॥ २८२ ॥

तथा—जिनमन्दिरे अमन्त्या देहरी इत्यपरपर्याया देवकुलिकास्तयोर्विंशतिश्चतुर्विंशतिर्वा कार्याः, मूलनायकेन सह चतुर्विंशतिर्जायते तेन  
त्रयोर्विंशतिरेव तत्र कार्या इति कश्चित्तेन किमत्र प्रमाणमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—मूलनायकात्पृथक् चतुर्विंशतिर्देवकुलिकाः क्रियन्ते इत्यत्रत्याः  
सूत्रधारा वदन्तीति ॥ २८३ ॥

तथा—चतुर्निकायेदेवानामेकैका कोटिरिति चतस्रः कोट्यस्तीर्थकृत्पार्श्वे जघन्यतो भवन्ति समुदितानां एका कोटिरिति वा कथमस्तीति  
प्रसाद्यः ? चतुष्कोट्यक्षराणि वीतरागस्तवष्टौ सन्तीति कश्चिद्वक्ति तत्प्रमाणं न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—चतुर्निकायेदेवानां समुदितानां कोटि-  
ज्ञायते, नाममालादौ तथोक्तेः, यत्र च प्रतिदेवनिकायं कोटिरुक्ताऽस्ति सा का वीतरागस्तवष्टुतिः केन च कृतेति ज्ञापनीयं ततो  
ज्ञास्यत इति ॥ २८४ ॥

तथा—जिनसमवसरणे सङ्ख्याताः सुरा मान्यसङ्ख्याता वा इति : प्रश्नोऽत्रोत्तरं—जिनसमवसरणेऽसङ्ख्याताः सुरनरादयो मान्तीति योगशास्त्रेणैव प्रोक्तमस्ति, न च तत्र काव्यनुपपत्तिः, यच्च नाममालादौ क्वापि कोटाकोटिरुक्ता, तद्विशेषाऽविश्वेयस्यवसीयते इति ॥ २८५ ॥  
तथा—सावत्सरिकप्रतिक्रमणकायोत्सर्गो ४० चत्वारिंशल्लोकोद्योतकरान् कथयित्वा तत्प्रान्ते एको नमस्कारो वक्तव्यः पश्चात् कायोत्सर्गः पारणीयः कश्चिदिति वक्ति, कश्चिच्च प्रान्ते नमस्कारं वक्तव्यं न ब्रूते, तेन किं प्रमाणमिति : प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सावत्सरिकप्रतिक्रमणे सनमस्कार-  
श्चत्वारिंशल्लोकोद्योतकराद्योत्सर्गः प्रतिक्रमणहेतुगर्भादाबुक्तोऽस्ति, पारम्पर्येणापि तथैव क्रियत इति ॥ २८६ ॥

यथा—सामारिके सति रजोहरणेन पद्मोः प्रमार्जनं प्रमार्जनाऽसंयम इत्युक्तमस्ति, तत्र को हेतुरिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अपरिणतलोकोपहासा-  
विहेतुत्वमेव इति ॥ २८७ ॥

तथा—अर्हदादिविशति २० पद्वाराधनं यश्चतुर्थतपसा करोति, स तदध्ययपदगणनमुपवासदिने कुर्याद्विनत्रयेऽपि वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—  
यश्चतुर्थतपसा स्थानकाराधनं करोति स यदि पृथक् पृथक् चतुर्थान् करोति तदा त्रिष्वपि दिनेषु ध्येयपदं गणयति, समुदितचतुर्थकरणे तु  
यथासम्भवमिति बोध्यम् ॥ २८८ ॥

तथा—इहैक सत्त्वाः पूर्वं नानाविधयोनिकाः स्वदृष्टकर्मवशागातसस्यावरशरीरेषु सचित्ताऽनित्तेषु पृथ्वीकायत्वेनोत्पद्यन्ते, यथा शिरःसु  
मणयः कारिदन्तेषु मौक्तिकानि विकलेन्द्रियेष्वपि शुक्त्यादिषु मौक्तिकानि स्यावरेष्वपि पारकरादिषु जीवा लवणभावेनोत्पद्यन्ते, एतान्यक्षराणि  
सूत्रकुदङ्गदीपिकायां सन्तीत्युक्त्वा मौक्तिकानि सचित्तानि स्मरतराः कथयन्तः सन्ति, प्रश्नोत्तरग्रन्थे तु अचित्तानि तानि भवन्तीत्युक्तमस्ति,  
तत्कथमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सूत्रकुदङ्गदीपिकादौ मौक्तिकानि यद्यपि सचित्तत्वेनोत्पद्यन्ते इत्युक्तमस्ति, तथापि तान्यनुयोगद्वारादौ अचि-

विहरणाद्यप्रसङ्गः ॥ २८९ ॥

तथा—“जायमयसूअगाईनिच्छूढा” इत्यादिसूतकशब्दः प्रत्येकं सम्बद्धयते, जातकसूतकं नाम जन्मानन्तरं दशाहानि यावत् मृतसूतकं मृतानन्तरं दश दिवसान् यावत्तत्र यद्वर्ज्यं तद्विधा—‘लोग’ ‘सि’ लौकिकं ‘उत्तर’ ‘सि’ लोकोत्तरं, लौकिकं द्विधा—इत्वरं यावत्कथिकं च, तत्रेत्वरं यत्सूतकमृतकादि, तथाहि—लोके सूतकादि दश दिवसान् यावद्वर्ज्येत इति, यावत्कथिकं च वरुडछिम्पकर्मकारडोम्बादि, एतान्यक्षराणि व्ययहारसूत्रवृत्तौ सन्तीत्युक्त्वा सूतकगृहं दशदिवसान् यावत्स्वरतरास्त्यजन्तः सन्ति, प्रश्नोत्तरग्रन्थे तु दशदिननिबन्धो ज्ञातो नास्ति इत्युक्तमस्ति, तत्कथमिति ? प्रश्नोत्तरग्रन्थे—व्ययहारसूत्रवृत्तौ सूतकविषये यद्दशदिनवर्जनं तद्देशविशेषपरत्वेन, ततो यत्र देशे सूतकविषये यावानवधिस्तावन्ति दिनानि वर्जनीयानि, तेन प्रश्नोत्तरग्रन्थेन सह न कोऽपि विरोध इति ॥ २९० ॥

तथा—प्रवचनसारोद्धारस्य तृतीयशतकस्य त्रयविंशत्तमगाथाया ‘संगरिगाइमि अप्पडिण्’ एतत्पदव्याख्यानं श्रीआणन्दसूरिणा—सङ्गरिकादौ अपतिते पतिते तु द्विदलदोषसम्भवाङ्गं कल्पते. घोलादि इत्युक्तमस्ति, एतदुक्तिबलात् संगरिफलं वञ्चलफलमपि द्विदलत्वेन खरतैरस्युपगम्यते, आनन्दसूरिश्च वङ्गच्छीयः श्रूयते, तेन तदुक्तं कथमात्मनां प्रमाणं नास्तीति ? प्रश्नोत्तरग्रन्थे—आनन्दसूरिकृतग्रन्थस्तु अद्य यावद् दृष्टो नास्ति, तेन तद्दर्शने तद्विषयो विचारो युक्तिमान्नान्यथेति ॥ २९१ ॥

तथा—प्रज्ञापनाद्वितीयपदे बादराशेरधिकारे ‘वाघायं पडुच्च पच्चसु महाविदेहेसु’ एतत्पदव्याख्यानं व्याघातो नामातिस्निग्धोऽतिरुक्षो वा कालः, तस्मिन्सति अग्निव्यवच्छेदात्, ततो यदा पच्चसु भारतेषु पच्चत्तैरवतेषु सुषमसुषमा सुषमपुष्पमा वर्तते तदाऽतिस्निग्धः कालो दुष्पमदुष्पमाय



वातिरूक्ष इत्यश्विन्यवच्छेद इत्युक्तमस्ति, अत्र च प्रथमारके तृतीयारके च बादराशिनिषेधो भणितो न द्वितीयारके, तेन द्वितीयारकेऽग्निर्भवति न वा ? किञ्च सुषमादुष्णमायामन्नाग्निनिषेधः प्रोक्तः, 'अगणिस्स य उद्गाणं' इत्यादिना चाग्निस्मभवः प्रोचते, तदेतत्कथं सङ्गच्छते ? किञ्चोत्सर्पिण्या द्वितीयारके कियति गते बादरोऽग्निरुत्स्यते ? कियति गते च तस्मिन् नीतिप्रवृत्तिः तत्प्रवर्तकश्च को भविष्यतीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—प्रज्ञापनेत्यत्र प्रज्ञापनापुस्तकपाठानुसारेण प्रथमद्वितीयतृतीयारकेषु कालस्यातिस्निग्धता प्रोक्ताऽस्तीति का शङ्का ? तथा तृतीयारकेऽतिरिन्धतायामुक्तायामपि तत्प्रान्ते 'अगणिस्स य उद्गाणं' इत्यादि भणनं तु अरुपःश्याविक्षणान्न नाधाविधायि, तथोत्सर्पिण्या द्वितीयारकस्यदौ पुष्करसंवत्तोदिवृद्धमेध-वर्षणे नादरवनस्पतिप्रादुर्भवने बिलनिर्गतमनुष्यैर्मसादिनिवृत्तिरूपा नीतिर्विहिता ग्रामादिनिवेशाश्चादिग्रहणादश्यादिसम्भवे पाकादिनिवर्तनं च प्राग्-जातजतिस्मरणत्प्रथमकुलकराद्विमलबाहनाद्वितीयारकस्य प्रान्ते प्रवृत्तमिति हैमवीरचरित्रे प्रोक्तमस्ति ॥ २९२ ॥

तथा—प्रज्ञापनाद्वितीयपदे द्वीन्द्रियादीनां पर्याप्तापर्याप्तानां स्थानप्रश्नाऽधिकारे 'उद्धुलोऽतदेकदेशभोगे' इत्यत्र उद्धुलोके तदेकदेशभोगे मन्दरादिवाप्यादिषु द्वीन्द्रियादयः शङ्खादयः प्रोक्तास्सन्ति, "एगिदिअ पचिदिअ, उद्धु अ अहे अ तिरिअलोए अ विगलिदिअजीवा पुण, तिरिअलोए मुणेअन्वा ॥ १ ॥" एतस्यां च गाथाया तिर्यग्लोके विकलेन्द्रिया ज्ञातव्या इत्युक्तमस्ति, तत्कथं ? इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—'एगिदिअ पचिदिअ' इति गाथायां यत्तिर्यग्लोके एव विकलेन्द्रियप्रतिपादनं तद्वाहुल्यमाश्रित्य ज्ञेयम् ॥ २९३ ॥

तथा—प्रथमपदे आशालिकाधिकारे 'अंतोमुहुत्तद्धाउआ' इति पाठो दृश्यते, वृत्तौ च अद्धेति पदं व्याख्यानं वोपलभ्यते तेन सूत्रेऽधिकं वृत्तौ न्यूनं वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सूत्रेऽद्धापदं समस्ति वृत्तौ तदव्याख्यानं तु सुकरत्वाच्च कृतमिति बोध्यम् ॥ २९४ ॥

तथा—आर्द्रे नालिकेरे शुष्के वा कियन्तो जीवाः सन्ति, तथा नालिकेरबीयके सङ्ख्याता असङ्ख्याता अनन्ता वा कियन्तो जीवाः सन्ति ?

यतस्तमत्र केचिदनन्तजीवात्मकं प्रतिपादयन्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—बीयके सम्बद्धे नालिकेरे एक एव जीव इति ॥ २९५ ॥

तथा—शृङ्गाटके शुष्के आर्द्रे च कियन्तो जीवाः सन्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—शृङ्गाटकफले शुष्के आर्द्रे वा जीवद्वयं प्रोक्तमस्तीति ॥ २९६ ॥

तथा—आउलिनामा वनस्पतिविशेषः किं सङ्ख्यातजीवोऽसङ्ख्यातजीवोऽनन्तजीवो वा ? कुत्र च प्रोक्तोऽस्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—आउलिसत्कमूलादौ असङ्ख्याता जीवाः, पत्रादौ तु एकैको जीव इति प्रज्ञापनादौ प्रोक्तमस्तीति ॥ २९७ ॥

तथा—हस्तत्रयादारभ्य उत्सेधाङ्गुलेन यावत् पङ्क्तप्रमाणे देहधारिणां तद्भवे मोक्षो भवेन्न वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—उत्सेधाङ्गुलेन हस्तद्वयादारभ्य साधिकपञ्चधनुःशतानि यावत् शरीरधारिणो जीवा मुक्तिं गच्छन्तीति ॥ २९८ ॥

तथा—“अद्वामलगपमाणे, पुढवीकोण् हवति जे जीवा । ते पारेवयमिन्ता, जंबूहीवे न मायंति ॥ १ ॥ एणंमि उदगबिंदुमि, जे जीवा जिणवरोहिं पन्नत्ता । ते जइ सरसवमिन्ता, जंबूहीवे न मायंति ॥ २ ॥ ” एतद्वाथाद्वयं प्रतिक्रमणसूत्रवृत्तिप्रवचनसारोद्धारसूत्रवृत्त्यादौ यथा दृश्यते तथा तेजस्कायप्रभृत्येकोन्द्रयाणा जीवमानप्रतिपादिका गाथाः प्रायो ग्रन्थे न दृश्यन्ते, तत्कथं ? किञ्च बरट्टिकातन्दुलप्रमाणमात्रे तेजस्काये ये जीवास्ते यदि मस्तकलिक्षाप्रमाणदेहधारिणो भवेयुस्तदा ते जम्बूहीवे न मान्ति, निवपत्रस्पृष्टमात्रे वायौ ये जीवाः सन्ति ते यदि खसखसप्रमाणदेहा भवेयुस्तदा जम्बूहीपे न मान्ति, अयमर्थः प्रमाणप्रमाणं वा ? किञ्च—एतदर्थप्रतिपादके यादृश्यौ तादृश्यौ छुट्तिपत्रे गाथे अपि स्तः, तद्यथा—‘बरटीतदुलमिन्ता, तेऊजीवा जिणेहिं पन्नत्ता । मत्थयलिकखपमाणा, जंबूहीवे न मायंति ॥ १ ॥ जे लीवपत्तफरिसा, वाऊजीवा जिणेहिं पन्नत्ता । ते जइ खसखसमिन्ता, जंबूहीवे न मायंति ॥ २ ॥ ” किञ्च पृथिवीकायादिजीवप्रमाणप्रतिपादिकाया गाथायां पारापतादयो ये प्रोक्तास्ते च तत्तत्तीर्थ-

कृत्वाले भिन्नभिन्नप्रमाणदेहधारिणो भवन्ति तेन पारापतादयः किंकालीना ग्राह्या इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—नेजस्कायिकप्रभृतिशरीरमानप्रतिपादकं  
गाथाद्वय यद्यपि महाग्रन्थे न दृश्यते, तथापि सूत्रेण सह सम्मतमेव, तदर्थस्य सूत्रानुयायित्वात् । तथा जीवमानप्रतिपादरूपापतादिप्रमाणमव-

स्थितकालत्वेन महाविदेहगतं ज्ञायत इति, मुग्धबोधनार्थश्चायमुपदेश इति न काऽप्यनुपपत्तिरिति ॥ २९९ ॥

तथा—नाममालायां 'पष्ठे पुनः षोडशाब्दयुगो हस्तसमुच्छ्रयाः' इत्युक्तमस्ति, लघुक्षेत्रसमासे तु 'पञ्चमसमच्छदोरे, दुर्गुच्छा वीस-

वरिसआउ नरा' इत्यस्ति, तेनैतत्कथं सङ्गच्छते इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—नाममालायां मानं यदुक्तं तत्पठारक्रमान्तमश्रित्य, लघुक्षेत्रसमासे, तुवरीकणादय-

तु पञ्चारकस्यादिदिनमाश्रित्येति बोध्यम् ॥ ३०० ॥

तथा—तेषु त्रिप्वारकेषु यथाक्रमेण नराणां विद्योक्तैस्तुवरीकणवदरामलरुमानमाहार इत्युक्तमस्ति लघुक्षेत्रसमासे, तुवरीकणादय-  
श्चारकेऽरके दृयकृथकृप्रमाणास्तेन किमरकवर्त्तिनस्तुवरीकणादयोऽत्र ग्राह्या इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—तत्तदरकसम्भवित्वरीकणादिप्रमाण-

माहारस्य ज्ञेयम् ॥ ३०१ ॥

तथा—'मज्झणहाओ परओ, जाव दिवसरस्स ओणमुहुत्तो ताव त्रिप्पइ' इति सामाचारीमध्ये विद्येते, तेन तृतीययामादर्वीक् मज्जा-  
ह्मात्परतः रात्रिपौषधः कर्तुं कल्पने न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—मज्झाह्मात्परतः पौषधग्रहणं शुद्ध्यति, पर साम्प्रतीनप्रवृत्त्या प्रतिश्लेषनात् अर्वाग्

न कार्यते, किन्तु परत इति ॥ ३०२ ॥

तथा—शौनैश्चरार्दीना राशिपरावर्त्तदिनमिदमिति ज्ञात्वा ये जिनपूजाऽऽवाग्ल्यादिकं कुर्वन्ते तेषां सम्यक्त्वं म्लानं भवति न वा इति  
प्रश्नोऽत्रोत्तरं—शौनैश्चरराशिपरावृत्तिदिने विशेषतः पूजादिकरणे सम्यक्त्वम्लानिर्ज्ञाता नास्तीति ॥ ३०३ ॥

तथा—यद्दिनतः प्रारभ्य दौवा मागस्नानं कुर्वते तद्दिनत एवारभ्य केचन श्राद्धा अपि स्वगृहे उष्णोदकादिना स्नात्वा जिनघासि गत्वा जिनपूजां कुर्वन्ति, मासप्रान्ते जिनभक्त्यर्थं रात्रिजागरणं मोदकादिलम्भनितामपि कुर्वन्ति, मासस्नानमिदमुच्यते, तत्करणे न मिथ्यात्वं स्यादित्युक्त्वा केचन एतद्वृत्त्यं निषेधयन्तः सन्ति, तत्प्रमाणमप्रमाणं वा इति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—माघमासं यावदुष्णोदकादिना स्नानकरणं पूजाकरणं तत्प्रान्ते रात्रिजागरणं लम्भनिकादिकरणं च न युक्तिमत्प्रतिभाति, प्रसङ्गदोषादिभयादनाचीर्णत्वादिति ॥ ३०४ ॥

तथा—मोहनीयकर्मणोऽष्टाविंशति २८ अष्टमा निरन्तरं कर्तुमारब्धाः सन्ति, तदन्तराले चोच्चरितपञ्चमरौरोहिण्यादिकमागतं तदा तैरेवाष्टमैः सरति किं वा पञ्चम्यादेरुपवत्तं पृथक्कर्षणीयमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—मोहनीयकर्मसत्त्वेपु निरन्तरमष्टमेषु क्रियमाणेषु उच्चरितपञ्चम्यादितपो यावन्मुक्त तापत्सति सामर्थ्ये पश्चात्करोति, स्थानकपदगणनसामर्थ्याभावे तु तदङ्करणेऽपि सरति ॥ ३०५ ॥

तथा—पदगणनं एकवारदेववन्दनं वा विस्मृतं द्वितीयदिने पारणातः प्राक् तत्करोति यदि तदा शुद्धयति न वा इति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—प्रथमदिने विस्मृतं पदगणनं एकशो देववन्दनं वा द्वितीयदिने पारणकरणादवर्गा अवधिपूर्व्यादिमहत्कारणं विना न शुद्ध्यति, क्रियमाणं तु हस्यत इति ॥ ३०६ ॥

तथा—पञ्चम्यां प्रतिमाया कच्छाटिकावालन निषिद्धमस्ति, तदाश्रित्य काश्चिद्वक्ति—रात्रौ चतुर्दिक्षु कायोत्सर्गे एव कच्छाटिका न वालनीया, अन्यदा सर्वकालं कच्छाटिका वालनीयैव, तदाश्रित्य कथमस्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—पञ्चमीप्रतिमतोऽबद्धकच्छ इत्येव ग्रन्थे दृष्टमस्तीति कायोत्सर्गकाले एव कच्छाटिका मोच्येति यो वक्ति स एव प्रष्टव्यः—एवंविधान्यक्षराणि नव सन्तीति ॥ ३०७ ॥

तथा—समवसरणस्तोत्रे यक्षवराश्रामराणि बीजयन्तः प्रोक्ततास्सन्ति “करकलिअरुणदंडा सोहमीसाण सुरवरा ताव । दाल्लिति चाम-

राई उभयो पासेसु उद्धृष्टिआ ॥ १ ॥” इति शीलभावनासूत्रद्वयुक्तगाथायां तु सौधम्येनानसुखराः प्रोक्ता दृश्यन्ते, तेन उभयेषा मध्ये किं प्रमाण इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—शीलभावनाग्रन्थोऽत्र हस्तप्राप्त्यो नास्तीति ॥ ३०८ ॥

तथा—तीर्थकृद्धारणानं श्राद्धच ऊर्ध्वस्थिताः शृण्वन्ति इत्यक्षराणि कुत्र सन्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—आचाराङ्गदृष्टौ स्थिय ऊर्ध्वस्थिताः शृण्वन्तीत्युक्तमस्तीति ॥ ३०९ ॥

तथा—श्राद्धच इव देव्योऽपि ऊर्ध्वस्थाः एव व्याख्यानं शृण्वन्त्युतासीना इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—आवश्यकदृष्टौ देव्य ऊर्ध्व स्थिताः शृण्वन्तीत्युक्तमस्तीति ॥ ३१० ॥

तथा—पाश्चात्यरात्रौ साधुसमीपे समागत्य यत् श्राद्धाः प्रतिक्रमणं कुर्वीणा दृश्यन्ते, तस्याक्षराणि कुत्र ग्रन्थे सन्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सामाचार्यनुसारेण यथा पौपधकरणाय पाश्चात्यरात्रौ साधुसमीपसमागमनं दृश्यते तथा प्रतिक्रमणकृतेऽपि तद् युक्तिमद् ज्ञायत इति ॥ ३११ ॥

तथा—घटिकाद्वयादिशेषरात्रिसमये पौपधं करोति कश्चित्, कश्चिच्च वक्ताइ प्रतिलेखनां कृत्वा तत्करोति, तयोर्मध्ये कः शास्त्रोक्तविधिरिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—पाश्चात्यरात्रौ पौपधकाले पौपधविधानमिति मौलो विधिः, कालातिक्रमे तद्विधान त्वापवादिकमिति ॥ ३१२ ॥

तथा—“आवसय ओहनिज्जुत्ति १ पिंडनिज्जुत्ति २ उत्तरज्जयणे ३ । दसकाडिअ ४ चउरोवि, मूलंग्थे सरोमि सया ” ॥ १ ॥ इति श्रीकुलमण्डनसूरिकृतप्राकृतसिद्धान्तस्तवगाथा, एतस्या च मूलग्रन्थाश्चत्वार एते प्रोक्ताः सन्ति, श्रीहीरविजयसूरिप्रसादितप्रश्नोत्तरसमुच्चय-ग्रन्थे च कश्चिद्भेदो दृश्यते, तत्कर्म इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—उक्तगाथागोघनिर्घुक्तेर्निर्युक्तिवेनावश्यकानिर्युक्त्यन्तर्भूतत्वात् यथाग् विवक्षा,

पिण्डनिर्युक्तेस्तु निर्युक्तित्वेनैव पिण्डेपणाध्ययनसूत्रात्पृथग्विषयस्या, प्रश्नोत्तरसमुच्चये त्वोद्यनिर्युक्तेः छुटकपत्रलिखितानुसारेण विभिन्नाविषयत्वात् पृथगणनं, पिण्डनिर्युक्तेस्तु पृथग्विषयैवेति सर्वमवदातम् ॥ ३१३ ॥

तथा—“ तिपयाहिणापुरस्सर महावीरजिणेसरं गणहरे अ । [ श्रेणिकः ] पणिवइऊण नहरिहं ईसाणादिसाए निवेसेइ ” ॥ १ ॥ इति श्रीलभावनासूत्रहृत्युक्तगाथाया अर्थानुसारेण यथा श्रीमहावीरजिनस्य प्रदक्षिणात्रिकं प्रदातव्यं, तथा गणधराणामपि पृथग् प्रदातव्यं न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—तीर्थकरप्रदक्षिणात्रयं कुर्वतो गणधराणामपि तत्रयं सैहव भवतीति ज्ञायते ॥ ३१४ ॥

तथा—केचन वृद्धशालिका इत्थं वदन्ति ‘ इरिआकुसुमिणसगो ’ इति गाथाद्वयोक्तविधिद्वयं मार्गादिकारणे श्रद्धालुर्न करोति तद्युक्तमयुक्तं वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं मार्गादिकारणे विधिद्वयसत्यापनं युक्तमेवेति ॥ ३१५ ॥

तथा—प्रतिष्ठायां प्रतिमाया नेत्रोन्मीलकैऽङ्कने मधु क्षिप्यते न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—साम्प्रतं प्रतिष्ठायामङ्कने मधुशब्देन शर्कराऽभिधीयत इति सैव प्रक्षिप्यते ॥ ३१६ ॥

### अथ पाण्डितजयवंतर्षिगणिकृतप्रश्नौ तदुत्तरे च,

यथा—चतुर्मासकमध्ये विजयदशमी यावत् खण्डाविहरणं कथं न शुद्धचर्तति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—परम्परया खण्डाविहरणं निषिध्यते इति ॥ ३१७ ॥  
तथा—प्रतिकमणमध्ये विद्युत्प्रदीपादिप्रकाशः शरीरे लगति तदाऽशिकायविराधना मन्यते तत्तपाकृतग्रन्थेऽस्त्यन्यत्र वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—आवश्यकनिर्युक्तिकायोत्सर्गाध्ययने “ अगणीउ छिदिज व, बोहिअ खोभा य दीहडक्को वा । आगारेहि अभग्गो उत्सग्गो,

एवमार्हं ॥ १ ॥ ” एतद्वाथावृत्तिमध्ये ‘ अगणि ’ ति यद्वा ज्योतिः स्पृशति तदा प्रावरणाय कल्पकग्रहण कुर्वतोऽपि कायोत्सर्गमङ्गो न भवतीति प्रतिपादितमस्तीति ॥ ३१८ ॥

### अथ पण्डितभक्तसागरगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च,

यथा— स्वाद्याः कथयन्त्यस्माकं पौषधिकाः । रात्रेस्तुर्ययामे समुत्थाय पौषधमध्ये सामायिकं कुर्वन्ति, तदक्षराणि च प्रतिक्रमणसूत्रचूर्णौ सन्ति, तेन श्रीमता श्रीपूज्याः सामायिकं कथं न कारयन्तीति प्रश्नोऽत्रोच्यते— रात्रिपौषधमध्ये पाश्चात्यरात्रौ सामायिककरणमाश्रित्य यानि चूर्ण्यक्षराणि सन्ति तानि सामाचारीविशेषेण समर्थनीयानि न तु दूषणीयानि, तस्याः शिष्टकृतत्वात्, न चात्मना तदक्षरदर्शनेन तत्कर्तव्यतापत्तिः, सर्वेऽपि सामाचारीविशेषाः सर्वैरपि अवश्यंभावेन विधेयां एवेति शास्त्राक्षरानुपलम्भादिति । किञ्च— खरतरपक्षीयाणां चूर्णिगतैकवचनं युक्तितमन्न प्रतिभाति, तद्वत्सकलसामाचार्यस्यैरकरणात्, यदि च तेषां चूर्णेः प्रामाण्यमेव तदा तद्वत्ता सकलाऽपि सामाचारी तैः कथं न विधीयत इति बहु वक्तव्यमस्तीति ॥ ३१९ ॥

तथा— अभव्यानां सर्वथा निर्वर्णश्रद्धानराहित्यवद्देवलोकादिपरलोकश्रद्धानस्य राहित्यं साहित्यं वा ? किञ्च— जीवादिश्रद्धानमाश्रित्याङ्गारमर्हकाचार्यसदृशाः सर्वेऽभव्या उत नेति, किञ्च— सर्वदाध्यवसायस्य सादृश्यमुत न्यूनाधिकत्वं वा ? यदि सर्वेषामध्यवसायसादृश्यं स्यात्तदा तेषामप्यनन्तशो ग्रन्थिदेशे समागमनं प्रोक्तमस्ति तत्कथं सम्भवति, तदध्यवसायभेदाविनाभावित्वात्, किञ्च— प्रतिक्रमणसूत्रवृत्तावभव्यस्य भिन्नानि दश पूर्वाणि प्रोक्तानि सन्ति तत्कथं सम्भवति, यतः प्रवचनसारोद्धारादौ पूर्वलब्धेर्निषेधः कथितोऽस्ति, अपि चागमव्यवहारिणामन्तःप्रतिवृत्तिः

तेषां कथं सम्भवतीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सर्वेषामभ्यत्यानां मुक्तिश्रद्धानं न भवत्येव, देवलोकादिश्रद्धानं तु केपाश्चिद्वत्यपि, विशेषावश्यकदृश्यादौ तथोक्तेः । तथा अभव्यानां अध्यवसायवैचित्र्यं स्यादेव, यतो नवमयैवेयकादिकं सप्तमनरकादिकं च यावद्रच्छतां शुक्लकृष्णादिलेश्यावतामुभयेषामपि अध्यवसायसाम्यं न घटते, कार्यभेददर्शने कारणभेदाभ्युपगमस्य न्यायसिद्धत्वात्, सर्वेऽप्यभव्या-अङ्कारमर्दकाधार्यसदृशा एव भवन्तीत्यपि शास्त्रे दृष्ट नास्ति । तथा अभव्यानां पूर्वगतलब्धिमाश्रित्य पूर्वाणि धारयन्तीति दशचतुर्दशपूर्वविद इत्यावश्यकबृहद्वृत्तिवचनात् अभिन्नदशपूर्वधरादयः पूर्वगतलब्धिमन्तोऽवसीयन्ते, नत्वन्ये, अत एवाभव्यानां भिन्नदशपूर्वधराश्रुतलभेऽपि शास्त्रान्तरोक्तपूर्वगतलब्धिनिषेधो युक्तिमानेव । तथा तेषामागमव्यवहारित्वेऽपि न काऽपि क्षितिः, भव्या एवागमव्यवहारिण इत्यक्षराणां शास्त्रेष्वदर्शनात् ॥ ३२० ॥

तथा—यो मोक्षार्थं क्रिया करोति स क्रियावादीति प्रघोषः सत्योऽमत्यो वा ? यदि सत्यस्तर्हि मोक्षार्थं जीवघातं कुर्वत्सु सत्त्वपि तुरुष्कादिफरिङ्गिकर्षयन्तसर्वमिथ्यादृष्टिषु क्रियावादित्वं स्यात्, तत्तु केपाश्चिदात्मश्रद्धानामत्रत्यदुण्डिकखाद्यानां च चेत्तसि न प्रतिभासते, प्रत्युत दुण्डिका इत्थं कथयन्ति श्रीमता ये ये गीतार्था, अत्र समायान्ति ते सर्वेषां क्रियां कुर्वता मिथ्यादृशा क्रियावादित्वं कथयन्ति, तदसमीचीनं श्रद्धान्, ते तु दुण्डिकाः सम्यग्दृशां सम्यक्त्वाभिमुखानां च क्रियावादित्वं कथयन्ति, नान्येषामिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यो मोक्षार्थं क्रिया करोति स क्रियावादीति प्रघोषः सत्य एव लक्ष्यते, न च कोऽपि मोक्षार्थं जीवघातादिकं करोति, यतः तुरुष्काणामपि मूलशास्त्रेषु जीववधस्य निषिद्धत्वात्, याज्ञिकानामपि स्वर्गाधार्थमेव यज्ञस्य प्ररूपणात्, तथा सम्यग्दृशा एव सम्यक्त्वाभिमुखा एव वा क्रियावादिन इत्यक्षराणि शास्त्रे न सन्ति प्रत्युत भगवतीष्टावित्युक्तमस्ति—एते च सर्वेऽप्यन्यत्र यद्यपि मिथ्यादृष्टयोऽभिहितास्तथापीहाद्याः सम्यग्दृष्टयो ग्राह्याः, सम्यगस्तित्ववादिनामेव तेषां समाश्रयणात्, भगवतीसूत्रं च विशेषपरं, तेन तत्र क्रियावादिपदेन सम्यग्दृष्टयो गृहीतः, अन्यत्र तु मिथ्यादृष्टयोऽपि, तत उभयेऽपि क्रियावादिन इति तत्त्वम् ॥ ३२१ ॥



तथा—प्रज्ञापनातृतीयपदवृत्तौ क्षेत्रानुसारेण चिन्त्यमानाः पुद्गललैलोक्यस्पर्शिनः सर्वस्तोका इत्युक्तं, तत्र के ते ? कथं वा त्रैलोक्य-  
व्यापिनो भवन्तीति 'प्रश्नोऽत्रोत्तरं'—महास्कंधा द्वेधा सचित्ताचित्तभेदात्, तत्र कैवल्यसमुद्भावे सकललोकव्यापी अनन्तानन्तकर्मपुद्गलमयो महा-  
स्कन्धः सचेतनजीवाधिष्ठितत्वात् सचित्तमहास्कन्ध उच्यते, तदितरत्पुद्गलमयस्तु विव्रसापरिणामजनितः सकललोकव्याप्यचित्तमहास्कन्धः, एवमेत-  
केऽपि कैवल्यदृष्टाः सकललोकव्यापिनो महास्कन्धा द्वेधाः, यथेतद्विवक्षा भूयस्यपेक्षा तदा विशेषावश्यकवृत्तौ पीठिकायां द्रव्यवर्गणाधिकारे  
'विलोकनीय इति ॥ ३२२ ॥

### अथ पण्डितशुभंकुशलगणिकृतप्रश्नस्तदुत्तरं च--

यथा—सम्प्रति तपागच्छीयश्चाद्धा यथेयापथिकीप्रतिक्रमणपूर्वकं सामायिकमुखपोतिकां प्रतिलेखयन्ति तथा क शाले प्रतिपादितमस्तीति  
प्रश्नोऽत्रोत्तरं—महानिशीथे हरिभद्रया दशैवैकालिकद्वंद्वौ च स्पष्टतया सर्वमपि चैत्यवन्दनाद्यनुष्ठानमैर्यापथिकीप्रतिक्रमणपूर्वकमेवैकमस्ति,  
तन्मध्ये सामायिकमुखपोतिकाप्रतिलेखनमप्यायातेमेव, तेन तदपीर्यापथिकप्रतिक्रमणपुरस्सरमेव विधेयमिति तत्त्वम् ॥ ३२३ ॥

### अथ पण्डितप्रेमविजयगणिकृतप्रश्नौ तदुत्तरे च--

यथा—जिना गृहस्थावस्थायां केवलिन साधु वा प्रणमन्ति नवा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—निषेधो ज्ञातो नास्ति ॥ ३२४ ॥  
तथा—पटुपञ्चाशद्विकन्यकाना कुमारीति सज्ञा कथमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अत्र भवनपतयः सर्वेऽपि प्रायः क्रीडाप्रिया भवन्तीति कुमार-  
उच्यन्ते, तथा एता दिक्कुमार्योऽपि भवनपतित्वेन तद्वद्बोद्ध्या इति ॥ ३२५ ॥

## अथ पण्डितमुनिविमलगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च—

यथा—प्रतिवासुदेवस्य कियन्ति कानि च रत्नानि स्युरिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—प्रतिवासुदेवस्य रत्नसङ्ख्याया रत्नानां च नियमः शास्त्रे दृष्टो नास्ति, तेन चक्रादीनि तानि यथासम्भवं भविष्यन्तीति सम्भाव्यत इति ॥ ३२६ ॥

तथा—किञ्चिपसुराणां प्रथमद्वितीयकल्पपाधस्तृतीयकल्पाधः पञ्चकल्पाधश्च स्थितिरुन्ताऽस्ति, तत्राधःशब्देन किमभिधीयते, अधस्तनप्रस्तटं तस्मादप्यधोदेशो वा १, अन्यच्च द्वात्रिंशदादिलक्षविमानानां मध्ये साधारणदेवीनामिवैतेषां कतिचिद्विमानानि सन्ति विमानैकदेशे विमानाद्बहिर्वा तिष्ठन्ति, चाण्डालस्थानीयत्वात्तेषां मध्ये वासोऽनुचितः, विमानानामपान्तराले भुवोऽभावाद्बहिरपि तद्वासः कथं घटत इति किञ्चिपणां वासस्थानं ग्रन्थाक्षरपूर्वकं प्रसोद्यमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—किञ्चिपसुराणां वासः कल्पद्विःक्रादीनामधो भणित इत्यत्राधःशब्दस्तत्स्थानवाचको ज्ञेयः, न चात्राधःशब्दः प्रथमप्रस्तटया घटते, तृतीयपञ्चकल्पसत्कालिञ्चिपिकामराणां तत्प्रथमप्रस्तटयोऽस्त्रिसागरोपमत्रयोदशसागरोपमस्थितयोरसम्भवात्, तथा तद्विमानानां सङ्ख्या शास्त्रे नोपलभ्यते, तथा देवलोकगतद्वात्रिंशलक्षादिविमानसङ्ख्याया मध्ये तद्विमानानां गणनं न सम्भाव्यते, तेषां कल्पद्विकादीनामधो वासाभिधानात्, तत्त्वं तु सर्वविद्वेद्यमिति ॥ ३२७ ॥

तथा—‘अंमि उ पीलज्जते’ इति गाथासंयश्रुतार्थेन बन्बूलादीनां द्विदलत्वं नोत्थाप्यते, प्रत्युत व्यवस्थाप्यते, निःस्नेहत्वात्, तेनैतद् द्विदलतान्यपोहयैतद्वाथाभावार्थः प्रसाद्य इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यस्मिन्पीड्यमाने सति स्नेहो न भवति, दालिकरणे द्विदलतासम्भवे सतीति शेषस्तद्वाच्यादिकं पूर्वोच्चार्यो द्विदलं ब्रुवन्ति, द्विदले उत्पन्नमपि स्नेहयुतं द्विदलं न भवतीति प्रस्तुतगाथाभावार्थो व्यक्त एवास्ति, तेन बन्बूलादीनामिज्जासु स्नेहसद्भावात्तेषां द्विदलताऽभावो बोध्य इति ॥ ३२८ ॥

तथा—उपासकदशज्ञे योगशास्त्रे च श्राद्धाना पञ्चाचारिचाराः कथं नोक्ता इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—उपासकदशज्ञयोगशास्त्रयोः सम्यक्तत्त्वमूलकव्रतानामेवाभिधानमुपक्रान्तत्वात्तद्विचारा एवोक्ता इति ॥ ३२९ ॥

तथा—आमगोरसस्पृक्तद्विदलं इत्यत्र गोरसशब्देन किं व्याख्यातमस्ति इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—गोरसशब्देन दुग्धं दधि तर्कं च त्रयमपि परम्परयाऽभिधीयमानमस्ति, योगशास्त्रद्वयौ गोरसशब्दार्थो व्याख्यातो नास्ति ॥ ३३० ॥

तथा—सन्धानस्य योगशास्त्राभिप्रेयेण संसर्के सति, त्याज्यत्वं, प्रवचनसारोद्धारे तु ससक्तत्वविशेषणं नास्ति, तत्र कोऽभिप्रायः ? सन्धानं च कथा रीत्या कृतं संस्थात् कथा रीत्या च न इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सन्धानस्य त्याज्यत्वे हेतुः प्रायः संसक्तत्वेवेति, प्रवचन-सारोद्धारे तु ससक्तमर्थल्लभ्यत एव । सन्धानं न जलादिजनितार्द्रत्वे सति भवतीति वृद्धव्यवहारोऽस्तीत्यवसेयः ॥ ३३१ ॥

तथा—पाक्षिकप्रतिक्रान्तौ श्राद्धैरुच्यमानास्तपआचाराद्यतीचाराः साधुभिः श्रूयन्ते, केवलसाधवश्च प्रतिक्रामन्तस्तानतीचारान् कथयन्ति न वा ? साम्प्रत तु न केचित्कथयन्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—केवलसाधुभिः पाक्षिकप्रतिक्रमणे क्रियमाणे तपआचाराद्यतीचारा यद्यायन्ति तदा स्वयं कथनीयाः, तत्प्रवृत्तिरपि दृष्टाऽस्तीति ॥ ३३२ ॥

तथा—श्राद्धाना चरवैलंकाग्रहण 'तदपि अकरणे' ति विना व्यक्तरित्या नत्रचिच्चूर्णयोदावभिहितं स्यात् तदा तान्यक्षराणि प्रसाद्यानीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—'साहूण सगासाओ रयहरण निसिजं वा मगति, अह घरे तो से उक्मगहिरयहरण अत्थि' इत्यादिकान्यवश्यकचूर्णयोदौ रजोहरणाक्षराणि सन्ति, श्राद्धानां च रजोहरणं चरवलक एवेति ॥ ३३३ ॥

तथा—जीवाभिगमादौ सूत्रे आरात्रिकमङ्गलप्रदीपाक्षराणि यदि स्युस्तदा तानि प्रसाद्यानीति मदनोऽत्रोत्तरं—जीवाभिगमादिसूत्रेष्वारात्रिक-  
मङ्गलप्रदीपाक्षराणि साक्षान्नोपलभ्यन्ते, प्रकरणेषु तु बहुषु सन्ति, तत्रापि विप्रतिपत्तिः पञ्चाङ्गीमङ्गीकुर्वतां काऽपि नास्तीति तात्पर्यम् ॥ ३३४ ॥  
तथा—खानिनोऽपि हिङ्गुलः ‘जोअणसयं तु गंतुं’ इत्यक्षरबलात् प्रवहणादागतोऽचिन्तीभवति, कुत्रिमस्य तदचिन्तत्वे किं वाच्यं ?  
तथापि तस्य सचिन्तताव्यवहारः क्रियते, तत्र को हेतुरिति मन्त्रोऽत्रोत्तरं—हिङ्गुलः खानिनो योजनशतादेः परतः आयातत्वात्कुत्रिमश्च सन्नत  
एवोभावप्यचिन्तौ ज्ञायते, तदग्रहणं तु अनाचीर्णतया, तेन साम्प्रतं संवर्तितः सन् गृह्यत इति यतिव्यवहार इति ॥ ३३५ ॥

### अथ पण्डितदेवविजयगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च—

प्रश्ना—‘जत्थ जलं तत्थ वणं’ इति व्याप्तिः सावधारणाऽन्यथाऽपि वा ? तदपि वनं किं प्रत्येकरूपं साधारणं उभयं वा ? तदुभयमपि  
किं सूक्ष्मं बादरं तदुभयमपि वा ? तथा ‘जत्थ जलं’ मिति ‘वचोयुक्ता कुम्भादिगतजलव्यापारणे श्राद्धस्य वनस्पतिः कायविराधनापि लगति न वा  
इति मदनोऽत्रोत्तरं—इयं व्याप्तिः सावधारणा ज्ञायते श्रीदंशवैकालिके पिण्डैपणाध्ययने ‘साहस्रु निखिखित्ताणं’ इत्यादि गाथावृत्तौ तथोक्तेः ।  
तथा स वनस्पतिर्बादरसाधारणप्रत्येकरूपो ज्ञायते । तथा कुम्भादिगतजलव्यापारणे वनस्पतिविराधना भवति, परं तत्प्रत्याख्यानमङ्गो न भवति,  
तस्य व्यावहारिकं वनस्पत्याश्रितत्वादिति ॥ ३३६ ॥

तथा—उपधानावाहिनां पञ्चमङ्गलमहाश्रुतस्कन्धपाठे विराधनायामनन्तसंसारवाप्तिः फलं, तदाश्रित्य किमादिश्यते इति मदनोऽत्रोत्तरं—  
उपधानावहेऽनन्तसंसारिता महानिशीथे उक्ता, परं तत्सूत्रमुत्सर्गनयाश्रितं, तेन यो नास्ति कस्मिन्नुपधानमनन्तसंसारनिषेधः न स्य मेति ज्ञेयम् ॥ ३३७ ॥

तथा—पौषधिकस्य भोजनाक्षराणि क सन्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—पौषधिकस्य भोजनाक्षराणि पञ्चाशकचूर्णौ श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्रचूर्ण्यदौ व्यक्तानि सन्तीति ॥ ३३८ ॥

तथो—‘वाउहसदृमुद्दिपुण्णिमासिणीसुं पडिपुणं पोसहं’ इत्यत्र श्रीसूत्रकुताङ्गवृत्तौ उद्दिष्टशब्देन कल्याणकतिथय उक्ताः, पौर्णमासी-शब्देन तु तिस्रश्चतुर्मासकपौर्णिमा उक्ताः, राज्ञमंश्रीयवृत्तौ तु उद्दिष्टशब्देनामावास्या पौर्णमासीशब्देन सामान्येन पूर्णिमा उक्तास्तदयं कथमर्थभेद इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सूत्रकुताङ्गवृत्तिराजमंश्रीयवृत्तिव्याख्यानं चरितानुवादपरं, न च तत्साधकं बाधकं वा भवति, भगवतीष्टित्तियोगशा-स्त्रस्य्यादौ तु चतुष्पर्वधिकारे सामान्यतः पूर्णिमाऽमावास्ये उक्तं स्त इत्यत्र श्रावकाना तत्र ते ज्ञेये इति ॥ ३३९ ॥

तथा—सिद्धति ‘पडिपुणं पोसहं पालेमाणे’ इति पाठः दीप्तया प्रतिपूर्णमहोत्रमिति व्याख्यातं, ततः केवलदिवसपौषधाक्षराणि न्व सन्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—उत्तराध्ययनसूत्रपञ्चमाध्यये ‘अगारिसामाङ्गां’ एतद्वाथावृत्त्यनुसारेण प्रतिपूर्णपौषधकरणं प्रायिकं ज्ञेयमिति ॥ ३४० ॥

तथा—पौषधिकः पंडपट्टिकालिखितप्रतिमां वासेन पूजयति नवा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—पौषधिकः कारणं विना पट्टादिक न पूजयतीति ज्ञेयमिति ॥ ३४१ ॥

तथा—कर्ममर्ग्यवृत्तौ ‘जातिस्मरणमपि अतीतसह्यातभवाऽवगमस्वरूप मतिज्ञानमेव’ स्युक्तमस्ति “पुव्वभवा सो पिच्छइ, इकं दो तिन्नि जाव नवगं वा । उवरि तस्स अवि सओ, सहावओ जाइसरणस्स” ॥ १ ॥ इति गाथायां तु नवैव भवा जातिस्मरणस्य विषयस्तत्कथमिति प्रश्नो-

॥ ८४ ॥

ऽत्रोत्तरं—जातिस्मरणवान् आचाराङ्गदृश्याद्यभिप्रायेणातीतान् सह्यतात् भवान् पश्यतीति ज्ञायते, कर्मग्रन्थवृत्तावपि स एवाभिप्रायोऽस्ति 'पुव्वमवा सो पिच्छइ' इयं गाथा तु छुटितपत्रस्था न तु तथाविधग्रन्थस्या, तेन निर्णायिका न भवतीति ॥ ३४१ ॥

तथा—“छम्मासाज्जसे, उपव्वं जेसि केवलं नाणं । ते नियमसमुत्थाया, सेस समुत्थाय भयणिज्जा” ॥ १ ॥ इति दीपालिकायां “यः पण्मासाऽधिकायुष्को, लभते केवलोद्गमम् । करोत्यसौ समुद्घातमन्ये कुर्वन्ति वा न वा ॥ १ ॥” गुणस्थानप्रकरणे “येस्य पुनः केवलिनः, कर्म भवत्यायुषोऽतिरिक्ततरम् । स समुद्घातं भगवानुपगच्छति तत्समीकर्तुम्” ॥ १ ॥ इति प्रशमरताविति त्रयाणां मध्ये कः केवली-नियमतः समुद्घातं करोति कश्च न करोतीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—प्रज्ञापनामृत्रष्टत्तिप्रश्नसरौद्धारष्टत्तिप्रश्नसरमादौ सामान्यतः समुद्घातस्वरूप प्रोक्तमस्ति, न तु कश्चिद्विशेषो, गुणस्थानकक्रमारोहसूत्रे तु यः पण्मासाधिकायुष्क इत्यादि विशेषोऽपि दृश्यते, अत्र मतंभेदस्सम्भाव्यते, तच्च तु केवलिनो विद्वन्ति, दीपालिकामतं तु गुणस्थानक्रमारोहदृष्टत्तिकारेण तद्गाथायाः स्वोक्तसमर्थनाय सामान्येन दर्शितत्वात्तदनुयायेव, परस्परं तदुपपत्तिश्च ‘छम्मासाज्जसे’ इत्यत्र प्राकृतशैल्या पण्मासायुःशब्दात् सप्तम्येकत्रचनलोपे शिष्यते—विशिष्यतेऽधिक्रियते इति शेष इति शेषशब्दस्याधिकवाचकत्वे च किञ्चिदाधिके पण्मासायुपीत्यर्थकरणेन ज्ञेया, पण्मासशब्ददधिकशब्दस्य लोपेन वा इति ॥ ३४२ ॥

तथा—नारजजीवियो निगोदजीवियो वा नारकजीवानामिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—निश्चयतो नारकजीवियो निगोदजीवानां जन्ममरणाद्येकशरीरानन्तजीवावस्थानादिरूपं महद् दुःखं, परं तन्मत्तमूर्च्छितादीनामिव नातिदुस्सहं, व्यवहारतस्तु निगोदजीवियो नारकजीवानां परमाधार्मिकं तवेदनादिरूपं महद् दुःखमिति वृद्धवाद इति ॥ ३४३ ॥

तथा—चिरकालीनरूपकालीननिगोदजीवाना दुःखं प्रति किं साम्यं हीनाधिकत्वं वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—तेषा व्यथहारेण समानं दुःखमवसीयते, निश्चयस्तु केवललग्न्य इति ॥ ३४४ ॥

तथा—अनादिनिगोदजीवाः किञ्जनितबहुकर्मवशेन तत्र तिष्ठन्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—प्रवाहापेक्षया अनादिकर्मसम्बन्धेन तत्र तिष्ठन्तीति ॥ ३४५ ॥

तथा—केचन निगोदजीवा लघुकर्म्मभूय व्यवहाराशौ समायान्ति, तेषा तत्र लघुकर्म्मभवेने किं कारणमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—तथा-मन्यत्वपरिपाकादिकं तेषा लघुकर्म्मभवेने कारणमिति ॥ ३४६ ॥

तथा—श्रीगजप्रश्रयी सूर्याभस्य शीघ्रगमननाम्नो वैक्रियविमानस्यान्तर्भूमिकावर्णनाधिकारे पञ्चवर्णजरत्नवर्णने पञ्चवर्णा अशोक-कणवीरबन्धुजीवाः समानीताः सन्ति, वृत्तौ च प्रतीता इति व्याख्यातं, ते वृक्षाः के १, किं च पुष्पादिकं तेषां पञ्चवर्णं भवतीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अशोकादयो वृक्षा जीवाभिगममष्टन्यादिषु पञ्चवर्णा व्याख्याताः सन्ति, नतु तत्पुष्पादीनि, तेने तान्यपि तदनुसारेण ज्ञेयानीति ॥ ३४७ ॥

तथा—‘सज्ज्ञाय संदिसावुं उपधि संदिसावुं’ इत्यादिषु संदिसावुंशब्देन किमुच्यते? इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—संदिसावुं इत्यस्यायमर्थः—सन्देशयामि—स्वाध्यायकरणोपधिप्रतिषेधनयोरादेशं मार्गयामीति ॥ ३४८ ॥

तथा—वर्त्तमानचतुर्विंशतितीर्थकृतां ‘पडमाभवासुज्जा रस्ते’ ति रक्तादिवर्णविभागः किं शरीरेषु दृश्यमान उत ध्यानाद्यर्थे कल्पना-मात्रमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—एतद्वाथोक्तवर्णविभागस्तीर्थकृता शरीरगतो ज्ञेय इति ॥ ३४९ ॥

तथा—भरतैरवतर्थात्कृद्वाच्यतिरिक्तानां तीर्थकृतां कीदृग् वर्णविभाग इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—पञ्चवर्णान्यतरवर्णरूपो वर्णविभागो ज्ञेयोऽत्रापि पूर्वोक्त एव हेतुरिति ॥ ३९० ॥

तथा—श्रीवज्रस्वामिना पटविद्यया सङ्घः सुभिक्षदेशे नीतः, तत्र सङ्घः किं चतुर्विधः साधुसाधोमात्रसमुदायो वा ? पटविद्या च किं स्वरूपेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—परिशिष्टपूर्वाद्युक्तवज्रस्वामिसम्बन्धानुसारेण चतुर्विधसङ्घोऽवसीयते, न तु साधुसाध्वीरूप एव, तथा—यथा चक्रवर्त्ति-चर्मरत्नवद्विषयविस्तारः पटो भवति सा पटविद्येति ॥ ३९१ ॥

तथा—देवानां भवधारणीयेनापि वपुषा कादाचित्कमत्रागमनं सम्भवति न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सङ्गमकसुरसम्बन्धाद्यनुसारेण देवानां भवधारणीयेनापि वपुषा कदाचिदत्रागमनं ज्ञायत इति ॥ ३९२ ॥

तथा—वंदिचतुष्टौ ‘संखा कंखा’ इति गाथावृत्तौ एकोमाशीतिमिथ्यात्वस्थानेकेषु षट्षष्टितमस्थाने ‘सर्वमासेषु वा तांसूपवासादीनि’ सर्वास्वेकादशीषु उपवासकरणे कथं मिथ्यात्वमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—चतुर्दश्यष्टमीज्ञानपञ्चमीषु नियततपोदिनेषु उपवासमकृत्वा यदि सर्वास्वेकादशीषु उपवासं करोति तदा मिथ्यात्वस्थानं भवतीति ज्ञायते इति ॥ ३९३ ॥

तथा—गच्छान्तरीयसम्यक्त्वत्रैश्वर्यविरत्युच्चारविधिपत्रेषु सम्यक्त्वोच्चारालापकप्रान्तवत् द्वादशव्रतोच्चारालापकप्रान्तेषु अपि रायाभियोगेणमित्यादिषडाकारोच्चारणमस्ति तद् यौक्तिकमन्यथा वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—आवश्यकनिर्युक्त्युपासकदशाङ्गदौ श्रावकाणां सम्यक्त्वोच्चार एव षडाकारा उक्ताः सन्ति, न तु द्वादशव्रतोच्चारै, तेन सम्यक्त्वोच्चार एव राजाभियोगादिषडाकारोच्चारणं युक्तिमप्रतिभातीति ॥ ३९४ ॥



तथा—वीरशासने आचार्यभूयापि किंसङ्ख्याका नरकगामिनः सूरय उक्ताः सन्ति । तदक्षराणि च कुत्र ग्रन्थ इति सव्यासं प्रसाधयामिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—श्रीवीरशासने एतावत्सङ्ख्याका आचार्या नरकगामिनः इति ग्रन्थे दृष्टं न स्मरति, किञ्च “ तीआणागयकाले केई होहिंति गोअमा सूरी । जेसिं नामगहणे नियमेण होइ पच्छित्तं ” ॥ १ ॥ इति श्रीगच्छाचारप्रकीर्णके प्रोक्तमस्तीति ॥ ३९९ ॥

तथा—द्रव्यकथायाद्यष्टभेदात्मनि ‘ जीवाजीवानां द्रव्यात्मे ’ त्यत्राजीवेष्वत्मात्वांशः कथा युक्त्या इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अतस्मात् सातत्येन गच्छति तांस्तान् पर्यायानित्यात्मा इति शब्दश्रुत्युत्पत्तिमाश्रित्य अजीवेष्वपि पुद्गलादिषु उपचाराद् द्रव्यात्मत्वव्यपदेश इति ॥ ३९६ ॥

### अथ वटपल्लीयपण्डितपद्मविजयगणिकृतप्रश्नांस्तदुत्तराणि च—

यथा—सामाचार्या चत्वारि पञ्च वा योननानि गन्तुमागन्तुं च कल्पते इत्युक्तमस्ति तद्गमनागमनमाश्रित्य किं वा गमनमाश्रित्यैव वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—चतुर्मासक्रमध्ये शानौषधादिककारणे चत्वारि पञ्च वा योजनानि गच्छति, तान्येवांगच्छति, न तु शानौषधादिकार्ये सम्पूर्णं सति क्षणमात्रमपि तत्र तिष्ठति, तथा—गोचर्या तु यत्सकोशं योजनमस्ति तद्गमनाऽऽगमनाभ्यां क्षेयमिति ॥ ३९७ ॥

तथा—‘ निद्रासमयमासाद्य, ताम्बूलं वदनाचर्यजेत् । मालात्पुण्ड्रं खनौ मूर्धनः, पल्यङ्कात्प्रमदां त्यजेत् ॥ ४ ॥ ’ इत्यत्र को हेतुरिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—ताम्बूलात्यागे मुखदौर्गन्ध्यं १, तिलकात्यागे आयुषो हानिः २, खगत्यागे सर्पभयं ३, प्रमदाऽत्यागे बलहानिः ४, इति हेतुः चतुष्टयी अस्तीति ॥ ३९८ ॥

तथा—देवो देवी मूलशरीरेण भुङ्क्ते उत्तरवैकियेण वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—उभयथापि योगो भवत्तत्पिक्शराणि श्रीभगवतोप्रज्ञापना-जीवाभिमरमराजप्रश्नीयप्रमुखग्रन्थेषु सन्तीति ॥ ३९९ ॥

तथा—अद्यतननिष्पन्नः कटाहविकृतिर्भुज्यते तस्याः कियन्त्यो विकृतयो लगन्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—एका कटाहविकृति-  
लगतीति ॥ ३६० ॥

तथा—देवा मूलशरीरेण नम्रास्तिष्ठन्ति : किं वा वक्ष्याणि परिदधतीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—मूलशरीरेण वस्त्रपरिधाननिषेधो  
ज्ञातो नास्तीति ॥ ३६१ ॥

तथा—दन्तधावनं कल्पवर्त्तं च विधाय क्षामणकप्रतिक्रमणादिकं कर्तुं शुद्धयति न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—कारणे वेलामध्ये क्षामणक-  
प्रतिक्रमणादि कर्तुं शुद्धयतीति ॥ ३६२ ॥

### अथ पण्डितमेघविजयगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च ।

यथा—एकादशीवृद्धौ श्रीहीरविजयसूरीणा निर्वाणमहिमपौषधोपवक्षादिकृत्यं पूर्वस्यामपरस्था वा किं विधेयमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—  
औदिक्येकादश्या श्रीहीरविजयसूरिनिर्वाणपौषधादि विधेयमिति ॥ ३६३ ॥

तथा—सप्तदशमेदूजादौ श्रीजिनगृहे चैत्यवन्दनं कृत्वा यदोषविश्यते तदा किमिष्याप्यधिकीप्रतिक्रमणपूर्वकमेवान्यथा वा इति  
प्रश्नोऽत्रोत्तरं—मुहूर्त्तोद्यवस्थानसम्भावनायैर्यापथिकी प्रतिक्रम्यतेऽन्यथा तु यथावसरमिति ॥ ३६४ ॥

तथा—केवलस्थापनार्थनिकटे प्रतिक्रमणं कुर्वन्तः श्रद्धालवः क्षामणावसरे कति वारं क्षामयन्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—केवलस्थापना-  
चार्याग्ने प्रतिक्रमणे श्रद्धा एका क्षामणा कुर्वन्तीति ॥ ३६५ ॥

तथा—दृथग् श्राद्धानां मुखवल्किप्रहणवर्णाः कुत्र सन्तीति प्रश्नोऽत्रोच्चरं—अहंसमवण्यंगो, करजुअविहिधरिअ पुत्तिरयहरणो । परिचितिअ अइयारे, जहक्कमं गुरुपुरो विअडे ॥ १ ॥ इयं गाथा श्रावकप्रतिक्रमणाधिकारे योगशास्त्रतृतीयप्रकाशवृत्तौ वर्तते, एतदनुसारेण केवलस्य श्राद्धस्य मुखवल्किप्रहणक्षराणि ज्ञेयानि, अनुयोगद्वारसूत्रवृत्त्यादावपि व्यक्तान्येव तानि सन्तीति ॥ ३६६ ॥

तथा—मतान्तरथि वेषधरे मिलिते प्रणते वा केचनात्मीयवाच्यमा मस्तकेन वन्दामीति वन्दे इति कथयन्ति, केचन न कथयन्ति, तत्र या रीतिः सा प्रसाद्येति प्रश्नोऽत्रोच्चरं—अग्रतः पक्षान्तरैरात्मनां प्रणामकरणे यथावसरं विधेयमिति ॥ ३६७ ॥

तथा—द्वादशव्रतपौषधवहने श्राद्धानां प्रारम्भवासरे किमाचामांस्त्व कार्यतेऽयं चैकांशुनकं तथा भोजने चार्द्रिशाकादिग्रहणं कल्पते न वा इति प्रश्नोऽत्रोच्चरं—श्राद्धानां द्वादशव्रतपौषधवहने यथाशक्ति तपो विधेयं, तथाऽर्द्रिशाकं भक्षणं तु कारणं विना न कल्पते इति ॥ ३६८ ॥

### अथ पण्डितश्रुतसागरगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च ।

तथा—मूलकपत्राणामनन्तकायित्वमुत प्रत्येकत्वमिति प्रश्नोऽत्रोच्चरं—मूलकर्मस्ये कन्दस्यैवानन्तकायिकत्वं, न तु तत्पत्रादीनामिति ॥ ३६९ ॥

तथा—उत्सूत्रभाषिणां सम्यग्दृष्टित्वमुत मिथ्यादृष्टित्वमिति प्रश्नोऽत्रोच्चरं—उत्सूत्रभाषिणां मिथ्यादृष्टित्वमाश्रित्य विप्रातिपासिः कापि नास्ति, सूत्रोक्तस्यैकस्याप्यरोचनादक्षरस्य भवति नरः । मिथ्यादृष्टि रित्यादिवचनादिति ॥ ३७० ॥

तथा—देवभूयङ्गतमानितद्वयेण तस्य सावत्सरिकमुद्दिश्य सावत्सरिकादिपौषधिकामन्त्रणे सम्यग्दृशां तत्र भोजनमुचितमनुचितं वा इति प्रश्नोऽत्रोच्चरं—देवभूयङ्गतसावत्सरिकवासरकृत्यं किञ्चित्पृथक्कृत्य यदि पौषधिकान् जेमयति तदा तत्र भोजनं सम्यग्दृशामुचितमेवास्तीत्यथा तु नेति, साम्प्रतं प्रवृत्तिरपि महानगरादिष्वेवमेवास्तीति ॥ ३७१ ॥

तथा—सप्तशतमुक्तद्रव्यान्तः साधुसाध्वीन्द्रव्यस्य व्ययः साधुसाध्वीनां कस्मिन् स्थाने योज्यते आद्वैरिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सप्तशेऽत्री-  
मुक्तद्रव्यस्य व्ययः साधुसाध्वीशेऽत्रयोपपन्नाणवैद्यानयनमार्गसहायकरणादिषु आद्वैः कार्यत इति ॥ ३७२ ॥

तथा—‘तद्देव काणं काणं’ ति वचनमुद्भाव्य न मिथ्यादृष्टेर्मिथ्यादृष्टिवचनव्यवहारः कठिनवचनत्वादिति केचनपि प्रतिपादयन्ति इति  
प्रश्नोऽत्रोत्तरं—मिथ्यादृष्टेर्मिथ्यादृष्टिरिति कथनं तदकथनं च यथासमयं विधेयमिति ॥ ३७३ ॥

तथा—देवद्रव्यस्य वृद्धिकृते आद्वैस्तत्स्वयं व्याजेन गृह्यते न वा इति, तद्वाहकाणां दूषणं किं वा भूषणमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—श्राद्धानां  
देवद्रव्यस्य व्याजेन ग्रहणं न युज्यते, निःशूकताप्रसङ्गात्, नतु वाणिज्यादौ व्यापारणीयं स्वल्पस्यापि देवद्रव्यभोगस्य सङ्काशसम्बन्धादिस्वतीवायतौ  
दुष्टविपाकजनकतया दर्शितत्वादिति ॥ ३७४ ॥

तथा—उत्सूत्रभाषिप्रारब्धाष्टोत्तरीस्नानादौ स्वजनादिकारणं विना सम्यग्दृशां तत्र गमने सम्यक्त्वस्य दूषणं किं लगति न वा इति  
प्रश्नोऽत्रोत्तरं—स्नानादौ गमने सम्यक्त्वस्य दूषणं ज्ञातं नास्तीति ॥ ३७५ ॥

## तथां पण्डितकनकविजयगणिकृतप्रश्नस्तदुत्तरं च ।

यथा—वृद्धविभ्युपधानवाहकस्य कृतचतुर्विधाहारोपवासस्य सन्ध्याप्रत्याख्यानवेलायां सन्ध्याप्रत्याख्यानं गुरुसमक्षं कर्त्तव्यं न वा इति  
प्रश्नोऽत्रोत्तरं—ज्ञातः कृतचतुर्विधाहारोपवासस्य सन्ध्याग्रामुपधानक्रियाकरणत्रेलाया पश्चात्प्रत्याख्यानं कृतं विलोक्यते. उपधानमन्तरा तु सन्ध्याया  
तत्स्मरणं विलोक्यते, परं पुनः प्रत्याख्यानकरणविशेषो ज्ञातो नास्तीति ॥ ३७६ ॥

श्रीविजयेनमूरिसत्कण्डितकनकविजयगणिकृतप्रश्नास्तुत्तराणि च ।

यथा—पछादौ प्रत्याख्यानो भनतद्वयकथनाधिक्यस्य “किं प्रयोजनमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सामान्यतः सतां द्विवारं भोजनं लोकप्रतीतिमित्युः पचासद्वयेन भोजनचतुष्टयं, भोजनद्वयं न पारणोत्तरपारणयोरैकाशानमूर्त्तिकं कार्यते इति ॥ ३७७ ॥ तथा—वीरात कियन्नो नर्षिण्यः ॥

तथा—वीरात् कियन्तो दुर्भिक्षा अभवन् ? यतः केऽयेवं कथयन्ति यहुर्भिक्षद्वयमभवत्, परिशिष्टपर्ववादौ च बहवः सन्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—  
वीराद् अर्वाग् दुष्काला भूयासो नभ्युः, परं साक्षाद् द्वादशाब्ददुष्कालत्रयं शाले प्रोक्तं दृश्यते, तत्र परिशिष्टपर्वणि द्वयं, नन्दीधृतौ नैक. इति ।  
ये तु दुष्कालद्वयमेव कथयन्ति तत्कस्मिन् शाले वर्तते तन्नाम ज्ञापनीयं, यथात्तदुत्तरविषये ज्ञास्यत इति ॥ ३७८ ॥  
तथा—सार्द्धत्रिकोट्यः पुत्रपौत्राः कृष्णस्य, भरतस्य त सपावा कोटिः तत्र

तथा—सार्धत्रिकोद्व्यः पुत्रपौत्राः कृष्णस्य, भरतस्य तु सपावा कोटिः, तत्र कालस्तु पतनशीलोऽस्ति, तत्कथमाधिवयं संजानादीति प्रश्नो-  
 ऽनोत्तरं—द्वारकानगर्या सार्धत्रिकोद्व्यः कुमाराः प्रोक्तास्सन्ति, ते चानेहेषां यदुवंशीयानां पुत्रा न त्वैकस्यैव कृष्णस्य भरतस्य वा संजानादीति प्रश्नो-  
 पुत्रा इति न काऽप्यनष्टमानतेति ॥ ३७९ ॥

अथ पण्डितदयाविजयगणिगुणविजयगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च॥

यथा—दर्शनसम्यक्त्वयोः कः प्रतिविशेषः ? येन द्वयोरप्यतीचाराः, परमार्थतः परस्परं केचन सहशा एव हेतुयन्ते, तेन तयोर्व्यक्त्या भेदः प्रसाद्य इति प्रबोध्योत्तरं—दर्शनसम्यक्त्वयोर्वस्तुगत्याऽभेदेऽपि कथञ्चिन्निःशङ्कित्वाद्यभावं एव सम्यक्त्वातिचार उच्यते, शङ्कादिसम्भावस्त दर्शनातिचार इति व्यक्तं प्रवचनसाराद्वारण्यौ पष्ठे द्वारे ॥ ३८० ॥

तथा—‘देसिअ राइअ पक्खिये’ति कायोत्सर्गनिर्गुक्तिगतचतुर्नवतितमगाथार्यो हारिभद्र्यां वृत्तौ व्याख्यातोऽस्ति, तत्रैकस्मिन् प्रति-  
क्रमणे त्रयो गमाः प्रतिपादिताः सन्ति, ते पञ्चस्वपि प्रतिक्रमणेषु यथास्थानं यथा समाप्ता गमा भवन्ति तथा व्यक्त्या प्रसाद्या इति  
प्रश्नोऽत्रोत्तरं—‘दैवसिकादिषु पञ्चसु प्रतिक्रमणेषु प्रारम्भानन्तरं यत्प्रथमं ‘करेमि भंते !’ इत्याद्युच्चारणं स प्रथमगमप्रारम्भः, तदनु प्रतिक्रमणसूत्र-  
पठनावसरे यत् ‘करेमि भंते !’ इत्याद्युच्चारणं स द्वितीयगमप्रारम्भस्तस्योच्चारणद्वारिकं प्रथमगमस्य समाप्तिः, तत्र तृतीयवेलायां यत् ‘करेमि भंते !’  
इत्याद्युच्चारणं स तृतीयगमस्य प्रारम्भस्तस्य पूर्वं तु द्वितीयगमस्य समाप्तिः, तृतीयगमसमाप्तिस्तु तत्प्रतिक्रमणसमाप्तिं यावदिति श्रीआवश्यक-  
वृहद्वृत्त्यनुसारेणावसीयत इति ॥ ३८ ॥

तथा—अश्रुत्वोक्तेवलिनस्तीर्थे भवन्ति तीर्थविच्छेदे वा भवन्ति ? यदि तद्विच्छेदे भवन्ति तदा पाक्षिकसूत्रवृत्तौ अतीर्थेऽन्तर्कृत्केवलिनो  
भूत्वा सिद्ध्यन्ति, भगवत्यां च नवमशतके तदाश्रित्य ‘तप्पक्खियसावगस्स तप्पक्खियंसाव्रिया एवे’त्यत्र धर्मोपदेशं न दत्ते, एकं प्रश्नं  
ज्ञातमेकं च मुक्त्वेत्यभिप्रायेणाश्रुत्वोक्तेवलिनस्तीर्थे एव भवन्ति । अन्यच्चाश्रुत्वोक्तेवलिनः पञ्चदशभेदभिन्नानां सिद्धानां मध्ये कस्मिन् भेदे समायान्ति,  
तेनैतद्विषये सर्वं सविस्तरं प्रसाद्यमिति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अश्रुत्वोक्तेवलिनः श्रीभगवतीसूत्रवृत्त्यनुसारेण तीर्थे एव भवन्ति, नातीर्थे । पाक्षिक-  
सूत्रवृत्तौ तु अतीर्थसिद्धार्धिकार एते उक्ता न सन्तीति, तथा ते तीर्थसिद्धादिमध्ये यथासम्भवमवतरन्तीति ॥ ३९ ॥

तथा—आचाराङ्गलोक्तसाराध्ययनपञ्चमोद्देशकादिमूत्रे हृदोपमेनाचार्येण भाव्यमित्यत्र वृत्तौ धर्ममाश्रित्य चतुर्भङ्ग्या प्रत्येकबुद्धास्तू-  
भयाभावाच्चतुर्थभङ्गस्या इत्युक्तप्रकारेण सर्वेऽपि प्रत्येकबुद्धा धर्मोपदेशं न ददत्येतत्क्रयं सञ्जाघट्यति, यतः—ऋषिमण्डलसूत्रे “पतेअबुद्ध-  
साहु, नमिमो जे भासिउं सिंव पत्ता । पणयालीसं इसिभासियाइं अज्झायणपवराइं ॥ १ ॥” इति गाथाया प्रत्येकबुद्धानामध्ययनमुक्तामिति किमत्र

तत्त्वमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—आचाराङ्गवृत्त्यनुसारेण प्रत्येकबुद्धाः सभाप्रबन्धेन धर्मोपदेशं न ददतीत्यवसीयते, ऋषिमण्डले तु तेषामध्ययन-  
प्रणयनरूपधर्मोपदेश इति न किमप्यनुपपन्नं इति ॥ ३८३ ॥

तथा—स्वपक्षीयैः परपक्षीयैर्वा श्राद्धैः कृतस्वाध्यायो मण्डल्यां क्रियान्तः आत्मीयश्राद्धानां कल्पते न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—धामस्य-  
कृतस्वाध्यायो यतीनां श्राद्धानां च क्रियामध्ये न शुद्धयतीति ॥ ३८४ ॥

तथा—परपक्षीयवेषधारिकृतसाम्प्रतीनस्तुतिस्तोत्रस्वाध्यायादि स्वपक्षीयवाच्यमानां क्रियान्तः मण्डल्याः कथ्यमानं कल्पते न वा इति  
प्रश्नोऽत्रोत्तरं—आधुनिकपरपक्षीयकृतस्तुतिस्तोत्रस्वाध्यायादि क्रियान्तः कथ्यमानं न शुद्धयतीति ॥ ३८५ ॥

तथा—चतुःशरणप्रकीर्णकस्य गुणनं व्रतिना श्राद्धानां च कालवेलायां अस्वाध्यायदिने च शुद्धयति न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—चतुः-  
शरणप्रकीर्णकस्य गुणनं कालवेलायामपि कल्पते, अस्वाध्यायदिनेषु कल्पत इति ॥ ३८६ ॥

तथा—अवधिज्ञानिनो मनःपर्यवज्ञानिनो वा कियतो भवान् कुर्वन्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—“आभिनिवोहियनाणिस्स णं भंते ! अंतरं  
कालो केवच्चिरं होइ ? गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्खोसेणं अणत्तं कालं जातं अवड्डुपोगलपरिअट्टं च देसुणं । सुअनाणिओहिनाणि  
मणपज्जवनाणीणं एव वेअ, केवलनाणिस्स नत्थि अतरं ” इत्यादिभगवतीसूत्राष्टमशतकद्वितीयोद्देशके, एतदक्षरानुसारेण. अवधिज्ञानिनो मनः-  
पर्यवज्ञानिनो वा अनन्तभवान् कुर्वन्तीति ज्ञायत इति ॥ ३८७ ॥

अथ पण्डितश्रीगुणविजयगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च ।

यथा—अभ्ययः पादपोषगमानाख्यमनशनं करोति नत्रा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अभ्ययो यथा द्रव्यतो नवमंत्रिवैक्यायुर्बन्धयोग्यं सम्यक्-  
सामाचारीकं चारित्रं पालयति तथा पादपोषगमानशनमपि करोतीति तस्याऽसम्भवो नास्तीति ॥ ३८८ ॥

तथा—तीर्थकुहीयमाने दाने वरघोषणायां सत्या श्रावको योषिच्च तद्दानं गृह्णीतो नवा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—तीर्थकुहानसमये ज्ञाता-  
धर्मकथादिषु सनाथानाथथिककार्षटिकादीना याचकानां ग्रहणाधिकारो दृश्यते, न तु व्यवहारिणा, तेन श्रावकोऽपि काश्चिद्यदि याचकीभूय  
गृह्णाति तदा गृह्णातु, योषितस्तु प्रायस्तत्राधिकारो न दृश्यते इति ॥ ३८९ ॥

तथा—बलदेव १ कर्ण २ द्वीपायन ३ शंखा ४ ख्या आगमिष्यच्चतुर्विंशतौ तीर्थकृतो भविष्यन्ति, ते किं नवमराम १ कौतेय २ द्वारकादाहक ३ श्रीवीरप्रथमश्रावका एव अथवा किमन्ये वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—शंखः श्रीवीरप्रथमश्रावकादन्यस्तीर्थकृत् श्रीस्थानाङ्गवृत्तौ उक्तोऽस्ति, द्वैपायनो द्वारिकादाहकोऽन्यो वा इति निर्णयः केवलिगम्यः, कृष्णभ्राता बलदेव आवश्यकनिर्धुक्त्यादावागमिष्यच्चतुर्विंशतिकायां कृष्णतीर्थे सेतस्यन्नृक्तोऽस्ति, तेन बलदेवः कश्चिन्नागान्तरेणावगन्तव्यः, कर्णस्थाने तु शस्त्रे कुण्डः प्रोक्तोऽस्ति, सोऽपि नामान्तरेण बोध्योऽत एव शास्त्रान्तरेः सह विसंवादं सम्भाव्य प्रवचनसरोद्धारवृत्तिकारेणापि द्वित्रा एव भावितीर्थकुलीवा व्यक्त्या विवृताः सन्ति, न शेषा इति ॥३९०॥

अथ पण्डितचन्द्रविजयगणिकृतप्रश्नांस्तदुत्तराणि च ।

यथा—तीर्थङ्करस्य सामान्यकेवलिनो वा वीर्यान्तरायेः सद्भगेव क्षगद्भुतः तत्तत्स्थं सामर्थ्यं न्यूनोपि कथं हृदयत इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—  
तीर्थकृतेवल्लिना सामान्यकेवलिनां च वीर्यान्तरापकं भयं जानितस्यात्मवीर्यस्य 'समात्तवेऽपि' नामुक्तमभेदरूपशरीरलक्षणत्राद्योपिकरणभेदाद्भले भेदः,  
अत एव सामान्यकेवलिशरीरेभ्यस्तीर्थङ्करशरीरमनन्तबलवत्, जीर्णतुलाह्वयान्तोऽत्र भावनीय इति ॥ ३९ ॥

तथा—श्रीज्ञातासूत्रप्रथमाध्ययने मेघकुमारर्मतुरकालमेघदोहदः समुत्पन्न इत्युक्तं तत्कथं घटते? तदा वर्षकालस्य विद्यमानत्वादिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—ज्ञातासूत्रोक्तपञ्चवर्णाद्युपेतमेघस्य देवप्रभावासाध्यस्य वर्षस्त्रपि अकाल एवेति घारिण्या अकालमेघदोहदोत्पत्तिरुक्तेति ॥ ३९३ ॥



तथा—केनचित् श्राद्धेन योजनशतादुपरि गमनप्रत्याख्यानं कृतं, तस्य धर्मार्थमधिकं गन्तुं कल्पते न वा ? यदि गच्छति तदा केन विधिनेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—प्रत्याख्यानकरणसमये विवेको विलोक्यते, तेन प्रायो मुख्यवृत्त्या प्रत्याख्यानं सांसारिकारम्भस्य भवति, न तु धर्म-  
कृत्यस्य, यदिच सामान्यतः कृतं तदा नियमितक्षेत्रोपरि यतनया गच्छति, तत्र च गतः सांसारिककृत्यं न करोतीति ॥ ३९३ ॥

तथा—पैषधकारिणः श्राद्धाः कियती भुवं यावद्यान्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—पैषधकारिणः श्राद्धाः इर्यासमित्यादिना धर्मार्थं यथेष्टं व्रजन्ति, न चात्र भूभागनियम इति ॥ ३९४ ॥

### अथ पण्डितअमरचन्द्रगणिकृतप्रश्नोत्तराणि ।

यथा—चन्दनवत्प्रतिमानां कस्तूरिलेपः क्रियते न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—जिनप्रतिमानां कस्तूरिलेपो न क्रियत इत्यसुराणि न सन्ति, प्रत्युत सामान्यतस्तत्करणक्षराणि श्राद्धविध्यादौ सन्ति, यक्षकर्ममध्यगता तु कस्तूरी साम्प्रतमपि जिनादीने व्यापार्यमाणा दृश्यत इति ॥ ३९५ ॥

तथा—सन्ध्याप्रतिक्रमणवत्प्रातःप्रतिक्रमणे श्राद्धानां प्रतिक्रमणसूत्रदेशो न दीयते तत्र को हेतुरिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—प्रातःप्रतिक्रमणं बाढस्वरेण न कर्तव्यमिति अगमीयारीतिः, श्राद्धानामादेश दानेन तु प्रतिक्रमणसूत्रश्रावणार्थं । बाढस्वरेण कथयन्तीति तद्विलोपः स्यादिति प्रातः प्रतिक्रमणादेशो न दीयतेति ॥ ३९६ ॥

तथा—श्राद्धानां गोत्रदेवीपूजने मिथ्यात्व लगति न वा इति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यस्य तथाविधं धैर्यं भवति तेन गोत्रदेवी न पूजनीया एव, कुमारपालेनैव, तदभावे तु कदाचित्पूजनेऽप्युच्चारितसम्यक्त्वभङ्गो भवति, यतो देवताभियोगेनेति सम्यक्सर्वोच्चारं छिण्डकाऽप्यस्तीति ॥ ३९७ ॥

तथा—आश्चलिकप्रतिष्ठिता प्रतिमा पूज्या न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—आश्चलिकप्रतिष्ठिता अपि प्रतिमा द्वादशजल्पपट्टकानुसारेण गुरुवच-  
नात्पूज्या एव 'तन्हा सवानुज्ञा सब्वनिसेहो च पवयणे नत्थि' इत्याद्युक्तिरानुस्मरणयिष्यति ॥ ३९८ ॥

तथा—नत्वारो लोकपालाश्चतुर्णां निकायानां मध्ये कस्मिन्निकायमध्य इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—धैर्यानि कभवनपतिलक्षणे निकायद्वये

लोकपालचतुष्कसम्भवाः सङ्ग्रहणीष्टन्यादाबुक्तोऽस्तीति ॥ ३९९ ॥

तथा—श्रुतदेवीभवनदेवीनां कायोत्सर्गाः कुत्र प्रोक्तास्सन्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—श्रुतदेवताभवनदेवतानां कायोत्सर्गा आवश्यकचूर्णिनः

पञ्चवस्तुकष्टस्यादिष्वनेकेष्वगमप्रकरणेपूक्तास्सन्तीति ॥ ४०० ॥

तथा—श्राद्धानां पूजावसरेऽष्टपटुमुखकोशबन्धः प्रोक्तोऽस्ति स कथा रीत्या बध्यते ; वस्त्रद्वयी यदा भवति पूजकस्य शरीरे तदोत्तरीया-  
ञ्चलवस्त्रेण मुखकोशबन्धः कर्तुं न शक्यते, यदि तृतीयं वस्त्रं मुखकोशबन्धनिमित्तं भवति : तदा - गुरुमुत्तरीयाञ्चलेनैव 'वा बध्यते' इति  
प्रश्नोऽत्रोत्तरं—पूजावसरे श्राद्धैरष्टपटुमुखकोशबन्ध उत्तरीयाञ्चलेन कर्तव्यो न तु तृतीयवस्त्रेण, यतः श्राद्धविधौ देवपूजावसरे श्राद्धानां  
परिधानोत्तरीयलक्षणं वस्त्रद्वयं श्राद्धानां च कञ्चुकसाहितं तत्रयमेवोक्तमस्ति, नन्वधिकं, तथोत्तरीयमपि तत्करणयोग्यमेव विधेयं, तेन न  
किमप्यशक्यमिति ॥ ४०१ ॥

अथ पण्डितश्रीसत्यसौभाग्यगणिकृतप्रश्नौ तदुत्तरे च ।

यथा—उत्कृष्टचैत्यवन्दनविधावुत्तरोत्तरं स्तुतयो वर्णवृद्धा विधीयन्ते न त्वरणा इति खडिः सत्यासत्या वेति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—उत्कृष्ट-  
चैत्यवन्दनविधावुत्तरोत्तरं स्तुतयः प्रायो वर्णवृद्धा एव विधेया इति परम्परा वर्त्तते, तेन खडिः सत्यैवावसीयते । परम्परामूलं तु 'नमोऽस्तु वर्द्धमानाय'

इत्यस्याधिकारे 'ताओ अ थुईओ एगसिलोगादिक्कुंतिआओ पयअक्खरादीहिं वा सरेण वा वडुंतेण तिल्लि भणिऊण' मित्यद्यावश्यकचूर्ण्य-  
क्षरदर्शनेनमिति सम्भाव्यत इति ॥ ४०२ ॥

तथा—भुवनसुरीस्मृतिकायोत्सर्गादनुपाक्षिकप्रतिक्रमणे 'ज्ञानादिगुणयुतानां' इति स्तुतिः श्राविकाभिरपि पठ्यते न वा इति, प्रश्नोऽत्रो-  
त्तरं—पाक्षिकप्रतिक्रमणे 'ज्ञानादिगुणयुतानां' इति स्तुतिः श्राविकाभिः साध्वीभिरपि च कथ्यमानाऽस्तीति ॥ ४०३ ॥

### अथ पण्डितजीवविजयगणिकृतप्रश्नौ तदुत्तरं च ।

यथा—प्रत्यहं प्रल्हादनविहारे पञ्चशतीर्वासलप्रियाणा भोगः कथितोऽस्ति तन्नाणकं किनामकं कथ्यते इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—वीसलदेन राज्ञा  
पातितं वीसलप्रियनामकं तत्कालीनः कश्चिन्नाणकविशेषः सम्भाव्यते, तदधुना प्रसिद्धं नास्ति, परं पटञ्जिनमुद्रकद्रुमैर्वीसलप्रियनाणकं अष्टशतविंश-  
तिसहस्राधिकद्विपष्टिलक्षप्रमाणं कथितमस्तीति ॥ ४०४ ॥

तथा—श्राविका निमालये गृहदेवावसरे च प्रतिमायाः प्रक्षालनं करोति न वा इति, तथा यौवनावस्थायां देवपूजां करोति न वा इति,  
प्रश्नोऽत्रोत्तरं—देवगृहे देवावसरे च श्राविका प्रतिमायाः प्रक्षालनं करोति, तथा यौवनावस्थायां पूजामपि करोतीति, यथा ज्ञाताधर्मकथाङ्गे-  
द्रौपद्या यौवनावस्थायां स्नपनपूर्वकं पूजा कृतेति बोध्यम् ॥ ४०५ ॥

### अथ पण्डितजससागरकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च ।

तथा—तीर्थकृत्समवसरणे बली राद्धोऽराद्धो वा ? गच्छे चापकाया बलेः प्ररूपणं, मलयगिरिरित्तिरचितावश्यकवृत्तौ तु बलिः सिद्धः  
कथितोऽस्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—तीर्थकृत्समवसरणे बलिः राद्धोऽवसीयते इति ॥ ४०६ ॥

तथा—चतुश्शरणाध्यापनमुपासकानां कथं कार्यते, यतीनां योगं विना तदनध्यायः श्राद्धानां तु तन्तरेणैव पाठः, तत्र किं शास्त्रं बलीयः किं वा गच्छसामाचारीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—चतुश्शरणादीनि चत्वारि प्रकीर्णकानि आवश्यकत्वात्प्रतिक्रिययादिषु बहुपयोगित्वादुपधानयोगोद्धहनं अन्तरेणापि परम्परयाऽधीयमानानि सन्ति सैव तत्र प्रमाणमिति ॥ ४०७ ॥

तथा—मूर्तैः कर्मभिरमूर्तस्य जीवस्य बह्व्यःपिण्डन्यायेन कथं सम्बन्ध इति प्रश्नोऽत्रोत्तरम्—अरूविभिः सह रूपाणां संयोगात्सम्भवत्येव, यथाऽऽकाशेन सह परमाणूनां पक्षिणां वा, बह्व्यःपिण्डन्यायेन तु सम्बन्धविशेषो दनुपपन्नम् ॥ ४०८ ॥

तथा—मत्स्यकच्छपवृषभहिषशुकसारसादिजलचरस्थलचरखचरतिरश्चामायुपो गण्डर्भस्थितेश्च कियती परिमितिरिति प्रश्नोऽत्रोत्तरम्—जलचरस्थलचरखचरतिरश्चामायुर्मानं ‘गण्डर्भभुञ्जलचरोभयेत्यादि’ सङ्ग्रहणीगाथातो “मणुआऊसम गग्राई, हयाइ चउरंसडाउं अट्टंसा। गोमहिमुट्टबराई, पणंससाणाइ दुसंसा ॥ १ ॥” इति वीरंजयसेहरपयेति क्षेत्रविचारागाथातश्चावसेयं, तेषां गण्डर्भस्थितिमानं तु जण्डन्यतोऽन्तर्मुहूर्तमुत्कर्षतश्चाष्टौ वर्षाणीति भगवत्यादौ प्रतिपादितमस्तीति ॥ ४०९ ॥

तथा—चतुर्हृशानियमेषु द्वित्रादीनि सचित्तादीनि प्रातः प्रत्याख्यानं क्रियमाणं मुत्कलानि रक्षितानि, तानि त्वहन्येव सर्वोपयि पूर्णीभूतानि, अथ रात्रौ तेषां कार्ये समुत्पन्ने पूर्वप्रमाणीकृतादप्यपराण्यादातुं कल्पन्ते न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—श्राद्धानां चतुर्हृशानियमेषु द्वित्रादीनि सचित्तानि प्रातः प्रत्याख्यानसमयेऽहोरात्रावधि मुत्कलानि रक्षितानि भवन्ति तदा तावतां दिवापरिभोगे रात्रावधिकानि न कल्पन्ते, यदि च सन्ध्याऽवध्येव तवन्ति मुत्कलानि रक्षितानि तदा रात्रावधिकान्यपि कल्पन्ते इति ॥ ४१० ॥

तथा—बन्धुनीवकशब्देन किमुच्यते 'बिहुरिओ' इति वृक्षस्य पुष्पाण्यन्यद्वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—बन्धुनीवकशब्देन बन्धुनीवकपुष्पं शास्त्रे प्रोक्तमस्ति, लोकमध्ये तु 'बफोरिओ' वृक्ष इति कथितमस्तीति ॥ ४११ ॥

तथा—चण्डरुद्राचार्योः शिष्यस्य स्कन्धे उपाविश्य चलिता इति सत्यमसत्यं वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—श्रीउत्तराध्ययनवृत्तिप्रमुख-बहुन्यानुसारेण चण्डरुद्राचार्येण शिष्यस्य कथितं त्यमप्रतो गमनं कुरु, पश्चात्सोऽग्रतश्चालितः, चण्डरुद्राचार्यस्तु पृष्ठतश्चालितः, कस्मिंश्चिद्रन्ये कथितमस्ति यच्छिष्यस्य स्कन्धे भुजां दत्त्वा चलिता इति ॥ ४१२ ॥

तथा—बदरीबन्धूलयोरसंज्ञाया जीवा एको वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—प्रज्ञापनार्थो प्रथमपदे गुच्छाधिकारे आउलिबंदरयोर्मूलकन्दस्कन्ध-त्वकशाखाप्रानालेषु प्रत्येकमसंज्ञेयजीवात्मकता प्रोक्ताऽस्ति, तदनुसारेण बदरीबन्धूलयोरपि पटस्त्रपि स्थानेषु असंज्ञाया जीवात्सम्भाव्यन्ते, न तु न्यूनाधिकजीवतेति ॥ ४१३ ॥

तथा—'एगभवगाहणेणं सयसहस्रपुहुत्ताइं' इत्यत्र पृथक्त्वशब्देन का सङ्ख्या इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—एकस्मिन् भवे 'सयसहस्रपुहुतं' इत्यत्र पृथक्त्वशब्दो बहुत्ववाचको, नो चेद्वीकायामेकसंयोगेऽपि शतसहस्रपृथक्त्वोत्पत्तिर्निष्पत्तिश्च मत्स्यादीनां मनुष्याणां चोत्पत्तिः प्रतिपादिता तदा भवे का वार्त्ता ! तेन दिवसपुहुत्तपुहुत्ता इत्यत्रैवात्र पृथक्त्वशब्दस्य बहुत्वार्थकत्वमेवेत्यवसेयम् ॥ ४१४ ॥

अथ पण्डितहर्षचन्द्रगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च ।

यथा—श्रीजिनेन्द्राभ्या जिनेन्द्रप्रवचनानन्तरमपत्यं प्रसूते न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—एकान्तो ज्ञातो नास्ति, नेमिनाथादीनां रथनेम्यादे-  
र्लघुभ्रातृतया प्रतीतत्वादिति ॥ ४१५ ॥

तथा—केनापि स्वगृहं जिनगृहे मुक्तं, तत्र श्राद्धः कोऽपि भाटकं दत्त्वा तिष्ठति न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यद्यपि साधिकभाटकप्रदान-पूर्वकमवस्थाने दोषो न लगति, तथापि तथाविधकारणमन्तरेदं युक्तिमत्र प्रतिभाति, देवद्रव्यभोगादौ निश्शुक्ताप्रसङ्गादिति ॥ ४१६ ॥

तथा—कोऽप्युपधानचतुष्कमुद्राह्य मालां परिदधाति तस्य समुद्देशानुज्ञावस्थायामवशिष्टोपधानयोर्नाम गृह्यते न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—पणामप्युपधानानां समुद्देशानुज्ञयोर्नाम गृह्यते, द्वयोर्लक्षस्य च पुरतोऽपि भवने न दोष इति दृढसम्प्रदायः ॥ ४१७ ॥

तथा—सुषेणसेनापतिस्तिमिश्रागुहायाः कपाटोद्घाटनसमये कियद्भूमिं पश्चादपसरतीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—कपाटपूजां कृत्वा प्रहारदानार्थं सप्तष्टपदानि पश्चादपसरतीति, कपाटोद्घाटनसमये द्वादशयोजनावधि सेनानीरत्नतुरगापसरणप्रबोद्धस्तु अनांगमिकः, आवश्यकटिप्पनके तथा भणनादिति ॥ ४१८ ॥

तथा—सर्वचक्रवर्तिनां सर्वरत्नानि प्रमाणतस्तुल्यानि न्यूनाधिकानि वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सर्वचक्रवर्तिनां काकिण्यादिरत्नानि कियन्ति केषाञ्चिन्मते प्रमाणाद्बुलमाननिष्पन्नानि, कियन्ति तु तत्कालीनपुरुषादिमानोचितमानानि, केषाञ्चिन्मते तु सर्वाण्यपि तत्कालोचितमानानीति ॥ ४१९ ॥

तथा—खाद्यस्तनिकादीनां प्रतिक्रमणकरणोदीरणां क्रियते त्रिवारं सामाथिकादिदण्डकं चोच्चार्यते तद्युक्तमयुक्तं वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—खाद्यस्तनिकादीनां प्रतिक्रमणकरणोदीरणाकरणं न युक्तं, यदि च ते स्वयं प्रतिक्रमणं कुर्वन्ति पौषधादिदण्डकं त्रिवारमुच्चरन्ति तदा द्रव्यक्षेत्रकालभावानुसरणानुकूलादिगुणसम्भवः स्यात्तदोच्चार्यते, यस्माच्छास्त्रेऽप्येवं दृश्यते 'तस्मात् सवज्जुनाः सव्वनिसेहो अ पवयणे नत्थि' इति ॥ ४२० ॥

तथा—खाद्या मण्डल्यां प्रतिक्रमणं कुर्वन्ति तत्कथितं प्रतिक्रमणसूत्रं श्राद्धानां स्तवनादिकं यतीनां च शुद्धयति नवा ? तथा औप-  
वस्यदिप्रत्याख्याने ये कसेल्लक्षणीयं पिबन्ति तेषामुपवस्त्रादिकं कार्यते न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—द्रव्यक्षेत्रकालमावसानुरेण प्रश्नोत्तरवदनु-  
सन्धेया इति ॥ ४२१ ॥

तथा—प्रासुक्यपानीयस्य संस्कारकः कंचकपानीये मुच्यते किंवा पृथक् रक्ष्यते इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—प्रासुक्यपानीयस्य संस्कारकः एकात्मेन  
सचित्तपानीये न क्षिप्यते इत्यक्षराणि शास्त्रे न ज्ञातानि, ततो यथा यतना भवति तथा कर्त्तव्यं, परं यथा तथा संस्कारको न क्षिप्यत इति ॥ ४२२ ॥

तथा—साधुः सावत्सरिकक्षामणार्थं नदीमुत्तीर्य याति न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—नदीमुत्तीर्य यतीनां क्षामणार्थं गमनप्रवृत्तिर्ज्ञाता  
नास्तीति ॥ ४२३ ॥

तथा—देवलोके राजप्रश्नीयमध्ये वनखण्डवृक्षफलपुष्पादिकं कथितमस्ति तत्पृथ्वीपरिणामरूपं वनस्पतिपरिणामरूपं वा, तथा पुष्करणी-  
प्रमुखवापीषु मत्स्याः कथितास्ते जीवपरिणामरूपा आकारमात्रं वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—देवलोकेषु वनखण्डवृक्षफलपुष्पादिकं कथितमस्ति त्रुद्धन-  
स्पतिरूपं पृथ्वीपरिणामरूपं वाऽस्ति, यद्यपि तत्र पृथ्वी रत्नरूपाऽस्ति तथाऽपीदृशी मृदुरूपास्ति यथा वनस्पतीनामुद्गमने काप्यात्राधां न जायते,  
तथा पुष्करणीप्रभृतिषु ये मत्स्यादयः कथितास्तेऽपि पृथ्वीपरिणामरूपा आकारमात्रास्सम्भाव्यन्ते, यतो देवलोकेवापीषु मत्स्यादिजलज्जन्तृजीवनिषेध-  
गाथा दृश्यन्त इति ॥ ४२४ ॥

तथा—उपधानतपसि पूर्णं जाते देशप्रवेदनेषु दिनवृद्धिर्भवति नवा इति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—उपधानशेषप्रवेदनेषु दिनवृद्धिर्भवतीति ॥ ४२५ ॥

तथा—सम्पूर्णदिवसे देशावकाशिकं क्रियते तत्रोच्चरणपरणविधिर्लिखनीयः, तथा तत्र सामायिकं गृहीतं पारितं च शुद्धयति न वा ?

तथा देशवकाशिकेन सह सामायिकमुच्चरति न वा ! इति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—देशवकाशिकोच्चरणविधिः ' देशवगासिअं उवभोगपरिभोगं पच्चत्त्वामि ' इत्यादिको दृश्यते, परं पारणविधिर्ज्ञातो नास्ति, तथा देशवकाशिकमध्ये सामायिकस्य ग्रहणं पारणं च शुद्ध्यति, तेन सह सामायिकग्रहणमपि शुद्ध्यतीति ॥ ४२६ ॥

तथा—उपधाने पालीपरावर्त्तनं शुद्ध्यति न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—तथाविधकारणे तत्प्रत्याख्यानं शुद्ध्यतीति ॥ ४२७ ॥

**अथ पण्डितधर्मविजयगणिकृतप्रश्नौ तदुत्तरे च ।**

तथा—आराधना श्रीराणपुरप्रतिष्ठाकृतश्रीसोममुन्दरसूरिकृता किंवा श्रीसोमप्रभसूरिकृता इति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—आराधनासूत्रं संसच-  
त्वारिंशत्तमपट्टे श्रीसोमप्रभसूरिकृतमिति ॥ ४२८ ॥

तथा—देवप्रणतेः पूर्वं घण्टां वादयन्ति पश्चाद्वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अन्यद्रव्यपूजाकरणानन्तरं नादपूजारूपा घण्टा वाद्यतः इति।  
पूजाकारकवृद्धश्राद्धपरम्परा वर्त्तते, तेन पूजाकरणे पुष्पादिरूपद्रव्यपूजाकरणानन्तरं घण्टा वाद्यते, चैत्यवन्दनमात्रकरणे तु अक्षतादिमोचनरूपद्रव्य-  
पूजाकरणानन्तरं घण्टा वाद्यत इति ज्ञायते, अन्यथा घण्टावादनं तु हर्षप्रकर्षसूचकलोकप्रवाहंपातितं, न तु परम्परानुसारीति ॥ ४२९ ॥

**अथ पण्डितविद्याविजयगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च ।**

यथा—उदघाटितमुखरूपने इर्यपथिकी समायाति वन्दनकदानावसरे तु कथं नायाति इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—वन्दनकदानावसरे विधि-  
सत्यापनार्थमुदघाटितमुखस्यापि जल्पतः प्रमादामावन्नैर्योपथिकी समायातीति ध्येयम् ॥ ४३० ॥



तथा—उपाश्रये सांवत्सरिकादिप्रतिक्रमणावेशे यद् घुसृणतैलादि मान्यते तदेवद्रव्ये साधारणद्रव्ये वा समायाति इति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—

यथाप्रतिज्ञं देवद्रव्ये साधारणद्रव्ये वा तत्समायातीत्यवधेयम् ॥ ४३१ ॥

तथा—पौषधमध्ये याचकादेर्दानं दातुं कल्पते न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—मुख्यवृत्त्या पौषधमध्ये याचकादेर्दानं दातुं न कल्पते, कस्मिंश्चि-

त्कारणविशेषे तथा जिनशासनोन्नतिं ज्ञात्वा कदाचिद्यदि ददाति तदा निषेधो ज्ञातो नास्तीति ॥ ४३२ ॥

तथा—चतुर्मासकानन्तरं मासद्वयं यावद्वर्षादिक विहर्तुं न कल्पते तदक्षराणि कुत्र सन्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—वर्षाकाले यत्र क्षेत्रे

चतुर्मासकं स्थितं तत्पूजापि तत्रान्यत्रापि च संविमर्शेन सक्ताशयोजनप्रमाणे कारणं विना मासद्वयान्तर्वर्षाद्विग्रहणं न कल्पते, एतदपि विस्तरतो

निशीथदशमोद्देशकचूर्णितो निर्णयं, एतदक्षरानुसारेण साधूनां चतुर्मासकान्ते मासद्वयं यावद्वर्षादि विहर्तुं न कल्पते ॥ ४३३ ॥

तथा—साधुर्वस्त्रे 'धिगलकं' ददाति न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यो भिसुर्वस्त्रस्यैकं धिगलं ददाति ददतं वा अनुमोदयति तस्य दोषाः, यः कारणे

त्रयाणां धिगलानां परतश्चतुर्थं धिगलं ददाति तस्य प्रायश्चित्तं इति निशीथसूत्रप्रथमोद्देशके, एतदनुसारेण साधूनां धिगलदानं न कल्पते इति ॥ ४३४ ॥

तथा—प्रतिक्रमणमध्ये मुखवस्त्रिकायां प्रतिलिख्यमानायां पञ्चेन्द्रियच्छिन्दनं भवति तदा तथैव सरयुत पुनः सा प्रतिलेखिता युज्यते वा

इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—पञ्चेन्द्रियच्छिन्दनेऽपि तथैव मुखवस्त्रिकया सरति, विशेषाक्षरानुपलम्भादिति ज्ञायते ॥ ४३५ ॥

अथ पण्डितधीरकुशलगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च ।

यथा—द्वादशे देवलोके शीतानीवः शीतेन्द्रो जातः, तेन शीतेन्द्र इति तदभिधा सत्याऽसत्या वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अच्युतेन्द्र इत्ये-

वाभिधा सत्येति ॥ ४३६ ॥

तथा—आरात्रिकनैवेद्यादिद्वौकनविधयः कस्मिन् पुरातनग्रन्थे सन्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—प्रवचनसारोद्धारवृत्तिश्राद्धविधिप्रमुखग्रन्थेषु पूजावसरे आरात्रिकोत्तारनैवेद्यद्वौकनादिविधयः प्रतिपादितासन्तीति ॥ ४३७ ॥

तथा—समवसरणस्थस्य तीर्थङ्करस्य श्राद्धा यतयश्च कथं वन्दन्ते इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—समवसरणस्थस्य तीर्थकृतः श्राद्धा यतयश्च वन्दित्वा यथास्थाने निषिदन्तीति हारिभद्रयां, परं तद्वन्दनरीतिः कापि लिखिता नास्ति, तस्मादधुनिकवन्दनरीतिरेव सम्भाव्यत इति ॥ ४३८ ॥

तथा—दिगम्बरादिप्रासादे आत्मीयाचार्यप्रतिष्ठितप्रतिमाऽस्ति सा वन्द्यते न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—स एकान्ते वन्द्यते, परं तत्समुदायमध्ये वन्दनं कुर्वतस्तन्मतस्थिरकरणं यथा न भवति तथा करोति द्रव्यक्षेत्रकालादिकं विचार्य इति ॥ ४३९ ॥

तथा—अष्टविंशतिदिनोपधाने पञ्चत्रिंशद्दिनोपधाने च मूलविधिना उद्यमाने कति दिनानि भवन्ति, तथा तदुपधानद्वयात्कतिदिनेषु न्यूनपूतार्थे इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—मूलविधिना तदुद्ध्ये उद्यमाने दिनन्यूनाधिक्यं ज्ञातं नास्ति, तथा तदुपधाने न्यूनदिनेषु महत्कारणे सम्पूर्णं तपसि जाते उत्तारयन्तो दृश्यन्ते, परं दिनसङ्ख्या ज्ञाता नास्तीति ॥ ४४० ॥

तथा—तीर्थे यन्नालिकरादिद्रव्यं मानितं तदेव मुच्यतेऽन्यद्वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—शङ्खधरादितीर्थे मूलविधिना यदेव मानितमभूत् तदेव मुच्यते, कारणे तु यथा देयं न भवति तथा कर्त्तव्यमिति ॥ ४४१ ॥

तथा—‘जीवंतसामिपडिमाह, सासणं विअरिऊण भत्तीए’ इत्यत्रार्यायां शासनशब्देन ग्रामोऽथवाऽन्योऽर्थः, तथाऽयमर्थः केषु मौलेषु ग्रन्थेषु वाऽस्तीति सम्यक् प्रसाद्य इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अनेकार्थसूत्रवृत्तौ शासनशब्दस्यार्थपञ्चकं व्याख्यातं, तत्रैकोऽर्थो राजदेयभूमिलक्षणो ग्रामस्यापि

राजदेयभूमेकदेशत्वेन 'जीवंतसामिपडिमाइ' इत्यत्र शासनशब्देन ग्राम उच्यते, तत्संवादकोऽर्थो दानकुलशब्दार्थे व्याख्यातोऽस्ति, तथाऽयमर्थः सविस्तरः हरिभद्रस्मरि कृतावश्यकवृत्त्यादिषु कथितोऽस्तीति ॥ ४४२ ॥

### अथ पण्डितसोमविमलगणिकृतप्रश्नस्तदुत्तरं च ।

यथा—तीर्थकृता जन्मभवानन्तरं देवाः कियत्प्रमाणां रत्नादिवृष्टिं कुर्वन्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—उसमे णं अरहा कोसल्लिए नाए जाव चिट्ठइ, ततो वेसमणो सक्कवयेणेणं बत्तीसं हिरण्णकोडीणो बत्तीसं सुवण्णकोडीओ बत्तीसं नंदासणाइं बत्तीसं मद्दासणाइं भगवतो तित्थकरस्स जम्मण- भवणंमि साहरइ' इत्यावश्यकबृहद्गति ७६ पत्रे एतदनुसारेण तथा—“कुण्डलं क्षोमयुगं चोच्छीर्षे मुक्त्वा हरिर्व्यधात् । श्रीदामरत्नदामाढ्यमुलोचै स्वर्णकन्दुकम् ॥ ४२ ॥ द्वात्रिंशद्रत्नैरूप्यकोटिवृष्टिं विरच्य सः । बाढमाघोषयामासेति सुरैराभियोगिकैः ॥ ४३ ॥” इति कल्पकिरणा- वलयनुसारेण च तीर्थकृतां जन्मभवानन्तरं देवविहिता वृष्टिः द्वात्रिंशद्विरण्यकोटिप्रमाणा भवतीति ॥ ४४३ ॥

### अथ गणिहेमसागरकृतप्रश्नस्तदुत्तराणि च ।

यथा—सङ्गमकगोपालकेन यदा साधूनां परमानं दत्तं तदा तस्य सम्यक्त्वमस्ति ? विना सम्यक्त्वं कथं तथाविधबहुसुखप्राप्तिरिति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—तथाविधसुखप्राप्तिस्तु भद्रकपरिणामविशेषमाहात्म्यादित्यवधेयम् ॥ ४४४ ॥

तथा—‘दक्षिन्नदयालुत्त, पियभासित्ताइ विविहगुणनिवहं । सिवमगकारणं जं, तमहं अनुमोअए सव्वं ॥ १ ॥ सेसाणं जीवाणं ० २ ॥ एमाइ अण्णोपि अ० ३ ॥’ एतदाराधनापताकागाथायानुसारेण मिथ्यादृष्टीनां दाक्षिण्यदयालुत्वादिकं प्रशस्यते न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—एत-

दाराधनापताकाप्रकीर्णकसम्बन्धि गात्रत्रयमस्ति, तन्मध्ये यति १ देशविरतिश्रावका २ उविरतसम्यग्दृष्टि ३ जिनशासनसम्बन्धि विनाऽन्येषां

॥ ४४५ ॥

दाक्षिण्यदयालुत्वादिकं प्रशस्यतयोक्तं, ततोऽयुक्तं ज्ञातं नास्ति, यत एते गुणाः श्रीजिनैरातेतव्या एव कथितासन्तीति ॥ ४४५ ॥

तथा—साधूनां भावपूजा कथिताऽस्ति, प्रतिष्ठादावज्जनशलाकारणे तु द्रव्यपूजा जायते तत्कथमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—साधूनां बाहुल्येन भावपूजा श्राद्धानां च बाहुल्येन द्रव्यपूजा कथिताऽस्ति, परमत्रैकान्तो ज्ञातो नास्ति, यतः—श्रीरथानाङ्गसूत्रे ‘पूजो नामो पूजावेदः’ इति चतुर्भङ्गिकाऽस्ति, एतस्या अर्थकारणे यतीनामेकान्तद्रव्यपूजानिषेधो ज्ञातो नास्ति, यतोऽङ्गरागेण यतिपतीनां पूजा क्रियते, सापि द्रव्यपूजा भवतीति ॥ ४४६ ॥

तथा—नेमिनाथस्यैकादश गणधरा एकविंशतिस्थानके कथिताः, कल्पसूत्रे तु अष्टादश तत्कथमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—तावन्त एवैकविंशति स्थानके तथा सप्ततिशतस्थानरुप्रवचनसारोद्धारावश्यकदिग्रन्थेषु च कथिताः सन्ति, कल्पसूत्रे तु नेमिनाथस्याष्टादश गणधरा इत्यादि यदन्तरं पतति तन्मतान्तरं ज्ञेयमिति ॥ ४४७ ॥

तथा—नववासुदेवानां शरीरचलं सदृशं न्यूनाधिकं वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अवसर्पिणीकालानुभावेन तेषां शरीरचल न्यूनाधिकमपि भवति, यतः प्रथमवासुदेवेन कोटिशिला छत्रस्थानीया कृता, नवमवासुदेवेन भूमिकातः सा चतुरङ्गुलानि यावदुत्पाटिताऽस्तीति ॥ ४४८ ॥

तथा—कार्तिकामावास्यारात्रौ ‘श्रीमहावीरसर्वज्ञाय नमः’ इति गण्यते तत्किमर्थः, कस्मिन् दिने च ज्ञानमुत्पन्नमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—श्रीमहावीरेण सर्वज्ञत्वेन देशना दत्ता तेन ‘श्रीमहावीरसर्वज्ञाय नमः’ इति गण्यते, तन्मध्यरात्रे तु मुक्तिं गतस्तेन ‘श्रीमहावीरसर्वज्ञाय नमः’ इति गण्यते ॥ ४४९ ॥

तथा—निर्व्वोणावसरे श्रीवीरेण षोडश प्रहरान् यावद्देशना दत्ता, सा कस्मादिनादारभ्य कस्मिन् दिने पूर्णा जाता इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—चतुर्दशीदिनादारभ्यामावांसंयायाः पाश्चात्यघटिकाद्वयरात्रौ देशना पूर्णा जाता सम्भाव्यते, यतोऽमावास्यायामेकोनविंशन्मुहूर्तैः निर्व्वोणं कथितमस्ति, षोडश प्रहरास्तु ततोऽर्वाग् जाता युज्यन्त इति ॥ ४५० ॥

### अथ गणिरङ्गवर्द्धनकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च ।

यथा—श्रावकस्य निर्व्विकृतिकप्रत्याख्यानं यतिविविक्तिकं कल्पते न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यतीनां श्रावकाणां च मुख्यवृत्त्या निर्व्विकृतिकं न कल्पते, कारणे तु कल्पते, एवंविधान्यक्षराणि शाले सन्ति, तस्मात् श्राद्धः कदाचिन्निर्व्विकृतिकप्रत्याख्यानं करोति तस्य न कल्पते, बद्धतपसि तु कल्पते, कारणत्वाद् एकान्तेन निषेधो ज्ञातो नास्ति, यतीनां तु पुर्व्वोदिषु पुनः पुनस्तत्प्रत्याख्यानकरणत्कल्पत इति ॥ ४५१ ॥

तथा—पौषधं कर्तुंकामस्योपवासं कर्तुंकामस्य च रात्रौ सुखभक्षिकाभक्षणं कल्पते न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—पौषधोपवासं कर्तुंकामस्य श्राद्धस्य मुख्यवृत्त्या रात्रौ सुखभक्षिकाभक्षणं न कल्पते, यस्य तु सर्वथा तद्विना न चलेति स प्रथमरात्रिप्रहरद्वयं यावत्कदाचित्सुखभक्षिकां भक्षयति तदा पौषधस्योपवासस्य वा भङ्गो न भवति, यदि तु तत्कालानन्तरं भक्षयति तदा भङ्गो भवतीति ॥ ४५२ ॥

तथा—पुस्तकोपकरणादिकं परिग्रहमध्ये समायाति न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यदि मूर्च्छा भवति तदा परिग्रह एव अन्यथा तु न इति तत्त्वम् ॥ ४५३ ॥

तथा—स्थापना कियत्कालं तिष्ठतीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—स्थापना शाले द्विप्रकारा कथितास्ति—इत्तरा यावत्कथिका च, तत्र यावदुपयोगो भवति तावदित्तरा, यावद्वस्तुविनाशो न भवति तावद्यावत्कथिका भवतीति ॥ ४५४ ॥

तथा—येन वीक्षाग्रहणार्थं नीलवाणिप्रत्याख्यानं कृतं भवति तस्य वीक्षाग्रहणानन्तरं कल्पते न वा इति प्रश्नोऽत्रोच्चरं—यदि प्रत्याख्यान-  
करण एवं कथितं भवति यद्दीक्षाग्रहणानन्तरं नीलवाणिः कल्पते तदा कल्पते, नान्यथेति ॥ ४९९ ॥

तथा—बहुतरे दुग्धे दधि वा यत्राल्पतरान् तन्दुलान् प्रक्षिपति तदुग्धं तदधि वा निर्विकृतिकं भवति न वा इति प्रश्नोऽत्रोच्चरं—‘दक्ष-  
बहु अप्ततंदुले’ ति भाष्यगाथावचनादल्पतन्दुलप्रक्षेपेऽपि तदुग्धं तदध्यपि निर्विकृतिकं भवतीति ज्ञायत इति ॥ ४९९ ॥

### अथ गणिमविजयकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च ।

यथा—निरन्तरं बहवो जीवा मुक्तौ यान्ति परं मुक्तौ सङ्कीर्णं न जायते संसारश्च रिक्तो न भवति तस्य को दृष्टान्त इति  
प्रश्नोऽत्रोच्चरं—यथा भूमिकापृत्तिका मेघजलेप्रेरिता समुद्रमध्ये निरन्तरं याति तथाऽपि समुद्रः पूर्णो न भवति भूमिकायां च गर्ता न भवति तथा  
मुक्तावध्ययमेव दृष्टान्तो ज्ञेय इति ॥ ४९७ ॥

तथा—कण्डरीकः सहस्रवर्षं चारित्रं प्रपाल्य एकदिनं विषयसुखं भुक्त्वा नरके गतः तच्चारित्रपालनफलं भग्रे उदयं समेप्यति न वा इति  
प्रश्नोऽत्रोच्चरं—सत्फलविपाकानुभवे नियमो नास्ति, अत्रापि च विशेषो दृष्टो नास्ति ॥ ४९८ ॥

तथा—चक्षुर्विकलो ब्रह्मदत्तचक्री राज्ञौ द्विनवतिसहस्राधिकलक्षरूपाणि करोति तानि किं चक्षुर्विकलानि स्वाभाविकानि वा इति प्रश्नोऽत्रोच्चरं—  
ब्रह्मदत्तचक्री यानि रूपाणि विकुर्वति तानि प्रायशश्चक्षुर्विकलानीति ॥ ४९९ ॥

तथा—नवमवासुदेवो द्वारिकायां भवत्यन्यनगरे वा इति प्रश्नोऽत्रोच्चरं—अवसर्पिण्यां नवमवासुदेवो द्वारिकानगरी भवतीति शास्त्रानु-  
सारेण ज्ञायते, वृद्धप्रसिद्धिरप्येवमेवास्तीति ॥ ४९० ॥

तथा—श्राद्धोऽभिमानेनान्यपूजास्पर्द्धया वा सप्तदशभेदपूजां करोति तस्य किं फलं भवतीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—मुख्यपृथग्याऽभिमानादिकं विना केवलवीतरागभक्त्या पूजा क्रियते, यदि कश्चिदभिमानादिना पूजां करोति तदा तस्य न तथाविधं फलमिति ॥ ४६१ ॥

तथा—सङ्कटमध्ये पतितायास्तस्याः शीलवण्डनं स्यात्तदा तस्याः सतीत्वं याति तिष्ठति वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—बलात्कारेण शीलवण्डनायां द्रव्यतः सतीत्वं याति, न तु भावत इत्येके, अपरे त्वाहुः—द्रव्यतः सतीत्वातिक्रमेऽपि न तदतिक्रम इति दशवैकालिकव्याप्तिचूर्णार्थमुक्त-मैथुनचतुर्भङ्गचतुसरेणोक्तीयते ॥ ४६२ ॥

तथा—कमलप्रभाचार्येण तथैककामकर्म बद्धं सत् केन दोषेण विफलीकृतमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अकस्मात्स्त्रीसङ्गदे जाते लिङ्गिभिः प्रभु-कृते चतुर्थव्रतस्य प्रशस्तत्वनिरूपणलक्षणप्रसादेन तद्विफलीकृतमिति प्रसिद्धिः ॥ ४६३ ॥

तथा—नमस्कारस्य श्रीशत्रुहृद्यनान्नश्च गणने अधिकलाभः कुत्रास्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यस्य यद्वर्णने चित्तोच्छासोऽधिको भवति तस्य तद्वर्णनेऽधिकलाभोऽस्ति, परं द्वयोर्महिम्नः पारो नास्तीति ॥ ४६४ ॥

तथा—महावीरेण कर्णशालकाकर्षणे कथमाकन्दः कृतः अनन्तबलत्वादिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अनन्तबलत्वं भगवतां क्षायिकवीर्यमाश्रित्य-वोक्तं 'अपरिमितबला जिणवरिदा' इत्यत्र तथा व्याख्यानात्, ततः प्रबलपीडावशाद्भगवत आकन्दसम्भवेऽपि न किमप्यनुपपन्नमिति ॥ ४६५ ॥

अथ पण्डितनाकार्षिणिशिष्यगणिहर्षविजयकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च ।

यथा—षण्मासस्योपरि देवशय्या रिक्ता न भवति तर्ह्यवन्तीसुकुमालो नलिनगुल्मविमाने द्वात्रिंशद्वर्षः कथमुत्पन्न इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—विमानं तदेव कथितमस्ति परं शय्या सैव कथिता नास्ति तस्मात्किमप्युपपद्यमानं नास्तीति ॥ ४६६ ॥

तथा—कुलकोटिमण्ये एककुलस्य कियन्तः पुरुषाः सन्ति ! उत्तममण्यमण्यभेदभाजश्च कियन्त इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अष्टाधिकशत-  
पुरुषा एककुलमण्ये भवन्तीति प्रसिद्धिरस्ति, परमुत्तममण्यमण्यभेदा ज्ञाता न सन्ति, तथा एतस्य व्यक्तसाक्षराणि शास्त्रे न दृष्टानीति ॥ ४९७ ॥

तथा—विशालानगर्या श्रीमुनिमुद्यतस्वामिस्तूपपातककूलवालको भव्योऽभव्यो वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अस्यां भवुर्वीशतौ सप्तामल्याः  
कथिताः सन्ति, तस्माद्व्यव्यः सम्भाव्यते, परं व्यवसातो महाकर्मा निश्चयतस्तु केवली जानातीति ॥ ४९८ ॥

तथा—गोप्रभृतिजीवमोननाय द्रव्यलिङ्गिनां द्रव्यं गृहीतुं कल्पते न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—ज्ञानाविसंभन्निष द्रव्यं न भवति तदा  
गृह्यते निषेधो ज्ञातो नास्तीति ॥ ४९९ ॥

तथा—गयनधीविरादयः श्रद्धा जातास्तेषां तीर्थकृतप्रतिमापूजने लाभो न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यदि शरीरस्य तथा पञ्चादीनां च पावित्र्यं  
स्यात्तदा निषेधो ज्ञातो नास्ति, परं तेषां प्रतिमापूजने लाभ एव ज्ञातोऽस्तीति ॥ ४७० ॥

तथा—शिष्यस्तादृक् चारिणं न पालयति तत्पूजणं गुरोर्लगति न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यदि गुरुर्भवेन न निवारयति तदा गुरोः पातकं  
लगति, अन्यथा तु न इति ॥ ४७१ ॥

तथा—सर्वे संसारिणो जीवाः परलोकं व्रजन्तः सिद्धशिलां स्पृशन्ति न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सर्वजीवानां सिद्धशिलास्पर्शनं ज्ञातं  
नास्ति, यतः शास्त्रे द्विविधा गतिः प्रोक्ताऽस्ति, एका ऋजुर्हितीया विग्रहगतिः, तत्र ऋजुगतिः—सरलगतिविग्रहगतिः—न ऋगतिरिति ॥ ४७२ ॥

तथा—नक्रगर्दिनस्तिमिश्रागुहाद्वारोद्घाटने ज्वाला निसरन्ति न वा ! यदि न तर्हि कूणिकस्य कथं निसंसारं इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—जम्बूद्वीप-  
प्रज्ञान्यादिगूढमस्ति गच्छकवर्त्तिनः सेनानी नरो द्वारमुद्घाटयति ज्वाला च न निस्सरति, कूणिकस्य तु द्वाराणि नोद्घाटितानि, तर्हि ज्वाला कुतो



निसरेत्, स तु तमिश्रगुहाधिष्ठायकेन दण्डरत्नेन हतः, सैन्यानि पश्चाद्दलितानीत्यक्षराणि आवश्यकद्वारविंशतिसहस्रीमध्ये सन्ति, द्वादशसहस्री-  
मध्ये तु ज्वालानिस्सरणमप्युक्तमस्ति, सा तु कुमतिकृताऽस्ति, आवश्यककटिप्पनके तु कथितमस्ति यत् ज्वालानिस्सरणघोटकपश्चात्पादवृत्त-  
प्रघोषः सिद्धान्तविरुद्धो ज्ञेय इति ॥ ४७३ ॥

### अथ गणिमाणिक्यविजयकृतप्रश्नौ तदुत्तरे च ।

यथा—आद्धः स्वहस्तेन पुष्पाणि नोदयित्वा पूजां करोतीति कुत्र ग्रन्येऽस्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—श्रीशान्तिनाथचरित्रे मङ्गलकलदाः वाटि-  
कातः स्वयं पुष्पाणि गृहीत्वा पूजां करोतीत्यक्षराणि हृदयन्ते ॥ ४७४ ॥

तथा—अम्बुदश्रावकेणादत्तवारि प्रत्याख्यातमस्ति, दत्तवारि तु वृक्षपूतमप्यायि किं वाऽन्ययेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—औपपातिकोपाङ्गानुसारे-  
णाम्बुदो वृक्षपूतं वारि पीतवानिति ॥ ४७५ ॥

### अथ गणिसौभाग्यहर्षकृतप्रश्नौ तदुत्तरे च ।

यथा—आद्धानामाचार्यमध्ये निर्विक्रतिसध्ये च उष्णोदकं प्रासुकं च वारि शुद्धयति न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—उभयमपि शुद्धय-  
तीति ॥ ४७६ ॥

तथा—रोहिण्युपवासः पञ्चम्याद्युपवासश्च कारणे सति मिलन्त्यां त्रिभौ क्रियते न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—कारणे सति मिलन्त्यां त्रिभौ  
क्रियते कार्यते चेति प्रवृत्तिर्दृश्यते, कारणं विना तदुपप्राप्तयामेवेति बोध्यम् ॥ ४७७ ॥

## अथ गणिदामर्षिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च ।

यथा—पद्मचरित्रे राम एकाक्येव सिद्ध इत्युक्तं, श्रीशत्रुञ्जयमाहात्म्यादिषु तु त्रिकोटिसाधुमिस्सार्धं मुक्तिगमनमुक्तं, तथैभिन्न-  
त्वमेकत्वं वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—उभयत्रोक्तो राम एक एव, परं पद्मचरित्रे प्राधान्याद्वास्यैवाभिधानं नान्येषां, शत्रुञ्जयमाहात्म्ये तु  
परिवारसहितस्याभिधानमित्यत्र ग्रन्थकृदभिप्राय एव प्रमाणमिति ॥ ४७८ ॥

तथा—श्रीशालिभद्रकृते गोभद्रदेवेन नीयमानमलङ्कारादि वस्तु वैक्रियमौदारिकं वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अलङ्कारादि वस्तु औदारिकमिति  
ज्ञायते ४७९ ॥

तथा—वैक्रियमन्दारपुष्पमालादि निर्मल्यं विगन्धिं च स्यान्नवा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—वैक्रियमन्दारपुष्पादि विशारत्तममिति, न तु विगन्धि  
स्यादिति ज्ञायते ॥ ४८० ॥

तथा—साध्वीवन्दने श्रद्धा ‘अणुजाणह भगवति पसाउगरिन्’ इति पठन्त्यन्यथा वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—साध्वीनां वन्दने ‘अणुजाणह  
भगवति ! पसाउगरी’ ति पठन्ति ॥ ४८१ ॥

तथा—कियद्भिः परमाणुभिस्त्रसरेणुर्भवतीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अनन्तसूक्ष्मपरमाणुभिरैकः व्यवहारपरमाणुर्जायते, अष्टव्यवहारपरमाणुभिरैका  
उत्सूक्ष्णश्लक्ष्णिका जायते, तामिरष्टभिरैक श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका जायते, तामिरष्टभिरैक ऊर्ध्वरेणुर्जायते, एभिरष्टभिरैकस्त्रसरेणुर्जायते, एतावता कोऽर्थः—  
चतुस्सहस्रैः वंणवत्तयधैकैर्व्यवहारपरमाणुभिरैकस्त्रसरेणुर्जायते इत्यर्थः ॥ ४८२ ॥

नेनमशे  
छासः

९ ॥

तथा—सूक्ष्मपृष्ठीप्रमुखाः पञ्च स्थावरास्सन्ति, तेष्वश्लिस्तम्भादिकं भित्त्वा को जीवो यातीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अश्लिस्तम्भादिकं कश्चिद्वालयति तदा ते पञ्चापि सूक्ष्मा अश्लिस्तम्भादिकस्य यागि सूक्ष्मविवरणानि सन्ति तैः कृत्वा तत्रस्था एव तिष्ठन्ति, अश्लिस्तम्भादिकैर्न चाख्यते, स्थवरत्वादिति, अश्लिस्तम्भादिके तु स्वात्मना तेषां प्रवेशो न सम्भाव्यत इति ॥ ४८३ ॥

तथा—तामल्लितापसेन सम्यक्त्वक प्राप्तामिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—श्रीभगवतीसूत्रानुसारेण ईशानेन्द्रो भूत्वा पश्चात्सम्यक्त्वं प्राप्तमस्ति, प्रधो-वस्तु तामल्लिभवप्रान्ते प्राप्तामिति श्रूयते ॥ ४८४ ॥

तथा—श्रेणिकराज्ञः पुत्रो नन्दिपेणनामा देवलोके गतोऽस्त्यथवा मोक्षे इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—वीरचरित्रायनुसारेण देवलोके गतोऽस्ति, महानिशीथमध्ये तु वरमन्तरीरी कथितोऽस्तीति ॥ ४८५ ॥

### अथ पण्डितज्ञानसागरगणिकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च ।

यथा—अन्यग्रामादागत्य पौषधं लत्वा पुनस्तत्र याति न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—पौषधविधिना याति तदा निषेधो ज्ञातो नास्तीति ॥ ४८६ ॥

तथा—‘संथारय उट्टणकिय’ इत्यस्य कोऽर्थः तथापसारणकिय इत्यस्यापि कोऽर्थ इति व्यक्त्या प्रसाद्यमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—‘संथारय उट्टणकिय’ इत्यत्र संस्तारकेऽविधिना उट्टण इति उट्टर्त्तन पार्श्वपरावर्त्तनं ‘किय’ इति कृतं, तथा ‘पसारण किय’ इत्यत्र अविविधना हस्तादेः प्रसारणं किय इति कृतमित्यर्थो ज्ञेय इति ॥ ४८७ ॥

तथा—प्रोन्च्छनकस्योपरि स्थित्वा प्रतिक्रमणं कृतं शुद्धयति न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—तदुपरि कृतं न शुद्धयतीति, प्रतिक्रमणसूत्रादिकथनवेलायां तु तत्रोपवेष्टव्यमिति ॥ ४८८ ॥

## अथ गणिभाणविजयसूरिशिष्यगणिजीवविजयकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च ।

यथा—साधूनां रोगोत्पत्तावन्यः कश्चिदशनाद्यानेता नास्ति तर्हि साध्वी तमानीय समर्पयति किं वा श्रद्धादिरिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—तथा-  
विधकारणे यतनया साध्व्यानीतमप्याहारमन्निकापुत्राचार्यवत्साधवो गृह्णन्ति, श्रद्धाद्यानीताहारं तु न गृह्णन्त्येवेति ॥ ४८९ ॥

तथा—कश्चिद् ज्ञातेर्बहिरस्ति, तस्य गृहेऽशनादिग्रहणं कारणं विना कल्पते न वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—लोकविरुद्धमहापवादे सति यो ज्ञाते-  
र्बहिष्कृतस्तस्य गृहे तथाविधकारणं विना न कल्पत इति ॥ ४९० ॥

तथा—श्रीचन्द्रप्रभचरित्रमध्ये अजापुत्रेणाऽग्निखातिकामध्ये शम्पां वक्रे इत्युक्तमस्ति तत्किमिति; तथा दुर्जयराजा तत्र गतस्तद्भवनं  
कथ्यते किं वा पातालगृहं, तस्माद्धस्ती अपहृत्य गतस्तत्र नरका दर्शिताः पञ्चदेवतया नहिर्मुक्तः सर्वोऽङ्गसुन्दर्याः पार्श्वे गतः, तत्र किं  
भवनपतिनिकाये किं व्यन्तरनिकाये वा ! तथा दुर्जयराजा कुत्र भवनमध्येऽस्ति; सर्वोऽङ्गसुन्दरी च ततोऽधः कुत्रास्ति, तथाऽष्टापदे  
गतस्तत्रेन्द्रेण वस्त्राणि समर्पितानि तानि किं वैक्रियाण्यौदारिकाणि वा इति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अजापुत्रेणाग्निखातिकामध्ये शम्पा वृत्ता फलं च  
दिव्यानुमोवेन प्राप्तं, तथा दुर्जयराज्ञो वासस्थानं भूमिकाविवरमध्ये मनुष्यसम्बन्धिन्यां राजधान्यामस्ति, तथा—सर्वोऽङ्गसुन्दरी व्यन्तरी, तद्वासस्थानं  
व्यन्तरनिकायेऽस्ति, तथा हस्ती अपहृत्य गतः इत्यादि सर्वं तद्विलसितं ज्ञेयम्, तथा अष्टापदे वस्त्राण्यर्पितानि तान्यौदारिकाणि ज्ञेयानि  
इति ॥ ४९१ ॥

तथा—श्रद्धा देवद्रव्यं व्यंगेन गृह्णन्ति न वा ! इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—महत्कारणं विना न गृह्णन्ति इति ॥ ४९२ ॥

तथा—जिनालयकार्यकर्तुः आत्मार्थं कार्यं दीयते न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—जिनालयसत्यापकेन स्वकीयकार्यं न कार्यत इति ॥ ४९३ ॥  
तथा—ज्ञानद्रव्यममारिद्रव्यं च निनगृहकार्ये आयाति न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—ज्ञानद्रव्यं जिनालयकार्ये आयातीति असराण्युपदेश-  
चिन्तामणौ सन्ति, अमारिद्रव्यं तु महत्कारणं विना न समायातीति ज्ञायते ॥ ४९४ ॥

तथा—एकप्रहरदिवसचटनादनु पौषघग्रहणं शुद्धयति न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—प्रहरदिवसादनु पौषघग्रहणं न शुद्धयतीति परम्प-  
राज्जतीति ॥ ४९५ ॥

### अथ गणिसूरविमलकृतप्रश्नौ तदुत्तरे च ।

यथा—जिनकल्पिकानां किं प्रायश्चित्तमायातीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—“पञ्चैव संजया खलु, नायसुएण कहिया जिणवरेण । तेति-  
पायच्छित्तं, अहकमं कित्तइसामि ” ॥ १ ॥ ज्ञातसुतेन जिनवरेण वर्द्धमानस्वामिना पञ्चैव खलु संयताः कथिताः, तेषां यथाक्रमं प्राये-  
श्चित्तं कीर्त्तयिष्यामि, तदेव कीर्त्तयति “सामाइयसंजयाणं, पच्छित्ता छेदमूलरहिअट्ठ । थेराणं जिणाणं पुण, तेवमंतं छव्विहं होइ ” ॥ २ ॥  
सामायिकसंयतानां स्थविराणां स्थविरकल्पिकानां छेदमूलरहितानि योगाण्यद्यौ प्रायश्चित्तानि भवन्ति, जिनानां—जिनकल्पिकानां पुनः सामा-  
यिकसंयतानां तपःपर्यन्तं पञ्चविधं प्रायश्चित्तं भवति, “छेदोवट्ठावणिए, पायच्छित्ता हवन्ति सत्त्वेयि । थेराणं जिणाणं पुण मूलंतं अट्ठहा  
होइ ” ॥ ३ ॥ छेदोपस्थापनीये संयमे वर्त्तमानानां स्थविराणां सर्वोपायि प्रायश्चित्तानि भवन्ति, जिनकल्पिकानां पुनः मूलपर्यन्तमष्टधा-  
भवति, “परिहारविमुद्धीए, मूलंता अट्ठ होति पच्छित्ता । थेराणं जिणाणं पुण, छव्विह छेयादिवज्जं वा ” ॥ ४ ॥ परिहारविमुद्धिके संयमे वर्त्त-

मानानां स्थविराणां मूलान्तान्यष्टौ प्रायश्चित्तानि भवन्ति, जिनानां पुनः छेदवर्जं षड्विधं “ आलोअणा विवेगो य, तइयं तु न विज्झई । सुहुमे अ-  
संपराए, अहक्खाए तहेव अ ” ॥ ५ ॥ सूक्ष्मसम्पराये यथाख्याते च संयमे वर्त्तमानानां आलोचना विवेक इत्येवंरूपे द्वे प्रायश्चित्ते भवतः, तृतीयं  
तु न विद्यते, ततः प्रस्तुते किमागतमिति चेदाह—“ नउसपडिसेवया खलु, इत्तरि छेया य संजया दोणिण । जा तित्थणुसज्जन्ती, अत्थि तु तेणं-  
तु पच्छिस्से ” ॥ ६ ॥ निर्ग्रन्थचिन्तायां नकुशः प्रतिसेवकः—प्रतिसेवनाकुशीलः इत्येतौ द्वौ निर्ग्रन्थौ संयतचिन्तायां इत्थरी-इत्थरसामाधिकवान्, छेदोप-  
स्याप्यश्चेति द्वौ संयमौ यावत्तर्हि तावदनुषङ्गतो ऽनुवर्तते, तेन ज्ञायते सम्प्रत्यपि प्रायश्चित्तगतमस्तीति व्यवहारटीकार्या, एतदनुसारेण जिनक-  
ल्पिकानां मूलपर्यन्तमष्टधा प्रायश्चित्तं भवतीति ॥ ४९१ ॥

तथा—युगलिकक्षेत्रे कल्पवृक्षा वनस्पतिरूपा पृथ्वीकायरूपा वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—ते वनस्पतिरूपा इति ॥ ४९७ ॥

इति सकलसूरिपुरन्दरपरमशुक्लगच्छाधिराजभट्टारकश्रीविजयसेनसूरिप्रसादीकृतप्रश्नोत्तरसंग्रहे भट्टारकश्री-  
श्रीहीरविजयसूरिशिष्यपण्डितशुभविजयगणिविरचिते विबुधगणिविनिर्मितप्रभाष्यः

तृतीयोक्तासः सम्पूर्णः ॥

## अथ प्रश्नोत्तरसंग्रहे चतुर्थोऽध्यासः प्रारभ्यते ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १ ॥

नत्वा श्रीवर्द्धमानाय, वर्द्धमानशुभाश्रिये । प्रारभ्यते मया तुर्यो-ऽध्यासः श्रावकपृच्छकः ॥ १ ॥

अथ जेसलमेरुसङ्कृतानुयोजनानि तत्प्रतिवर्चासि च ।

यथा—“ जा दुष्पसहो सूरि, होहिंति जुगप्यहाण आयरिआ । भज सुहम्पमिई, चउरहिआ दुनि अ सहस्सा ” ॥ १ ॥ इत्यादिक-  
गाथाविर्युगप्रधानाचार्योपाध्यायसामुप्रमुखाणां सङ्ख्या दीपालीकल्पमध्ये कथिताऽस्ति, सा तथैव निरुद्धारिताऽस्ति, अन्यथा ना !, तथा एतद्दीपाली-  
कल्पकर्त्ता सुविहितोऽस्ति न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं-युगप्रधानप्रमुखाणां सङ्ख्या कथिताऽस्ति, साऽस्यात्मना मान्याऽस्ति, यतोऽन्येषु बहुषु दीपाली-  
कल्पेषु तथा मन्दारकश्रीधर्मघोषसूरिकृतदूसमगणिकप्रमुखग्रन्थे चैतत्सङ्ख्या दृश्यते, तथा दीपालीकल्पकर्त्ता त्वात्मना मान्योऽस्तीति ॥ १ ॥

तथा—“ गीअस्यो अ विहारो, बीओ गीअस्यमीसिओ मणिओ । एत्तो तइअविहारो, नाणुन्नाओ जिणवरोहि ” ॥ १ ॥ एतद्गाथाया-  
भावस्तु अयं-यो गीतार्थेन सार्द्धमगीतार्थो विहारं करोति स गीतार्थेनिश्रितः कथ्यते किंवा गीतार्थस्य निश्रयाऽगीतार्थः एकाकी  
विहारं करोति स गीतार्थेनिश्रितः कथ्यते तद्वचकस्या प्रसाद्यमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं- गीतार्थेन सार्द्धमगीतार्थो विहारं करोति स गीतार्थेनिश्रितो

विहारः कथ्यते, यो गीतार्थस्य निश्रयाऽगितार्थस्सन् पूषण् विहारं करोति सोऽपि गीतार्थनिश्चितविहारः कथ्यते, यत एतद्वाक्याया 'नीओ गीअत्थ-  
भीसिओ भणिओ' इति 'नीओ गीअत्थनीसिओ भणिओ' इति पाठद्वयं प्रवचनसारोद्धारदीकायां व्याख्यातमस्तीति ज्ञेयम् ॥ १ ॥

तथा—सत्यकिविद्याधरेण श्रीवर्द्धमानस्वामिनः पुरस्तात्कथितं यावन्मिथ्यात्वं वर्त्तते तावत्सर्प समुद्रमध्ये निमज्जयाम्येतद्वाक्तां प्रबोवेणास्तिः  
किं वा ग्रन्थे तत्प्रसाद्यमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—प्रबोवेणैतद्वाक्तां श्रूयते, परं ग्रन्थोऽक्षराणि न दृष्टानीति ॥ ३ ॥

तथा—कश्चिद् श्राद्ध एकाशनद्वयशानप्रत्याख्यानं विना प्रासुकजलं पिबति पाणसाद्याकारानुचरति न तस्य रात्रौ द्विषाहारश्चिदाहारो  
वा कृतः शुद्धयति किंवा न्तुर्विधाहार इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—रात्रौ न्तुर्विधाहारं करोतीति परम्पराऽस्ति ॥ ४ ॥

तथा—समुद्रमध्ये मत्स्यो जातिस्मरणेन कृत्या सम्यक्तत्वं देशविरतिं न प्राप्नोति, ते प्राप्य पश्चात् तत्कालं अनशनं करोति किंवा किय-  
त्कालं सम्यक्तत्वं देशविरती आराधयतीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—कश्चित्तत्कालमनशनमुचरति, कश्चिच्च कालान्तरेणोच्चरतीति ज्ञायते, निश्चयादक्षराणि तु  
न दृष्टानीति ॥ ५ ॥

तथा—कश्चिदुपशमश्रेणिमेकशः करोति, स निश्चयेन तस्मिन्नेव भवे द्विशः करोति न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—तस्मिन् भवे द्विशः  
करोत्येवेति नियमो ज्ञातो नास्ति, यद्युपशमश्रेणिमेकस्मिन् भवे उत्कृष्टां करोति तदा द्विशः करोतीति ज्ञातमस्ति ॥ ६ ॥

तथा—सम्यक्तत्वं प्राप्य योऽर्द्धपुद्गलपरावर्तको जीवः स संसारमध्ये कियत्कालं तिष्ठति ( स परावर्त्तः अर्धकालमानः अर्धलोकाप्रदेशमरण-  
प्रमाणो वा ) इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सूक्ष्मसेत्रपुद्गलपरावर्त्त कुर्वतां यावान्कालो जायते तावान्कालः पुद्गलपरावर्त्तः तस्यार्द्धेन यावान् कालो जायते



सावकाळ संध्यावप्रार्थनानंतर जीवः संसारमध्ये तिष्ठति, एवंविधो भवो ज्ञातोऽस्ति, परमद्वेलोकाकाशप्रदेशानुक्रमेण मरणेन कृत्वा सृष्टात्येवविधो भावो ज्ञातो नास्तीति ॥ ७ ॥

तथा—श्रीधर्मघोषद्विरकृतदुष्पमासद्धस्तोत्रदीपालीकृतगुणवर्णिकापर्यायकालसप्ततिकाप्रमुखग्रन्थेषु चतुरधिकद्विसहस्रयुगप्रधानानां सङ्ख्या कथिताऽस्ति, तथा—युगप्रधानसमानाचार्योत्तमगुणधारकाचार्यमध्यगुणधारकाचार्योपाध्यायसाधुसाध्वीश्रावकश्राविकाणामपि सङ्ख्या कथिताऽस्ति, साऽऽत्मज्ञातमात्रभूमिकामध्ये सम्भाव्यते किं वा सकलभूतक्षेत्रमध्ये : तथा, श्रीसुधर्मस्वामिभ्यः श्रीदुष्प्रसहसूरीन् यावत् युगप्रधानानां सङ्ख्या पट्टपरम्परयाऽन्यथा वा ? इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—युगप्रधानप्रमुखसङ्ख्या कथिताऽस्ति सा सकलभूतक्षेत्रमध्ये शास्त्रानुसारेण ज्ञायते, तथा पट्टपरम्परया युगप्रधानसङ्ख्या भवत्येवविधाऽऽराणि न दृष्टानीति ॥ ८ ॥

तथा—पण्डितश्रीवानरिगणिकृतमकरगणमध्ये 'खीणे स्वायगसम्भं, स्वायगचरणं च वा कहिं' एतद्वाथायां क्षायिकसम्यक्त्वं क्षायिकचारित्रं च द्वादशगुणस्थानकादारभ्य चतुर्दशगुणं यावद् भवति, तथा—पञ्चनिर्ग्रन्थीकर्मग्रन्थयोर्मध्ये क्षायिकसम्यक्त्वं क्षायिकचारित्रं द्वादशगुणादारभ्य चतुर्दशगुणं यावद्भवति तत्कथं मिलति, यतः क्षपकश्रेणिधनिको दशगुणाद् द्वादशगुणमागच्छति तदा एकादशगुणे क्षायिकसम्यक्त्वं क्षायिकचारित्रयोरेव सम्भवादिति : प्रश्नोऽत्रोत्तरं—पञ्चनिर्ग्रन्थीकर्मग्रन्थयोर्मध्ये एकादशगुणे क्षायिकसम्यक्त्वं कथितमस्ति परं क्षायिकचारित्रं कथितं नास्ति तथा क्षायिकसम्यक्त्वधनिक उपशमश्रेणि चदति तदैकादशगुणे क्षायिकसम्यक्त्वं भवति क्षायिकचारित्रं त्वेकादशगुणे नास्त्येवेति बोध्यम् ॥ ९ ॥

तथा—त्रयोदशगुणस्थानके सातवेदनीयकर्मणः स्थितिर्द्विसमयप्रमाणा कुत्रचित्कथिताऽस्ति सा कथं घटते ? यतो भगवत्यादिषु त्रिसम-  
यस्थितेरुक्तत्वादिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—त्रयोदशगुणे सातवेदनीयकर्म प्रथमसमये बध्यते द्वितीयसमये वेद्यते तृतीयसमये निर्जयते इति श्रीभगव-  
तीसूत्रस्थानाङ्गसूत्रादिषु प्रोक्तमस्ति, परं निर्जीर्णनसमयेऽवस्थानाभावाद् द्विसमयस्थितिर्घटते इति ज्ञेयम् ॥ १० ॥

तथा—शक्नेन्द्रस्य कूणिकराजा पूर्वसङ्गतिकश्चमेन्द्रस्य च प्रव्रज्यासङ्गतिकः प्रतिप्रादितोऽस्ति तत्कथं मिश्रति इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—  
सौधर्म्येन्द्रस्य कार्तिकश्रेष्ठिभवे कूणिकराज्ञो जीवो गृहस्थत्वेन मिश्रमस्तीति तेन पूर्वसङ्गतिकः, चमेन्द्रस्य तु पूरणतापसभवे कूणिकजीवः  
तापसत्वेन मिश्रं तेन पर्यायसङ्गतिकः कथितोऽस्तीति श्रीभगवतीसूत्रसप्तमशतकनवमोद्देशकश्रुतौ इति बोध्यम् ॥ ११ ॥

तथा—असालिको जीवश्चक्रवर्त्यादिस्कन्धावाराध उत्पद्यते स द्वीन्द्रियः पञ्चेन्द्रियो वा ? चेत्संमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियस्तदा तस्य देहमेतानं  
विचार्यमाणं विघटते, यत उरःपरिसर्पस्योत्पत्तेर्धातुलनिष्पन्नयोजनपृथक्त्वदेहमानं प्रोक्तमस्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—जीवसमासप्रकरणश्रुतौ द्वीन्द्रियो  
जीवाभिगमपन्नवणासूत्रवृत्तिमध्ये तु सम्मूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियः प्रोक्तोऽस्ति, अत्रार्थे निर्णयं केवलिनो विदन्तीति, शरीरमानमाश्रित्य तु 'सरीरमुत्सेह-  
अंगुलेण तहा' इत्येतस्य प्रायिकत्वात्प्रमाणाङ्गुलेनासालिकस्य देहमानं सम्भाव्यते, यतो महाविदेहे चक्रवर्त्तिप्रभृतिस्कन्धावारो द्वादशयोजनप्रमाणः  
प्रमाणाङ्गुलेन प्रोक्तोऽस्तीति ज्ञेयम् ॥ १२ ॥

तथा—स्वयम्भूरमणसमुद्रस्योपरि ये ज्योतिष्कासन्ति तेषा राजधानी उत्पातस्थानं च कास्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—स्वयम्भूरमणसमुद्रस्यो-  
परिस्थज्योतिष्काणां राजधानी स्वयम्भूरमणसमुद्रमध्येऽस्तीति जीवाभिगमे उक्तमस्ति, तेषामुत्पातस्थानं स्वस्वविमानेऽस्ति प्रज्ञापनो-  
पाङ्गादिष्विति ॥ १३ ॥

तथा—महाविदेहेषु ये श्राद्धा देशव्रतनस्ते  
“ देसिअ राइअ पञ्चिअ चउमासिअ वच्छरी अ नामाओ । दुण्ह पण पडिकमणा मज्झिमगाणं तु दो पढमा ” ॥ १० ॥ इति सप्ततिशत-  
स्थानरुस्थगथानुसारेण यदि यतीनां दैवसिकरात्रिकप्रतिक्रमणद्वयकरणं प्रत्यहं दृश्यते, तर्हि श्रावकाणां तत्करणे किं वक्तव्यमिति ॥ १४ ॥

तथा—अष्टौ गोस्तनाकारा जीवप्रदेशास्सन्ति तेषां कर्मवर्गणा लगति न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—जीवानां मध्याह्नप्रदेशानां कर्मवर्गणा  
न लगतीति ज्ञानदीपिकायां प्रोक्तमस्ति, यथा “ स्पृश्यन्ते कर्मणा तेऽपि, प्रदेशा आत्मनो यदि । तदा जीवो जगत्पस्मिन्नजवित्वम-  
वानुयात् ” ॥ ११ ॥ ११ ॥ ११ ॥

तथा—समये समये अनन्ता हानिः कथ्यते सा किं वत्त्वाश्रित्येति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अवमर्षिणीकाले वर्णगन्धरसंस्पर्शोदियर्यायाणाम-  
नन्ता हानिः कथ्यते, एवंविधभावो जम्बूद्वीपमग्निसिष्टचावस्तीति ॥ १६ ॥  
य चतुर्विंशतिस्तवं पठितवन्तस्तमेवार्थतः श्रीमहावीरवारके यं चतुर्विंशतिस्तवं पठितवन्तस्तमेव श्रीमहावीरवारके पठितवन्त उतान्यमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—श्रीआदिनाथवारके

तथा—ये केचन रात्रिभोजनप्रत्याख्यानिनो घटिद्वयशेषे दिवसे भोजनं कुर्वन्ति तेषां रात्रिभोजनप्रत्याख्यानभङ्गो भवति न वा इति,  
प्रश्नोऽत्रोत्तरं—घटीद्वयशेषे दिवसे भोजनं कुर्वन्ता रात्रिभोजनस्यातीचारा लगति, न तु तद्भङ्ग इति ॥ १८ ॥

१ ‘ तं दुण्हमुभयकाल इयराणं कारणे इव सुणिणो ’ इति पाठात् मुनीनां कारणे जाते प्रतिक्रान्तावपि श्रावकाणां न तथा, किन्तु मुनीनामेवेति कुर्वन्त्येवोभयसन्ध्यं  
श्रावकाः प्रतिक्रान्तिमिति ।

॥ ११ ॥

तथा—कसेल्लकपानीयं त्रिविधाहारप्रत्याख्यानानां पातुं शुद्धयति न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—त्रिविधाहारप्रत्याख्यानानां तत्पानीयपानं शुद्धयति, परमात्मनामाचरणा नास्तीति ॥ १९ ॥

तथा—पक्षाग्रग्रहणकालः कुत्र ग्रन्थेऽस्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—पक्षाग्रग्रहणकालः श्राद्धविधौ कथितोऽस्तीति ॥ २० ॥

तथा—श्रीस्थूलभद्रस्य नाम चतुरशीतिं चतुर्विंशतीर्यावत्तिष्ठति तत्कुत्र ग्रन्थेऽस्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—श्रीस्थूलभद्रस्य नाम चतुरशीतिं चतुर्विंशतीर्यावत्तिष्ठति इति तच्चरित्रादिष्वस्तीति बोध्यम् ॥ २१ ॥

तथा—‘नव रसविगृहो अभिकवणं २ न आहारेइ’ इति कल्पसूत्राक्षरानुसारेण नव रसविकृतयो बलवर्द्धनार्थं प्रत्यहं ग्रहणतया निषिद्धाः सन्ति, परं तद्ग्रहणाचरणाऽस्ति न वा इति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—या अपक्षयविकृतयस्ताः सम्बन्धपाठत्वात्त्रिविद्धास्मिन्ति, न त्वाचरेणेति बोध्यम् ॥ २२ ॥

तथा—श्रीकल्पसूत्रं श्रीमहावीरादनु नवशताशीतिवर्षातिक्रमे देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणैर्लिपितया पुस्तकारूढं चक्रे, ततोः पुराऽन्यत्किमपि पुस्तकमभून्न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सर्वोऽपि सिद्धान्तो देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणैर्नवशताशीतिवर्षातिक्रमे पुस्तकारूढः कृतस्ततः पुराऽन्यपुस्तकानि बहून्यमूवीचति ॥ २३ ॥

तथा—मुलसया द्वारिंशत्पुत्रा युगपत्प्रसूतास्तत्सत्यं न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—मुलसया द्वारिंशत्पुत्रा युगपत्प्रसूतास्तत्सत्यं, तदेक्षराण्यपि वीरचरित्रादिषु सन्तीति ॥ २४ ॥

तथा—येषां कटाहविकृतिप्रत्याख्यानं भवति तेषां डोलियाख्यतैलतलितपक्वान्नादिकं कल्पते न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—डोलियाख्य-तैलं विकृतिर्न भवति, तेन तत्तैलनिष्पन्नं पक्वान्नाद्यपि विकृतिर्न भवतीति ॥ २५ ॥



तथा—“जो देह कणयकोडी, अहवा कारेइ कणयजिणभवणं । तस्स न तत्तिअ पुण्णं जत्तिअ वंभवए धरिए” ॥ १ ॥ एतद्भूषणार्थं किं दिवससत्कं यावज्जीवसम्बन्धि वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—एतद्भूषणार्थं मुख्यवृत्त्या यावज्जीवसम्बन्धि अध्यवसायविशेषेण दिवसादिसम्बन्ध्यपीति ॥ ३२ ॥

तथा—येन नमस्कारसहितप्रत्याख्यानं कालवेलाया न कृतं तस्य पश्चात्पौरुष्यादिप्रत्याख्यानं कर्तुं शुद्ध्यति न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—नमस्कारसहितप्रत्याख्यानं विना पौरुष्यादिप्रत्याख्यानं कर्तुं न शुद्ध्यत्येवविधाक्षराणि श्राद्धविधिप्रमुखग्रन्थेषु सन्तीति ज्ञेयम् ॥ ३३ ॥

तथा—पाक्षिकचतुर्मासिकादितपः क्रियता कालेन प्राप्यते इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यथाशक्त्या तत्तपः त्वरितमेव पूर्णं भवति—तथा विधीयते । कालनियमस्तु ग्रन्थे ज्ञातो नास्तीति ॥ ३४ ॥

तथा—जेसलमेरुनगरे भेदिनीद्रुद्धे चोपाश्रयमध्ये श्रीहीरभिजयसूरिप्रतिमाया मस्तकस्योपरि श्रीवीरप्रतिमाऽस्ति; तस्मात्तमुपाश्रयं केचन चैत्यं कथयन्ति, तत्र किमुत्तरमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यथा—श्राद्धानां गृहे जिनप्रतिमासत्वेऽपि न चैत्यत्वं, तथा अत्रापीति ज्ञेयम् ॥ ३५ ॥

तथा—पक्षिकायां षष्ठ विधाय वीरपष्ठमध्ये क्षिप्यते, पाक्षिकोपवासस्तु सगध्यायादिना पूर्यते तदा स पष्ठस्तन्मध्ये आयाति न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अल्पशक्तिमता यदि पाक्षिकपष्ठो वीरपष्ठमध्ये क्षिप्यते तदा स आयाति, पाक्षिकं तप उपवासादिना पृथक् त्वरितं पूर्यते इति ॥ ३६ ॥

तथा—वीरपष्ठपारणके द्व्यक्षानादि विधीयते किं वा यथाशक्त्ये (क्ती) ति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यथाशक्त्या (क्ति) विधीयत इति ॥ ३७ ॥

तथा—अन्तर्द्विपेदितायां द्वाराणि सन्ति न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—जगत्या द्वाराणि कर्गितानि सन्ति, अन्तर्द्वीपे तु वेदिका जगत्याः स्थानेऽस्ति, अतो वेदिकायामपि द्वाराणि सम्भाव्यन्त इति ॥ ३८ ॥

तथा—चतुर्विधमिथ्यात्वमध्ये लोकोत्तरमिथ्यात्वं गुरु किं वा लौकिकं प्राग्भोकोत्तराच्छौकिकं गुस्तरमिति श्रुतममूत्, अधुना तु लौकिकालोकोत्तरं श्रूयते, तद्वचस्या प्रसाद्यमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरम्—प्रतिक्लमण्यवृत्तिप्रभृतिग्रन्थेषु मिथ्यात्वं लौकिकं देवगतं च तथा लोकोत्तरं देवगतं गुस्गतं चेति, चतुर्विधमिथ्यात्वमध्ये इदं महदिदं लघित्यक्षराणि तथाविधग्रन्थे न दृष्टानीति द्रव्यक्षेत्रकालभावानुसारेण कथ्यते इति ॥ ३९ ॥

तथा—साध्वी केवलज्ञानोत्पत्त्यनन्तरं छद्मस्यसाधून् वन्दते न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरम्—केवलज्ञानवती साध्वी छद्मस्यसाधून् न वन्दते, यतः केवली ज्ञातस्सन् छद्मस्यसाधून् वन्दते इत्येवं शाले न दृश्यते । तथा केवलज्ञानवतीनां छद्मस्यसाधून् वन्दते इत्यपि सम्भवत्वास्ति, यतः पुरुषः शिरय वन्दते तदा लौकिकमार्गे अनुचितं दृश्यते, परमार्थतस्तु केवली सर्वेषां वन्दनीय एवेति ॥ ४० ॥

तथा—प्रतिष्ठितजिनप्रतिमा विक्रयकारिभिः समुच्छेदितनामलक्षणाः श्राद्धैर्द्रव्यव्ययेन गृहीताः सन्ति, तेन तन्नामोच्चारणसरे (ऽमुं) कस्य जिनस्येयं प्रतिभेति वक्तुं कथं शक्यते ? ततो यदि लक्ष्मादिकरणविधिर्भवति तर्हि तथा प्रसाद्यमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—प्रतिष्ठितजिनप्रतिमानामभिधानलक्षणादि प्रायस्तु न कर्त्तव्यं, पुनः प्रतिष्ठाकर्तुरज्ञातत्वादिकारणेन यद्यावश्यकं कर्त्तव्यं भवति तदा तद्विधाय प्रतिष्ठितवासंस्पादिनां शुद्धिर्भवतीति ज्ञायते इति ॥ ४१ ॥

तथा—प्रतिमाधरः श्रावकः श्राविका वा चतुर्थीप्रतिमात आरभ्य चतुष्पञ्चीपौषधं करोति तदा पाक्षिकपूर्णमाषष्ठकरणभावे, पाक्षिकपौषध विधायोपवासं करोति पूर्णिमायां चैकाशनकं कृत्वा पौषधं करोति तत् शुद्धयति न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—प्रतिमाधरः श्रावकः श्राविका वा

चतुर्थीप्रतिमात आरभ्य चतुष्पञ्चमीपौषधं करोति तदा मुख्यवृत्त्या पाक्षिकपूर्णिमयोश्चतुर्विधाहारपष्ट एव कृतो युज्यते कदाचिच्च यदि सर्वथा शक्तिर्न भवति तदा पूर्णिमायामाचामांलं निर्विकृतिकं वा क्रियते, एवंविधाक्षराणि सामाचारीग्रन्थे सन्ति, परमेकाशनकं शास्त्रे दृष्टं नास्तीति ॥ ४२ ॥

तथा—काञ्चिकवटकादिशाकं तथा दधिप्रमुखगोरसं चैकरात्रि न्यतिक्रम्य द्वितीयरात्रावभक्ष्यं भवत्युत पोडशप्रहरानन्तरमभक्ष्यं भवतीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—योगशास्त्रवृत्त्यादिग्रन्थेषु 'दध्यहर्द्धितयातीत'मिति वचनाद् दिवसद्वयातिक्रमाद्द्व्यादिगोरसं न कल्पते इत्यक्षराणि सन्ति; तस्यार्थस्तु परम्परया एवं कथ्यते—यद्वात्रिद्वयातिक्रमानन्तरं न कल्पते, परं पोडशप्रहरानन्तरं न कल्पते एवंविधाक्षराणि शास्त्रे न दृश्यन्ते, काञ्चिकवटकादिशाकानां राजिकाप्रभृत्युत्कटद्रव्यमिश्रत्वाद्वृद्धपरम्परया चैतदेव कालमानं कथ्यते, न त्वधिकमतिप्रसङ्गाद्, अन्याक्षराणि न ज्ञातानीति ॥ ४३ ॥

तथा—मासमध्ये निगोदजीवा उत्पद्यमानाः कथितास्सन्ति, तथा—“आमासु अ पक्वासु अ, विपच्चाणासु मंसपेसीसु। उत्पज्जंति अणंता, तव्वण्णा तत्थ जंतुणो” ॥ १ ॥ एतद्वाथायां योगशास्त्रवृत्तीयप्रकाशमध्ये कथितमस्ति यन्निगोदशब्देन शरीरं कथ्यतेऽतो मांसमध्ये शरीरिणो अनन्ता जीवा उत्पद्यन्ते, तच्छरीराणि, कानि मांसमेव शरीरतया परिणमति, तद्रूपाणि किंवाऽसङ्ख्यातानि शरीराणि उत्पद्यन्ते तानि तेषामप्यनन्त-शरीरिणामावाधोत्पद्यते न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—मांसमध्ये रसजद्वीन्द्रियजीवा अनेके उत्पद्यमानाः सम्भाव्यन्ते, तथा 'आमासु अ पक्वासु अ' एतद्वाथायां ये निगोदजीवा उत्पद्यमानाः कथिताः सन्ति, तत्र निगोदशब्देन सूक्ष्मजीवा एवमर्थः परम्परया कथ्यमानोऽस्ति, परं साधारणव-स्पतिवदनन्तजीवाश्च एकशरीरं निगोद एवंविधोऽर्थः कथ्यमानो नास्ति, यतः प्रतिक्रमणसूत्रवृत्तौ मांसमध्ये तद्वर्णा अनेके जीवा उत्पद्यमानाः कथिताः सन्ति, परमनन्ता असङ्ख्याता न कथितास्तस्मादनन्ता असङ्ख्याता यत्र कथिताः सन्ति तत्रानन्तासङ्ख्यातशब्देन बहव इत्यर्थो ज्ञेय एवं परम्पराऽस्ति, तानि च जीवशरीराणि मांसपुद्गलतयाऽन्यपुद्गलतया च मिश्रितानि उत्पद्यमानानि सम्भाव्यन्ते, यथा तत्कारनालादिषु द्वीन्द्रिय-



जीवा उत्पद्यमानाः कथितास्सन्ति, तद्वत्त्वेनापि मासजीवानामात्रोत्पद्यते इति सम्भाव्यते, परमेकशरीरस्थानन्तजिविवोत्पद्यते इति ज्ञात नास्तीति ॥ ४४ ॥

तथा—शुद्धसम्यक्त्वधारी आद्धो महाविदेहक्षेत्रे मनुष्यत्वेनोत्पद्यते न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—मरणसमयं चावश्रित्यचारसम्यक्त्वा-  
राधनाया सत्यां वैमानिकेष्वेव आद्धो यातीति ज्ञेयं, तदभावे तु यथासम्भवमन्यत्रापि गतिर्भवतीति आद्धो महाविदेहेष्वपि मनुष्यत्वेनो-  
त्पद्यत इति ॥ ४५ ॥

तथा—तपसा निकाचितकर्मणा क्षयो भवति न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—निकाचितानमपि कर्मणां तपसा क्षयो भवतीति श्रीलक्ष्म-  
ण्ययनसूत्रदृष्ट्यादावुक्तमस्तीति ॥ ४६ ॥

तथा—श्रीवीरेण कस्मिन् भवे तीर्थङ्गरनामगोत्रकर्म बद्धमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—पञ्चविंशतितमनन्दनभवे लक्षवर्षं चरित्वं प्रपाल्य विशति-  
स्यानकान्याराध्य च तीर्थकरणामगोत्रकर्म बद्धमिति ॥ ४७ ॥

तथा—श्रावकः श्राविका वा चतुर्थी पौषधप्रतिमा वहते, तस्य सामाचार्यनुसारेण चतुर्विधाहारपौषधः कर्त्तव्यः कथितोऽस्ति, तथा—  
समवायाङ्गवृत्त्यनुसारेण तु त्रिविधाहारः सम्भवति, तस्मान्निविधाहारपौषध विधाय चतुर्थी प्रतिमा वहते किं वा न इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—प्रवर्चन-  
सारोद्धारादिग्रन्थे आद्धचतुर्थप्रतिमाया चतुष्पर्वीदिने परिपूर्णश्चतुष्प्रकारपौषधः कथितोऽस्ति, तदनुसारेणाष्टप्रहरपौषधश्चतुर्विधाहारोपवासः कर्त्तव्यो  
युज्यते, परं सामाचार्यनुसारेणैतावान् विशेषो ज्ञायते यत् पक्षिकायां षष्ठकरणशक्तिर्न भवति तदा पूर्णिमायाममावास्यायां च त्रिविधाहारोपवासस्तथा  
आचामाश्लशक्यभावे निर्विकृतिकमपि कर्त्तव्यं, तत्र प्रथमोपवासस्तु शास्त्रानुसारेण चतुर्विधाहार एव कर्त्तव्य इति ज्ञायते । समवायाङ्गदृष्ट्यनु-  
सारेण तु त्रिविधाहारोपवासः कर्त्तव्य इति व्यक्तिर्न ज्ञायते ॥ ४८ ॥

तथा—कस्मिन् शास्त्रे श्राद्धस्य सामायिककरणवसरे प्रथमरीयापथिकीं प्रतिक्रम्य सामायिकमुखवह्निकां प्रतिखेत्तयतीति उक्तमस्ति तत्प्रसाद्यमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—‘ इरियावहिआए अप्पडिक्कंताए न किञ्चि कप्पइ चेइअवंदणसज्जायावस्सयाई काउं ’ इत्यक्षराणि महानिशीथग्रन्थे सन्ति, ततः सामायिकेऽरीयापथिकीपूर्वमेव प्रतिक्रम्यते इति ज्ञायते, तथाऽऽवश्यकचूर्णीं ढङ्गुरश्रावको विभातकाले गृहान्निसृत्य शरीरचिन्तां विधायोपाश्रये ईर्यापथिकीं प्रतिक्रामन् कथितोऽस्ति, सा वेला सामायिकप्रतिक्रमणकरणस्येति ॥ ४९ ॥

तथा—नमस्कारपदानामोलिकायां कियन्त उपवासाः क्रियन्ते, तत्र च नमस्कारपदानि कथं गण्यन्ते- इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—नमस्कारस्य नव पदानि सन्ति तत्र प्रथमसप्तपदेषु प्रत्येकं यावन्त्यक्षराणि तावन्त उपवासाः सम्बद्धाः क्रियन्ते, अष्टमनवमपदयोस्तु सप्तदशाक्षराणि संल्लिङ्ग्य तस्मात् शक्तौ सत्यां सप्तदशोपवासाः सम्बद्धाः कर्तव्याः, तदभावे चाष्टौ नव चोपवासाः कर्तव्याः, तथा गणनमांश्रित्याधुनिकप्रवृत्त्यनुसारैर्नैकान्तो न दृश्यते, यतः कश्चिद्गणयति कश्चिन्नेति, यो गणयति स ससौलिकामध्ये यत्पदतपः करोति तत्पदं गणयति, तथाऽष्टमनवमपदतपः सम्बद्धं करोति तर्हि पदद्वयगणनमपि सम्बद्धं गणयति, यदि पृथक् तपः करोति तर्हि पदद्वयगणनमपि पृथग् गणयति, गणनं तु प्रतिपदं लक्षमानं ज्ञेयम् । अष्टमनवमपदयोः सम्बद्धगणनं लक्षद्वयमानं, तयोः पृथक् तपसि पृथग्गणनं लक्षप्रमाणम् । तथा—कश्चिद्यदा यत्पदतपः करोति स तदा तत्पदगणनं द्विसहस्रमानं गणयति, तस्माद्यस्य यादृशी शक्तिः स तादृगणनं विधत्त इति ॥ ५० ॥

तथा—साधुर्मध्याह्नकाजकमुद्धृत्य परिष्ठापयत्यन्यथा वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—चतुर्मासके साधुर्मध्याह्नकाजकमुद्धृत्य परिष्ठापयतीति परम्परा श्रीहीरविजयसूरिपार्श्वे दृष्टास्तीति ॥ ५१ ॥

तथा—जगतीपार्श्वे मक्षिकापक्षप्रमाणं जलं कथितमस्ति, तत्र सर्वदा मक्षिकापक्षप्रमाणं किंवा वेलाया आगमने न्यूनाधिकं वा भवतीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—मक्षिकापक्षप्रमाणं यत्र जलमस्ति तत्र सर्वदा सप्तदशं भवति, परं वेलाप्रयोगेण न्यूनाधिकं ज्ञातं नास्तीति ॥ ५२ ॥

तथा—वर्षाकाले प्रतिक्रमणादिषु विबुधद्योतिका लगति न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—श्रीविजयदानसूरिपार्श्वे श्रीहीरविजयसूरिपार्श्वे च शेषकाले वर्षाकाले च प्रतिक्रमणयोगानुष्ठानादिक्रियाया विबुधद्योतिका लगति, क्रिया सातीचारा भवति, कालो गच्छतीति श्रुतमस्ति ॥ १३ ॥

तथा—आश्विनास्वाध्यायिकादिनत्रयमुपदेशमालादि न गण्यते, तथा चतुर्मासकत्रयास्वाध्यायिकाया तद्वर्ण्यते न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यथा तदस्वाध्यायिकायां दिनत्रयमुपधानमध्ये न तथा चतुर्मासकत्रये, तस्माच्चतुर्मासकत्रयास्वाध्यायिकायामुपदेशमालादि गण्यते ॥ १४ ॥

तथा—पदस्यं विना स्थापनाग्रे प्रतिक्रमणं क्रियते तदा क्षामणकविधिः कथमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—स्थापनाग्रे प्रतिक्रमणकरणे प्रथमं स्थापनाचार्यस्य पश्चाद् वृद्धानुक्रमेण यतिद्वयस्य चतुष्कस्य पट्कस्य च क्षामणक क्रियते, यतिं विना स्थापनाया एवेति ॥ १५ ॥

तथा—युगलिकक्षेत्रतिर्यङ्घ्रः कल्पवृक्षाहार कुर्वन्त्यन्यद्वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—गोप्रभृतयः कल्पवृक्षाहारं कुर्वन्ति, तथाऽन्यद्वान्यतृणादिकमपि कुर्वन्तीति सम्भान्यत इति ॥ १६ ॥

### अथ मुलतानसङ्घकृतानुयोजनानि तत्प्रतिवचांसि च ।

यथा—तथा सर्वैः पाक्षिकप्रतिक्रमणे परम्परया शान्तिरवश्यं कथ्यते, कैश्चित्पुनरन्यस्मिन् दिनेऽपि कथ्यते तत्किमस्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—पाक्षिकप्रतिक्रमणे परम्परया शान्तिरवश्यं कथ्यते, अन्यस्मिन् दिने तु कथनमाश्रित्य नियमो ज्ञातो नास्तीति ॥ १७ ॥

तथा—कश्चित्पारणकोत्तरपारणकयोश्चैकाशनकं विना 'सूरे उगए अभत्तदं प्रत्याख्याति' यदा पारणकोत्तरपारणकयोश्चैकाशनं करोति तदा चउत्थभत्तं प्रत्याख्यातीति रीतिर्दृश्यते, तथा छट्टभत्त इत्यादिकस्याने तु नास्ति, तत्र पारणकोत्तरपारणकयोश्चैकाशनं विनापि छट्टभत्तं इत्यादि प्रत्याख्याति, तत्र को हेतुरिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यदा एकाशनकसहितोपवस्त्रं करोति तदा 'सूरे उगए चउत्थभत्तं अभत्तदं' प्रत्या-

ख्याति पुनरेकाशनकरहितं करोति तदा सूर उगए अभत्तदं प्रत्याख्यातीहगविच्छिन्नपरम्परा दृश्यते, षष्ठप्रमुखप्रत्याख्याने तु पारणके उत्तर-  
 पारणके चैकाशनं करोत्यथवा न करोति तथापि 'सूरे उगए छट्ठभत्तं अट्ठभत्तं' इति प्रत्याख्यातीयमप्यविच्छिन्नपरम्परा दृश्यते । तथा—पारणके  
 उत्तरपारणके चैकाशनकं विनापि चउत्थभत्तं छट्ठभत्तं अट्ठभत्तं इति कथ्यते, तदसराणि तु श्रीकल्पसूत्रसामाचारीमध्ये सन्तीति बोध्यम् ॥ ५८ ॥

तथा—खरतराः प्रश्नयन्ति—यद्भवन्त आच्छादितस्थापनाग्रे क्रियां कुर्वन्ति तत्कथं शुद्धयतीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—जपमालिकाप्रमुखेत्वर-  
 स्थापना भवति तत्र दृष्टी रक्षिता विलोम्यते, तस्मात्तदनाच्छादनं युक्तिमत्, असप्रमुखयावत्कथिकस्थापनाग्रे तु दृष्टिरक्षणनियमो ज्ञातो नास्ति,  
 तस्मादाच्छादिताग्रेऽपि क्रिया शुद्धयतीति ॥ ५९ ॥

## अथ देवगिरिसङ्घकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च ।

यथा—ये श्राद्धा दैवसिकपौषधं गृहीत्वा पश्चात्सन्ध्यायां भाववृद्धौ यदा रात्रिपौषधं गृह्णन्ति तदा पौषधसामायिककरणान्तरं 'सज्झाय  
 करं बहुवेल करस्युं उपधि पडिलेहुं' इत्यादेशान् मार्गयन्ति किंवा सज्झाय करं इत्यनेन सरतीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सज्झाय करं इत्यादेश-  
 मार्गणेन सरति, बहुवेलादेशमार्गणनियमस्तु ज्ञातो नास्ति, यतः स प्रातर्मार्गितोऽस्तीति बोध्यम् ॥ ६० ॥

तथा—शेषकाले साधवः श्राद्धश्राद्धीजनेषु शृण्वत्सु श्रीकल्पसूत्रं पठन्ति पाठयन्ति किं वा एकान्ते एवेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—साधवः स्वेच्छया  
 कल्पसूत्रं पठन्तः पाठयन्तश्च सन्ति, अत्रान्तरे कश्चित् श्राद्धादिर्वन्दनार्थं समागतस्तत्र शनैः पठनपाठनाक्षराणि न ज्ञातानि सन्ति, परं श्राद्धादि-  
 मुद्दिश्य पठनं पाठनं च पर्युषणापर्वं विना न शुद्धयतीति ॥ ६१ ॥

तथा—केचन वदन्ति—श्रीमहावीरशिष्यश्रीसुधर्मस्वामिन आरभ्य परम्परया कलिकालयुगप्रधानसमानश्रीहीरविजयसूरयः त्रिपष्टितमपष्टे, केचन वदन्ति एकपष्टितमपष्टे, उ० श्रीधर्मसागरगणिकृतपट्टावल्या त्वष्टपञ्चाशत्तमपष्टे सन्तीति त्रयाणां मध्ये किं प्रमाणमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—श्रीमहावीरशिष्यसुधर्मस्वामिन आरभ्य परम्परया श्रीहीरविजयसूरयोऽष्टपञ्चाशत्तमपष्टे सन्तीति ज्ञेयम् ॥ ६२ ॥

तथा—द्वाविंशतितीर्थकरवारके ' कारणजाए पडिक्कमणं ' इत्युक्तमस्ति, तत्पञ्चाना प्रतिक्रमणानां मध्ये किनामकमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—' कारणजाए पडिक्कमणं ' एतत् पाक्षिकाद्याश्रित्य ग्राह्यं, उभयकालप्रतिक्रमण तु सर्वेषा भवतीति बोध्यम् ॥ ६३ ॥

तथा—उपधानपौषधैकाशनकमध्येऽन्यपौषधैकाशनकमध्ये वाऽऽर्द्रशाकभक्षणं शुद्ध्यति न वा इति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—उभयपौषधैकाशनके

आर्द्रशाकभक्षणप्रवृत्तिरधुना नास्तीति ॥ ६४ ॥

तथा—श्राद्धैः पौषधपारणे सामायिकपारणे च काः कियन्त्यथ गथाः कथ्यन्ते इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—पौषधपारणे ' सागरचंदो कामो० १ ' धन्वा सलहणिजा० २ ' एते द्वे गाथे वक्तव्ये सामायिकपारणे तु ' सामाहवयजुत्तो० १ छउमरथो मूढमणो० २ सामाहअपोसहसंठिअस्स० ३ ' एतास्तिहो गाथा वक्तव्या इति शास्त्रे सामायिकपारणाधिकारे कथितमस्ति, परमधुना ' सामाहवयजुत्तो० १ सामाहअम्भि लं कए० २ ' एते द्वे गाथे पठन्तो दृश्यन्ते इति ॥ ६५ ॥

तथा—दानशीलतपभावनामध्ये द्वादशव्रतानि समायान्ति न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सर्वव्रतानि प्राणातिपातरक्षणार्थं सन्ति, प्राणातिपातं विरमणव्रतं तु अभयदानरूपं, ततो द्वादश व्रतानि दानधर्मे समायान्ति, तथा सर्वव्रतानि प्रत्याख्यानरूपाणि, प्रत्याख्यानं तु तपोरूपं, ततस्तपोमध्येऽपि समायान्ति, प्रथमव्रतं दाने चतुर्थव्रतं शीले एवं द्वादशव्रतानि दानादिवचतुषप्रकारकधर्ममध्येऽन्तर्भवन्तीति ॥ ६६ ॥

१ चित्त्यभिद द्वयोरपि कारणे एव विधेयत्वात् ।

तथा—जीवेनादिकालभव लभ्यं देयं च भवति, तदनर्पणे छुद्यते न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—एकान्तो नास्ति, यदि तपःस्वाध्यायादिना कर्म निर्जिरयति तदा तदनर्पणे छुद्यते, कर्मनिर्जिरणमन्तरा तदनर्पणे छुद्यते इति ॥ ६७ ॥

तथा—चक्रवर्त्ती कियत्कालेन मोक्षं यातीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—जघन्यतस्तद्भवे उत्कृष्टतस्तु काश्चित्किञ्चिदूर्ध्वपुद्गलपरावर्त्तान्तिरेणापि मोक्षं यातीति ॥ ६८ ॥

तथा—मेथी आचाम्लमध्ये कल्पते न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—निषेधो न ज्ञायते, यतो मेथी द्विदलमस्ति, द्विदलं तु कल्पते इति ॥ ६९ ॥

तथा—वार्षिकतपः कियता कालेन पूर्णं भवतीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—एतदालोचनातपः अशीत्यधिकशतोपवस्त्रप्रमाणमेकवर्षे पूर्णं भवति, तत्तप उपवासाचामल्लैकाशनकरीत्या कियते, परमेकान्तरोपवासा न कर्त्तव्या; पुनस्तियेर्वृद्धिर्होनिर्भवति तदौपवस्त्रमेकाशनकं वा कर्त्तव्यं, परमाचामल्लं नायाति, ततः पूर्वदिने उपवस्त्रमेव समायाति, तथा विंशत्यधिकशताचामल्लानि तेषां पट्युपवासानि भवन्तीत्यनया रीत्या अशीत्यधिकशतोपवस्त्रैर्वार्षिकं तपः पूर्णं भवति, एकाशनकानि त्वधिकान्यतो द्व्यचशनकान्यपि करोति तथापि तपः पूर्णं भवतीति ॥ ७० ॥

तथा—श्राद्धः प्रतिमां वहन् यात्राद्यर्थं यानपात्रेण याति न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—प्रतिमायां यात्राद्यर्थं वाहनमारुह्य न यात्यश्वादिंकारुह्य तु यातीति ॥ ७१ ॥

तथा—अष्टमप्रतिमादिषु आरम्भः क्रियते न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अष्टमप्रतिमायामष्ट मासान् यावदारम्भः कायेन न क्रियते, एवं नवम्यामपि नव मासान् यावद्दशम्यां दश मासान् यावत्त्रार्थमन्नपानीयादि वस्तु निष्पन्नं न कल्पते, परार्थं निष्पन्नं तु कल्पत इति ॥ ७२ ॥

## अथ वर्षासङ्कृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च ।

यथा—श्राद्धाः पाक्षिकदिनेऽतीचारान् कथयन्ति, तत्र षष्ठं दिग्ब्रत दशमं च देशावकाशिकं कथितं, तदन्ये नाङ्गीकुर्वन्ति, यद् ब्रतद्वयं कथितमस्ति तदात्मश्राद्धैः कथितं, यत्षष्ठ्यत्रं यावज्जीवप्रत्ययिकं दशमं तु दिनप्रत्ययिकमित्यपि नाङ्गीकुर्वन्ति, तत्र कां युक्तिरिति प्रश्नोऽत्रो-  
त्तर—श्रीआवर्यके श्रावकव्रताधिकारे देशावकाशिकव्रतालापः कथितोऽस्ति स लिख्यते यथा—‘द्विसिख्यगहिअस्स—दिसापरिमाणस्स पइदिण परिमाणकरणं देसावगासिअस्स समणोवासएणं इमे पंच अइआरा जाणियब्बा न समायरिअब्बा तंजहा-आणवणप्पओगे १ पेस-  
वणप्पओगे २ सद्वाणवाए ३ रुवाणवाए ४ बहिआ पुगलक्खेवे ५’ एतदालापकानुसारेण षष्ठदिग्ब्रतस्य संक्षेपरूपदेशावकाशिकं स्पष्टतया ज्ञायते ।  
तथा—योगशास्त्राद्यनेकग्रन्थेषु षष्ठदिग्ब्रतसंक्षेपरूपदेशावकाशिकं कथितमस्ति, तथा—श्रीउपासकदशाङ्गे आनन्दव्रतोच्चारार्थिकारे सामायिकादि-  
चतुष्कव्रतालापकविस्तारो न कथितः, तस्मात्केचन नाङ्गीकुर्वन्ति तत्तु तदज्ञानमेव, यतो ब्रतोच्चारार्थौ एवं पाठोऽस्ति ‘अहण्णं भंते । देवाणुप्पि-  
आणं अंतिए पंचाणुव्वइअं सत्तसिक्खावइअं दुवालसविहं सावयधम्मं पडिवज्जिस्सामि, अहामुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिवंघ् करेहि’ तथा-  
ब्रतोच्चारानन्तरमेवं पाठोऽस्ति, ‘तएणं आणदे गाहावई समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए पंचाणुव्वइअं सत्तसिक्खावइअं दुवालसविहं सावय-  
धम्मं पडिवज्जइ, पडिवज्जित्ता समणं भगवं महावीर वंदइ नमंसइ’ एतदालापकद्वये द्वादशव्रतोच्चारार्थीकारः कथं घटते ? यदि देशावकाशिक-  
व्रतं न भवति तर्हि पञ्चातीचाराः कथं कथिताः, तस्मादानन्देन चत्वारि व्रतानि सविस्तराणि नोच्चारितानि यत्प्रतिदिनं, वारंवारमुच्चार्यन्ते, पुनः  
संक्षेपतस्तदुच्चारितान्येवेति ज्ञेयम् ॥ ७३ ॥

तथा—“जइ मे हुज्ज पमाओ, इमस्स देहस्स इमाइ रयणीए । आहारमुवहि रेहं, सन्व तिविहेण वोसिरिअ” ॥ १ ॥ एतद्वाथानुसारेण श्राद्धेन

रात्रौ निद्रापगमे सांसारिककार्यं कृत्वा सुष्यते तदा पुनर्गोचरो विधीयते किंवा प्राक्कृतोच्चार एव प्रमाणमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—शब्दः शयन-  
वेलायामेवं प्रत्याख्यानं कृत्वा भवति यद्वात्रौ प्रमादो भवति तदाहारप्रमुखं व्युत्सृजामि, तस्मान्निद्रापगमेऽपि काश्चित्कदाचित्संसारकार्यं करोति  
तदा प्रत्याख्यानमङ्गो न भवति इति ॥ ७४ ॥

तथा—आर्द्रफलकूर्कटिकाज्जादीनि निर्बीजीकृतानि घटिकाद्वयानन्तरं प्रासुकानि भवन्ति, तथा त्रिविधाहारद्विविधाहारप्रत्याख्यानिना-  
मेकाशनकमध्ये तानि कल्पन्ते न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—आमर्द्रफलानि निर्बीजीकृतान्यपि घटिकाद्वयादनु प्रासुकानि न भवन्ति, यतः कटाहजीव-  
स्तैव तिष्ठति । तथा त्रिविधाहारैकाशनके न कल्पन्ते, द्विविधाहारैकाशनकेऽपि सवित्तप्रत्याख्यानिना न कल्पन्ते, पक्कफलानि निर्बीजीकृतानि  
तु घटिकाद्वयानन्तरं त्रिविधाहारप्रत्याख्यानिनां कल्पन्ते इति ॥ ७५ ॥

तथा—त्रिकालवेलाया पूजा क्रियते सा त्रिकालपूजा कथ्यते किंवा न्यूनधिककालेऽपि कृता त्रिकालपूजा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—त्रिकालवेलायां  
पूजा क्रियते सा त्रिकालपूजा कथ्यते, कारणविशेषे तु न्यूनधिककालेऽपि कृता सैव कथ्यते इति ॥ ७६ ॥

तथा—जिनालये रात्रौ गीतगानादि क्रियते तत्करणे देवद्रव्यमुत्पद्यते नान्यथा तदा तत्कर्तव्यं न वा इति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—शास्त्रानुसारेण  
मूलविधिना गीतगानादि न शुद्ध्यति, परं देवद्रव्योत्पत्तिकारणेन रात्रावपि गीतगानादिभावनाकरणे लाभो ज्ञायते इति ॥ ७७ ॥

अथ फतेपुरसङ्कृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च ।

यथा—जन्मसूते मरणसूते च प्रतिमा पूज्यते न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—उभयत्रापि स्नानकरणानन्तरं प्रतिमापूजननिषेधो ज्ञातो  
नास्तीति ॥ ७८ ॥

१ पाठोच्चारस्तु रात्र्यवधिकत्वान्न पुनः करणीयतया प्रतिभासते, विवक्षा चेत्तथा कुर्वुरपि ।



तथा—देवपूजनावसरे तिलकं क्रियते न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—देवपूजवेलायां तिलककरणनिषेधो ज्ञातो नास्त्यात्मीयगच्छे इति ॥ ७९ ॥  
 तथा—श्राद्धकृतस्तुतिस्तोत्राणि मण्डल्यां कथयितुं शुद्धयन्ति न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—शुद्धयन्तीति ॥ ८० ॥  
 तथा—द्विविधाहारमध्ये निम्बुकण्डं विना क्षाराजमकः मधुराजमकश्च ग्रहीतुं कल्पते न वा प्रश्नोऽत्रोत्तरं—द्विविधाहारप्रत्याख्याने-  
 निम्बुकण्डरहितः क्षारको मधुरो वाऽजमको ग्रहीतुं कल्पते इति ॥ ८१ ॥

### अथ राजापुरसङ्घकृतप्रश्नस्तदुत्तरं च ।

यथा—चैत्राद्यष्टादशदिक्क दशसु क्षेत्रेषु शाश्वतं भवति न वा, तत्र देवा महोत्सवं कुर्वन्ति न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—चैत्राद्यष्टा-  
 द्दिकाषट्कं श्राद्धविधिप्रमुखग्रन्थानुसारेण तथा अन्यग्रन्थानुसारेण च दशसु क्षेत्रेषु शाश्वतं ज्ञायते, तत्र नन्दीश्वरादिषु वैमानिकप्रमुखदेवाः  
 तीर्थयात्रादिमहोत्सव कुर्वन्तः सम्भाव्यन्ते ॥ ८२ ॥

### अथाऽऽगारासङ्घकृतप्रश्नौ तदुत्तरे च ।

यथा—खसखसडोडकमध्ये ये कणास्ते बहुजीजा अन्यया वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—खसखसडोडको बहुजीजः कथ्यते, यत एकडोडक-  
 मध्ये बहवः कणास्सन्तीति ॥ ८३ ॥

तथा—नमस्कारसहितप्रत्याख्यानं कृतं भवति, कार्यविशेषाच्च न पारितं, पश्चात्सन्ध्याया पारितं, परमेतावत्कालमुपयोगवान् स्थितस्तस्य  
 नमस्कारसहितफलमधिकं भवति न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—नमस्कारसहितप्रत्याख्यानस्य जघन्यकालमानं घटिकाद्वयं कथितमस्ति, तथा—  
 नमस्कारं गणयति तदा प्रत्याख्यानं पूर्णं भवतीत्यपि कथितमस्ति, तस्माद् घटिकाद्वयस्योपरि यावत्कालमुपयोगवान् तिष्ठति, नमस्कारं च

न कथयति तावत्कालं या वेला याति सा प्रत्याख्यानमध्ये गण्यते, जघन्यघटिकाद्वयनमस्कारसहितप्रत्याख्यानाच्चाधिकपुण्यं लगतीति शास्त्रानुसारेण ज्ञायत इति ॥ ८४ ॥

### अथोजयिनीसंघकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च ।

यथा—कश्चित्पौषधिकश्रावको गुरोरेऽर्थपौषैरुषैचैत्यवन्दनवेलायामुपसर्गहरस्तोत्रं कथयति न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—पौषधिकश्राद्धो गुर्वेऽर्थपौषैरुषैचैत्यवन्दने उपसर्गहरस्तोत्रं कथयति, निषेधो ज्ञातो नास्ति, वृद्धपरम्परया प्रवृत्तिरपि दृश्यते इति ॥ ८५ ॥

तथा—शुद्धकालवेलायां नमस्कारसहितप्रत्याख्यानं कृतं भवति ततो घटिकाद्वयं गृह्यते किं वा सूर्योदयाद् घटिकाद्वयं गृह्यते ? तद्वचन्या प्रसाद्यमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—शुद्धकालवेलायां नमस्कारसहितप्रत्याख्यानं कृतं भवति तत आरभ्य घटिकाद्वयं गृह्यते इति ॥ ८६ ॥

तथा—वैताल्यसमीपे द्विसप्ततिबिलानि क्व सन्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—वैताल्यनिश्रया गङ्गासिन्धोर्द्विसप्ततिबिलानि, तत्र दक्षिणभरताद्धं उत्तरभरताद्धं च तत्तद्वये नव नव विलसद्भावादिति ॥ ८७ ॥

### अथ काकनगरसङ्घकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च ।

यथा—सैन्धवहरीतकीद्राक्षापिप्पल्यादीनि लाभपुरादगतानि सचित्तान्यचित्तानि वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—योजनशतादुपर्यगतं सैन्धवादि प्रासुकं भवति नेतरदिति ॥ ८८ ॥

१ दशसु प्रतिलेखनासु यथा सूर्योद्गमो भवतीत्येवं प्रतिक्रमणारम्भ शास्त्रीय, पष्ठं चावश्यकं प्रत्याख्यानं, ततः तत्स्थानीया वेला शुद्धकालवेलेति ज्ञायते ।

तथा—पारणके उत्तरपारणके चैकाशनकं विधाय षष्ठं करोति तस्य चतुर्थद्वयं प्राप्नोति न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—चतुर्थद्वयं न प्राप्नोति इति ॥ ८९ ॥

तथा—अष्टमप्रतिमावाही अन्यस्य परिवेषयति न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अष्टमप्रतिमावाही यथा षट्कायविराधना न भवति तथा परिवेषयति तदा निषेधो ज्ञातो नास्तीति ॥ ९० ॥

### अथ वटपल्लीयसङ्घुतप्रश्नास्तदुत्तराणि च ।

यथा—शतदोक्कडकपुष्पाणि मालिकपार्श्वे गृहीत्वा जिनप्रतिमायाश्चटप्यते, मालिकस्य तद्द्रव्यस्थाने धान्यवद्धादिकं समर्प्यते, तदप्ये च दोक्कडकदशकमुद्धरति, तद्द्रव्यं देवसरकं मालिकसम्बन्धि वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—शतदोक्कडकपुष्पाणि गृहीत्वा धान्यादि समर्प्यते, तदप्ये च कडकोशेरकेण यदुद्धरति तद्द्रव्यं भवति, न तु मालिकस्य, यतो लोके शतदोक्कडकपुष्पचटपनयशोवादो जायते तस्मान्मनूनां चटपने दोषो लगति, तदुद्धरितं द्रव्यं देवद्रव्यमप्ये प्रक्षिप्यते तदा दोषो न लगतीति ॥ ९१ ॥

तथा—पूर्वनिष्पन्न जिनगृह कदाचित्किञ्चित्पतितं तावन्मात्रं द्रव्यलिङ्गिद्रव्येण कृतं तत्रस्थप्रतिमा वन्द्यते न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—तत्रस्थजिनप्रतिमा वन्द्यत इति ज्ञायते ॥ ९२ ॥

तथा—नीलवणिप्रत्याख्यानिना तद्दिननिषण्णं कइरीपाकप्रमुखं कल्पते न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—परम्परया तत्कल्पनप्रवृत्तिर्दृश्यते इति ॥ ९३ ॥

तथा—अद्यदिनदुग्धं तन्नेण मेलितं कस्यां विष्कृतौ समयातीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अद्यदिनमेलितं दुग्धं दधिविष्कृतौ समयातीति ॥ ९४ ॥

## अथ पत्तनसङ्कृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च ।

यथा—चक्रवर्त्तिना नवनिधानानि तत्पृष्ठगानि किं वा भूमिकाया उपरि चलन्ति मध्ये वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—जम्बूद्वीपप्रज्ञासि-  
सूत्रावश्यकचूर्ण्यादिषु ‘नवमहानिहिओ चत्तारि सेणाओ न पविसंति’ इत्येवंविधाक्षराणि सन्ति, एतदनुसारेण नव निधानानि भूमिकाया  
उपरि चलन्ति, प्रवचनसारोद्धारवृत्त्याद्यनुसारेण तु चक्रवर्त्तिना सह भूमिमध्ये तन्नगरे व्रजन्तीति मतद्वयमस्ति, तत्त्वं तु केवलिनो विदन्तीति ॥ ९५ ॥

तथा—चक्रवर्त्तिनः स्कन्धावारो द्वादशयोजनान्युत्तरति, चक्रवर्त्ती तु प्रत्येकं योजनमेकं चलति, ततो द्वादशयोजनप्रान्ते य उत्तरति स  
योजनमेकं चलति तदा द्वादशयोजनमध्ये कियन्ति दिनानि भान्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—जम्बूद्वीपप्रज्ञासौ योजनयोजनान्तरेण विश्रामेण चक्रवर्त्ती  
चलति, तथा चक्रवर्त्तिसैन्यं द्वादशयोजनान्युत्तरतीत्यनेकग्रन्थे कथितमस्ति, तस्मात्पूर्वापरविचारणया यद्योजनान्तरं कथितमस्ति तत्सैन्याग्रभांगापेक्षया  
सम्भाव्यते, तथा चक्री सैन्यस्यादौ मध्येऽन्ते चोत्तरतीत्यक्षराणि व्यक्तानि शास्त्रे न दृष्टानि, आधुनिकठङ्कुरास्तु विचाले उत्तरन्तो दृश्यन्ते,  
ततस्तत्काले यथोचितं भविष्यति तथोत्तरिष्यन्ति, ( यथोचितमुत्तरन्तोऽभविष्यन् ) तथापि चक्रवर्त्तिनां दिव्यानुभावेन सैन्यग्रान्तोत्तीर्णस्तिऽपि शीघ्रं  
मुखेन मार्गमतिक्रमिष्यन्तीत्यत्र न काप्याशङ्का, यतो दिव्यशक्तिरचिन्त्याऽस्तीति ॥ ९६ ॥

तथा—शरीरेद्वर्त्तनमले तथा स्नानपानीये तथा परिस्वेदणिङ्गीकृतवत्तादिषु च सम्मुखिष्ठमपञ्चेन्द्रिया उत्पद्यन्ते न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—  
प्रज्ञापनासूत्रमध्ये ‘स्वनेषु चैव असुइहणेषु वा संमुखिष्ठममणुस्सा संमुखंति’ इत्येतच्चतुर्दशालपकवृत्तिमध्येऽन्यानि यानि मनुष्यसंसर्गादिशु-  
निस्थानानि सन्ति तेषु सम्मुखिष्ठममणुष्या उत्पद्यमानाः कथितास्सन्ति, एतदनुसारेण भवच्छिखितस्थानेष्वपि उत्पद्यमानास्सम्भाव्यन्त इति ॥ ९७ ॥

## अथ अहम्भदावादसङ्कृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च ।

यथा—‘पणसय सत्तत्तीसा, चउत्तीससहस्स लक्खइगवीसा । पुक्खरदीवहुनरा, पुब्बेणऽव्वेण पिच्छंति ॥ ११ ॥’ एतस्या भावार्थः कथं

संच्छते, यतश्चक्षुरिन्द्रियस्येयान् विषयो नास्तीति प्रश्नोऽत्रोचरं—साधिकलक्षयोजनानि यावच्चक्षुषो विषयः प्रकाश्यवस्त्वाश्रित्यैव प्रकाशकवस्तुनि पुनरपि त्रोटपि विषयः सम्भवतीति व्यक्तं प्रज्ञापनाद्युत्पादौ, ततो नात्र किञ्चिदनुपपन्नम् ॥ ९८ ॥

तथा—प्रथमदिवसोपवासं चतुर्विधाहारं कृत्वा द्वितीयदिने त्रिविधाहारोपवासं करोतीत्येवं कृतः पष्ठो वीरपष्ठमध्ये आयाति न वा इति प्रश्नोऽत्रोचरं—द्वाभ्यामुपवासभ्या पृथक् कृताभ्या निष्पन्नः पष्ठो वीरपष्ठमध्ये नायाति, यत एकोनत्रिंशदधिकद्विंशतपष्ठाः तपउच्चरणवैलयां सम्मन्ना उचार्यन्ते, आलोचनामध्ये स पष्ठ आयातीति ॥ ९९ ॥

तथा—भगवतीसूत्रस्यैकादशोद्देशो कमलविचारोऽस्ति, तत्र प्रतिसमयमेकैकजीवो निस्सरति तदाऽनन्तः कालो लगति ते उत्पलजीवा अन्ये वोत्पलनिश्रया स्थिता निस्सरन्तीति प्रश्नोऽत्रोचरं—‘उगममाणो अणतओ भणिओ’ इति वचनात्ते उत्पलजीवाः सम्भाव्यन्त इति ॥ १०० ॥

तथा—पौषधमध्ये सामाधिकमध्ये चर्वालपकहुण्डिका वाच्यते न वा इति प्रश्नोऽत्रोचरं—सा मनसि वाच्यते, न तु बाह्वरेण, सिद्धान्ता-  
लापकगर्हिमतत्वादिति ॥ १०१ ॥

तथा—योगोद्धहन विना साधुः सिद्धान्तं पठति श्राद्धश्चोपधानवहनं विना नमस्कार गणयति सोऽनन्तसंसारी कथ्यते नवा इति प्रश्नो-  
ऽत्रोचरं—अश्रद्धया योगोपधानवहनं विना साधुश्राद्धादीना सिद्धान्तनमस्कारादिगणनेऽनन्तसंसारिता कथ्यत इति ॥ १०२ ॥

### अथ स्तम्भतीर्थसङ्घकृतप्रश्नास्तदुराणि च ।

यथा—श्रीह्रीरविजयसूरीश्वरप्रसादीकृतद्वादशानरूपमध्येऽनुमोदनाजल्योऽस्ति, तत्र ‘दानरुचिपणुं स्वभाविं विनीतपणुं अल्पकथार्हपणुं परोपकारीपणुं भव्यपणुं’ इत्यादिका ये ये मार्गानुसारिसाधारणगुणा मिथ्यात्विसम्बन्धिनस्तथा परपक्षिसम्बन्धिनश्चानुमोदनार्हा लिखितास्सन्ति,

तदाश्रित्य केचन नवीनां विपरीतार्थं कुर्वन्तः श्रूयन्ते, तद्यथा—येषामसद्ग्रहो नास्ति तेषामेवैते गुणा अनुमोदनयोग्याः, परं यस्य कस्यापि जहस्पत्या-  
सद्ग्रहो भवति तस्यैते गुणा नानुमोदनार्हा इत्येतदश्रित्य सम्यग्निर्णयः प्रसाद्य इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—असद्ग्रहमन्तरेणान्येषां ये मार्गानुसारि-  
साधारणगुणस्तेऽनुमोदनार्हा नाऽन्ये इति वदन्ति तदसत्यमेव, यतो येषां मिथ्यात्वं भवति तेषां कश्चिदसद्ग्रहोऽवश्यं भवत्येवान्यथा सम्यक्त्वमेव  
प्रतिपाद्यते, शास्त्रमध्ये तु मिथ्यात्वरूपासद्ग्रहे सत्यप्येते मार्गानुसारिगुणा अनुमोदनार्हाः कथितास्सन्ति, यदुक्तमाराधनापताकायां “ जिणजम्मा-  
इउसवकरणं तह महरिसीण पारणए । जिणसासणंमि भत्ती पमुहं देवाण अनुमन्ने ॥ ३०८ ॥ तिरिआण देसविरइ, पज्जंताराहणं च अनुमोए ।  
सम्भइंसणलंभं, अणुमन्ने नारयाणंपि ॥ ३०९ ॥ सेसाणं जीवाणं, दाणरुहत्तं सहावविणियत्तं । तह पयणुकसायत्तं, परोवगारित्तंभवत्तं ॥ ३१० ॥  
दक्खिक्खदयालुत्तं, पिअभासित्ताइ विविहुगुणनिवहं । सिवमगकारणं जं, तं सव्वं अणुमयं मज्झ ॥ ३११ ॥ इअ परकयसुकयाणं, बहूणमणु-  
मोअणा कया एवं । अह नियसुचरियनियरं, सरोमि संवेगरं ॥ ३१२ ॥ इति ‘अहवा सर्वत्रिअ वीअरायवयणाणुसारि जं सुकडं । कालत्तएवि  
तिविहं, अणुमोएमो तयं सव्वं ॥ १ ॥ ” इति चतुस्सरणेऽपि, अथ च मिथ्यात्विनां परपक्षिणां च दयामुखः कश्चिदपि गुणो नानुमोदनीय इति  
ये वदन्ति तेषां समा मतिः कथं कथ्यत इति ॥ १०३ ॥

तथा—श्रीहीरविजयसूरीश्वरप्रसादितद्वादशजल्पपट्टकमध्ये अवन्दनीयचैत्यत्रयं विनाऽन्येषां चैत्यानि वन्दनपूजनयोग्यानि कथितानि सन्ति,  
केचन तन्निषेधं ब्रुवन्तः श्रूयन्ते, तत्कथमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—केवलश्राद्धप्रतिष्ठितचैत्य १ द्रव्यालिङ्गिद्रव्यनिष्पन्नचैत्य २ दिगम्बरचैत्यानि ३ विना  
सर्वेषां चैत्यानि वन्दनार्हाणि पूजार्हाणि च ज्ञेयानि, अथ च पूर्वोक्तानि निषिद्धान्यपि चैत्यानि साधुवासक्षेपेण वन्दनपूजनयोग्यानि भवन्ती-  
त्यन्यथा परपक्षिकृतग्रन्था अप्यमान्या भवेयुः, तथा भव्यपार्श्वस्थादिदीक्षिताः साधवः केवलिनश्चावन्दनीयाः स्युः, तथा चासमजस-

मापयेत, यतस्तत्कृतस्तोत्रादिग्रन्था आत्मीयपूर्वार्चनैर्जुह्वितास्तन्ति, पार्श्वस्यादिदक्षितसाधवश्च वन्दनीकतया शास्ते प्रोक्तास्सन्तीति स्वयमेव ध्येयमिति ॥ १०४ ॥

तथा—चरकपरित्राजकतामल्यादिमिथ्यादृष्टीनां तपश्चरणाद्यज्ञानकष्ट कुर्वतां सकामनिर्जरा भवत्यकामनिर्जरा वा इति, केचन वदन्ति तेपामकामनिर्जरेवेति साक्षरं प्रसाद्यामिति प्रश्नोऽनोचरं—ये चरकपरित्राजकादिमिथ्यादृष्टयोऽस्माकं कर्मक्षयो भवत्विति धिया तपश्चरणाद्यज्ञानकष्टं कुर्वन्ति तेना तत्त्वार्थभाष्यदृत्तिसमयसारसूत्रदृत्तियोगशास्त्रदृत्त्यादिग्रन्थानुसारेण सकामनिर्जरा भवतीति सम्भाव्यते, यतो योगशास्त्रचतुर्थ-प्रकाशवृत्तौ सकामनिर्जराया हेतुर्भाष्यान्वन्तरभेदेन द्विविधं तपः प्रोक्तं, तत्र पट्यकारं बाह्यं तपो, बाह्यत्वं च बाह्यद्वयपेक्षत्वात्परप्रत्यक्षत्वा-त्कुतीर्थैर्गृह्यैश्च कार्यत्वाच्चेति, तथा—लोकप्रतीतत्वात्कुतीर्थैश्च स्वाभिप्रायेणासेव्यत्वाद्बाह्यत्वामिति त्रिशत्तमोत्तराध्ययनचतुर्दशसहस्रीवृत्तौ एतदनुसारेण पद्धिबध्नाप्यतपसः कुतीर्थिकासेव्यत्वमुक्तं, परं सम्यग्दृष्टिसकामनिर्जरापेक्षया तेषां स्तोका भवति, यदुक्तं भगवत्यष्टमशतकदशमो-देशके ‘देसाराहण’ति नालतपस्वी स्तोकमंशं मोक्षमार्गस्याराधयतीत्यर्थः, सम्यग्नुनोधरहितत्वात्क्रियापरत्वाच्चेति, तथा च मोक्षप्राप्तिर्न भवति, स्तोकाकर्मभांशनिर्जरेणात्, भवत्यपि च भावविशेषाद्बल्लूकलचीर्यादिवद्, यदुक्तं “आसंबरो अ सेयंबरो अ तुद्धोय अहव अन्नो वा । समभावभावि-अप्पा, लहेइ मुक्कं न सदेहो” ॥ १ ॥ इति, यदि तेपामकामनिर्जरेवाद्भीक्यते तर्हि ‘जीवे णं भंते । असंजए अविरए अपडिहयपच्चक्खाय-पावकम्मे इतो जुए पेच्चा देवे सियाः’ गो० अत्येगतिए देवे सिया, अत्येगतिए नो देवे सिया, से केणहेण जाव इतो जुए पेच्चा अत्येगतिए देवे सिया अत्येगतिए नो देवे सिया ? गो० । ने इमे जीवा अकामतण्हाए अकामच्छुहाए अकामबंभवेरवासेणं अकामसीयायवदंसमसगअन्हाणग-सेयजल्लमलंपकपरिदाहेणं अप्पतरं वा भुज्जतरं वा कालं अप्पाणं परिकिल्लेस्संति, परिकिल्लेसिच्चा कालमासे कालं किच्चा अण्णयेरेसु वाणमंतरेसु

देवताए उववत्तारो भवन्ति, 'श्रीभगवतीसूत्रप्रथमशतकप्रथमोद्देशकौपपातिकसूत्रादौ  
 सङ्गच्छते, यतः—सङ्ग्रहण्यादौ 'चरगपरिव्वाय बंभलोगो जा' इति वचनात्पञ्चमदेवलोके तेषामुत्पादस्य भणितत्वादिति विरोधापत्तेः, हारि-  
 भद्रयामपि "अणुकंपऽकामनिज्जरबालतवे दाणविणयविठ्ठभगे । संभोगविप्पओगे वसणसवईडुसक्कारे ॥ १ ॥" इत्यत्राकामनिज्जराबालतपसो-  
 भेदद्वयभणनं व्यर्थमेव, एकेनाकामनिज्जराबालक्षणेन चरितार्थत्वात् । तथा 'चउहिं जीवा देवाउत्तए कम्मं पकरेंति, तंजहा-  
 'सरागसंजमेणं १ संजमासंजमेणं २ बालतवोकम्मणेणं ३ अकामनिज्जराए' ४ एतद्वृत्तिलेशः—सकपायसंयमेन—सकपायचरित्रेण  
 धीतरागसंयमिनामायुपो बन्धाभावात् १ संयमासंयमस्य द्विस्वभावत्वादिशसंयमः २, बाला—मिथ्याहशस्तेषां तपःकर्म—तपःक्रिया बालतपःकर्म  
 तेन ३, अकामेन—निज्जरां प्रत्यनभिलाषेण निज्जराऽकामनिज्जरणाहेतुर्बुद्ध्यादिसहनं यत्साऽकामनिज्जरा तथा इति स्थानाङ्गसूत्रचतुर्थस्थानके  
 तथा 'अकामनिज्जारारूपात्पुण्याज्जन्तोः प्रजायते । स्थावरत्वं त्रसत्वं वा, तिर्यक्त्वं वा कथंचन' ॥ १०८ ॥ इत्यत्र पुण्यादिति पुण्यं  
 न पुण्यप्रकृतिरूपं, किन्तु लाघवरूपं, तस्मात्स्थावरत्वादिकं प्राप्यते, तामलितापसादीनां तु शाल्लेखिन्द्रत्वादिप्राप्तिः कथिताऽस्ति, सा च  
 सकामनिज्जरया भवति, यदुक्तं तत्त्वार्थभाष्यनवमाध्ययनवृत्तौ अमरेषु तावदिन्द्रसामानिकादिस्थानानि प्राप्नोतीति । ननु ज्ञेया सकामा यमिना—  
 भित्यत्र यदि यमिना यतीनामेव सकामनिज्जरा प्रोच्यते श्रावकाणामविरतसम्यग्दृष्ट्यादीनां च का गतिरिति चेदुच्यते यमिनामिति सामान्यतयोक्तेः  
 श्रावकादीनामपि तारतम्येन द्वादशदेवलोकादिदायका सकामा भवतीति ज्ञायते, श्राद्धादीनामित्यत्रादिशब्दाद्बालतपास्विनामपि कथमिति चेत्, शृणु,  
 बालमसमर्थं सन्मार्गप्रदाने सकलकर्मक्षये वा, बालं च तत्तपश्च बालतपः, तच्चाग्निप्रवेशभृगुगिरिप्रपतनादि कायेकेशरूपं, कायेकेशश्च, कायकिलेसो  
 संलीणया ये, त्यागमवचनाद्बालतपः, तच्च सकामनिज्जराहेतुरिति ॥ १०९ ॥



तथा—सम्यग्दृशा मिथ्यात्वदृशां परपक्षिणां च तपागच्छाचार्यप्रभृतिभिः प्रत्याख्यानं कार्यते तन्मार्गानुसारि भवति न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—तत्सर्वमपि प्रत्याख्यानं मार्गानुसारीति ज्ञातमस्ति, पर प्रत्याख्यानकर्त्ता यदि प्रत्याख्यानविधिं न जानाति तदा तस्य तद्विधिं प्रज्ञाप्य कार्यते इति विशेषो ज्ञेयः ॥ १०६ ॥

### अथ सूरतिबन्धिरसङ्कृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च ।

तथा—चतुर्दशानियमसरणे सचित्तं विकृतिश्च द्रव्यसङ्ख्यायां गण्यते न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—चतुर्दशानियमसरणे यद्यपि शास्त्रानुसारेण सचित्तं विकृतिश्च द्रव्यमध्ये न गण्यत इति ज्ञायते तथाऽप्याधुनिकप्रवृत्त्या गण्यत इति दृश्यते, इत्थं करणे च विशेषतस्सर्वोऽपि भवतीति ॥ १०७ ॥  
तथा—गुरुणा मूलस्तूपं मान्यं तथैवान्यस्थाने भवति तदपि मान्यं न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यथा मौलं गुरुस्तूपं मान्यं तथैवान्यान्यस्थानस्थितमपि मान्यमेव, न काप्यत्राशङ्का कर्त्तव्येति ॥ १०८ ॥

तथा—देवगुरुधर्ममाननरूपसम्यक्त्वं व्यावहारिक नैश्चयिक वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—“जीवाइनवप्यत्ये, जो जाणइ तस्स होइ सम्मत्तं । भावेण सद्दहतो, अयाणमाणेऽवि सम्मत्त ॥ १ ॥” इति नवतत्त्वप्रकरणे, “शमसेवगीनिर्वेदाऽनुकम्पास्तिक्यलक्षणैः । लक्षणैः पञ्चाभिः सम्यक्, सम्यक्त्वमिदमुच्यते” ॥ १ ॥ इति योगशास्त्रद्वितीयप्रकाशे, दर्शनमोहनीयकर्मोपशमादिसमुत्थोऽहंभुक्तत्वश्रद्धानरूपः शुभ आत्मपरिणामः सम्यक्त्वमिति चन्दारुष्टौ चेत्यादिग्रन्थानुसारेण जीवादिनवपदार्थश्रद्धानोपशमादिमत्त्वं नैश्चयिकसम्यक्त्वं, ‘या देवे देवताबुद्धिगुरो च गुरुतामतिः । धर्मे च धर्मधीः शुद्धा, सम्यक्त्वमिदमुच्यते ॥ १ ॥ जिनो देवः कृपा धर्मो, गुरवो यत्र साधवः ।’ इत्याद्यनुसारेण तु देवादिमाननं व्यावहारिकसम्यक्त्वं । यदुक्तं—“निच्छयओ सम्मत्त, नाणाइमयं सुहं च परिणामं । इयरं पुण तुह समए, भणिअं सम्मत्तेहउत्ति” ॥ १ ॥ इति ॥ १०९ ॥

## अथ द्वीपबन्धिरसङ्घतश्रास्तदुत्तराणि च ।

यथा—गौतमपतद्ब्रह्मपति पतद्ब्रहे प्रथमं यन्त्राणकं मुच्यते तन्त्राणकं ज्ञानस्यार्थे समायात्यन्यथा वा ? तत्तपःकरणं कुत्र ग्रन्थमध्ये प्रोक्तमस्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—गौतमपतद्ब्रह्मतप आचारदिनकरग्रन्थे प्रोक्तमस्ति, परं तत्र नाणकमोचनमुक्तं नास्ति, यदि क्वापि प्रसिद्ध्या नाणकं मुच्यते तदा तद् ज्ञानद्रव्यं न भवति, तेन यथायोगं ज्ञानार्थं यतीनां वैद्याद्यर्थं वा व्यापारणीयमिति ॥ ११० ॥

तथा—कालिकस्मृतिभिः पाक्षिकदिने चतुर्मासकमानितं, तत्र प्रतिक्रमणानि न्यूनानि भवन्ति, तत्कथमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—प्रतिक्रमणानां न्यूनत्वेऽधिकत्वे वा न कोऽपि विशेषो, यतः पूर्वाचार्याणामाचरणैवात्र प्रमाणं, यथा कल्पसूत्रस्य श्रावणं श्राद्धानां पूर्वाचार्याऽऽचरणैव क्रियते इति ॥ १११ ॥

तथा—“जड़आ होही पुच्छा, जिणाण वक्कमि उत्तरं तइआ । इक्कस्म निगोअस्स अ, अणंतभागो अ सिद्धिगओ ” ॥ १ ॥ “उत्तम-नर पंबुत्तर, तायत्तीसा य पुव्वघर इंदा । केवल्लिगणहरदिविअ, सासणसुरदेवयाऽभव्वा ” ॥ २ ॥ इत्यनयोर्गोथयोः को ग्रन्थो मूलस्थानमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—एतद्वाथाद्वयं छुट्कपत्रस्यं दृश्यत इति ॥ ११२ ॥

तथा—पौषधे सामायिके च शतहस्ताद्वहिर्गमने ईर्यपिथिको प्रतिक्रम्य गमनाऽऽगमनलोचनं क्रियते नवा इति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—पौषधमध्ये शतहस्ताद्वहिर्गमनानन्तरमीर्यपिथिको प्रतिक्रम्य गमनाऽऽगमनलोचनविधिर्दृश्यते, सामाचार्यामपि कथितमस्ति, सामायिके तु शतहस्ताद्वहिर्गमनमेव नेक्तमिति ॥ ११३ ॥

तथा—“ जं जं चयइ सचित्तं, सम्मं भावेण सुद्धहिअणं । न हु तेसु तेसु जोणिं, पावइ दुक्खाइ तिव्खाइ ” ॥ १ ॥ इयं गाथा कुत्र ग्रन्थेऽस्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—इय गाथा छुटकपत्रस्या दृश्यत इति ॥ ११४ ॥

तथा—श्राद्धाना पौषधमध्ये त्रिकालदेववन्दनं कुत्र ग्रन्थेऽस्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—चैत्यवन्दन कश्चिद्भव्यो जिनानां त्रिकालं—त्रिसन्ध्यं करोतीति प्रवचनसारोद्धारसूत्रवृत्तौ तथा—‘ अजपभिई जावज्जीवं तिकालिअं अणुदिणं अणुत्तावलेग्गवित्तेणं चिइए वदेयव्वा ’ इत्यादिक्र- श्रीमहानिशीथतृतीयाध्ययनगतालापकमध्ये चैत्यवन्दनं त्रैकालिकं कर्तव्यमिति जघन्यतः श्राद्धानामाचारोऽभिहितः, तच्च “ नवकारेण अहन्ना, चिइवंदण मज्झ दंडथुइजुअला । पणदंडथुइचउक्कग, धयपणिहाणेहिं उक्कोसा ” ॥ १ ॥ इति भाष्यवचनात् व्यावर्णिणतस्वरूपमुत्कृष्टमेव ग्राह्यं, तस्यैव नियमत ईर्यापथिकीप्रतिक्रान्तिपूर्वकत्वेन विधीयमानत्वाच्चैतयोर्जघन्यमध्यमचैत्यवन्दनयोरिति । एवं च प्रतिदिवसं त्रैकालिकचैत्यवन्दनविधानं जघन्यतः श्राद्धाचारः, स च पौषधिकानामप्यवश्यंभावेन क्रियमाण एव विलिख्यते, अन्यथा श्राद्धानां पौषधकरणादिनोत्कृष्टाचाराराधनमेव कुतः सम्पद्यते, न ह्यविरोधिनं प्रतिदिनं विधित्सितं जघन्याचारं विमुच्योत्कृष्टाचारस्याराधनं जायमानं कापि दृष्टं श्रुतं वा, जघन्याऽऽचारस्याऽनाराधने उत्कृष्टाचाराराधनस्य दोर्लभ्याद्, अत एव अणुव्रतादिकं विशिष्टं श्राद्धाचारमारिगधियेषुर्जघन्यस्वरूपं भगवद्भिहिततत्त्वार्थश्रद्धानादिलक्षणं जघन्याचारमनुलङ्घयन्नेव श्रावकस्तदणुव्रताधाराधकः स्यान्नान्यथेति । तस्मात् प्रवचनसारोद्धारवृत्तिमहानिशीथाद्यनुसारेणाविच्छिन्नवृद्धपरम्परया च पौषधिकानामपि त्रैकालिकचैत्यवन्दनाकरणमुपपन्नमेव, अन्यथोत्कृष्टाचाराराधनस्यानुपपत्तेरिति ज्ञेयम् ॥ ११५ ॥

तथा—प्राग् योगोद्बहनं कृत्वा साधनो द्वादशाङ्गी पठेयुः किंवाऽन्यथा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—प्राग् योगमुद्वाह्य द्वादशाङ्गी पठेयुः, कदा-

चित्केनचिद् योगोद्धहनं विनापि द्वादशाङ्गी पठिता शाले दृश्यते तन्न चर्च्यम्, आगमव्यवहारिकृतत्वाद्, यत आगमव्यवहारी यथा लाभं जानाति तथा करोतीति ॥ ११६ ॥

तथा—गणिविज्ञापकीर्णके नव क्षेत्राणि कथितानि तत्कथमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सप्त क्षेत्राणि चैत्यादीनि प्रसिद्धानि, प्रतिष्ठातीर्थ-यात्रालक्षणक्षेत्रद्वयप्रक्षेपे नव क्षेत्राणि भवन्तीति ॥ ११७ ॥

तथा—व्यवहारराशिं प्राप्तो जीवः पुनः सूक्ष्मनिगोदमध्ये याति नवा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—स जीवः सूक्ष्मनिगोदे याति, परं व्यावहारिक एवेच्यत इति ॥ ११८ ॥

तथा—पौषधमध्ये श्राद्धः साधूनामशनादिकं ददाति नवा ? इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—गृहमनुष्यान् दृष्ट्वा ददातीत्यक्षराणि सन्तीति ॥ ११९ ॥

## अथ नवीननगरसङ्कृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च ।

तथा—यः सम्यक्त्वमन्तर्मुहूर्तं स्पृशति सोऽर्द्धपुद्गली कथ्यते, क्रियावादी चैकपुद्गली नियमात् शुक्लपक्षीति श्रूयते, तत्कथमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—क्रियावादी सम्यग्दृष्टिः तथा मिथ्यादृष्टिर्द्वौवपि भव्यौ शुक्लपाक्षिकौ च ज्ञेयौ, तौ नियमात् पुद्गलपरावर्तमध्ये सिद्ध्यतः, एवंविधाक्षराणि दशाश्रुतस्कन्धचूर्णिमध्ये सन्ति, परं सम्यग्दृष्टिमिथ्यादृष्ट्योरेकीभूतं सामान्यलक्षणं ज्ञेयम्, यतो मलधारीश्रीहेमचंद्रसूरिकृतपुष्पमालासूत्रवृत्ति-मध्ये “ अंतोमुहुत्तमित्तिपि, फासिअं हुज्ज जेहि सम्मत्तं । तेसि अबहुपुगलपरिअट्ठो चेव संसारो ” ॥ १ ॥ एतद्वाथान्याख्यानसारेण पुद्गलपरावर्त-

संसारो ज्ञायते, एतद्विशेषस्वेतद्ग्रन्थेभ्यो ज्ञेयः । तथा श्रावकप्रज्ञासिद्धत्वात्तिमध्ये ययोः सम्यग्दृष्टिमिथ्यादृष्टयोर्देशानर्द्धपुद्गलपरावर्त्तसंसारो भवति तौ शुक्लपाक्षिकौ कथ्येते, यस्य च ततोऽधिकसंसारो भवति स कृष्णपाक्षिकः कथ्यते इति कथितमस्ति, परं तन्मतान्तरं सम्भाव्यते ॥ १२० ॥

तथा—त्रिवष्टयधिकशतत्रयपात्रण्डिकाना मध्ये अशीत्यधिकशतं क्रियावादिनस्सन्ति ते सम्यग्दृष्टयो मिथ्यादृष्टयो वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—

अशीत्यधिकशतं क्रियावादिनो मिथ्यादृष्टयो ज्ञेया इति ॥ १२१ ॥

तथा—केवलदुग्धराद्धक्षैरेयी पर्युषिता साधूना ग्रहीतुं कल्पते न वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—केवलदुग्धराद्धक्षैरेयी अन्यापि क्षैरेयी पर्युषिता परम्प-

रया गृहीतुं न कल्पते, कारम्बकस्तु नवीनतक्रादिसंस्कारार्हत्वात्कल्पत इति ॥ १२२ ॥

अथ सीसांगसङ्घकृतप्रश्रस्तदुत्तरं च ।

तथा—लवण भक्ष्यमभक्ष्य वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—द्वाविंशत्यभक्ष्यनाममध्ये साक्षाल्लवणनाम न दृश्यते, तस्मात्सर्वथाऽभक्ष्यमेवं वक्तुं न शक्यते, परं ये विवेकिनस्ते भोजनावसरे प्रासुकं लवणं गृह्णन्ति, न तु साचित्तमित्यक्षराणि शास्त्रे सन्तीति ॥ १२३ ॥

अथ माहिम्मदावादसङ्घकृतप्रश्रास्तदुत्तराणि च ।

यथा—आम्रतक्रमधुरतक्रयोस्तयोष्णोदकशीतलोदकयोस्तथा भेषजलकृपजलयोरैकं द्रव्यं गण्यते पृथग् वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—आम्रतक्र-

मधुरतक्रप्रमुखाणा एकं द्रव्यं गण्यते इति ॥ १२४ ॥

तथा—प्रातरुपवसं कृत्वा सायं रात्रिपौषं करोति, तथात्राहं कृत्वाऽहोरात्रिकं करोति, स उपधानाऽऽलोचनामध्ये समेति किंवा न इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—उपवसं कृत्वा यः प्रातरहोरात्रिकपौषधः कृतो भवति स उपधानालोचनामध्ये समेति नान्य इति ॥ १२५ ॥

तथा—उपधानवानना प्रातर्ग्रहीतुं विस्मृता, सा सायं क्रियाकरणानन्तरं गृह्यतेऽथवा द्वितीयदिनेः, यदि द्वितीयदिने तदा स वासरः कस्या वाचनाया गण्यते इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—प्रातरुपधानवाचनां लभतुं विस्मृता सा सन्ध्यायां क्रियाकरणादवर्णं गृह्यते, तत्रापि यदि विस्मृता तदा द्वितीयेऽह्नि प्रवेदनादवर्णं गृह्यते, स वासरस्त्वग्रेतनवाचनानामभ्ये गण्यत इति ॥ १२६ ॥

तथा—सर्वाहतां मातरश्चतुर्दश स्वमान् श्रीकल्पसूत्रोक्तानुपूर्व्या पश्यन्त्युत्तानानुपूर्व्येति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—प्रायस्ताः श्रीकल्पसूत्रोक्तानुपूर्व्या पश्यन्ति, कियच्चित्तीर्भङ्गमातर एकस्मिन्मनानुपूर्व्यापि च, यथा ऋणभदेवमात्रा पूर्वं वृषभो दृष्टो वीरगात्रा सिंहश्चेति नोद्भ्यस ॥ १२७ ॥

## अथ साचोरसङ्घकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च ।

यथा—आलोचनास्वाध्याय इर्यापथिकाप्रतिक्रमणमन्तरा शुद्धयति नवा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—आलोचनास्वाध्याय इर्यापथिकाप्रतिक्रमणपूर्वकः शुद्धयतीत्यस्वराणि श्राव्ये सन्ति, कदाचित्तत्प्रतिक्रमणं विस्मरति तथापि विधिपूर्वकस्योद्यमः कर्तव्य इति ॥ १२८ ॥

तथा—द्वादशव्रतधारी चतुर्दश नियमान् प्रतिदिनं स्मरति सङ्क्षिपति च नवा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—द्वादशव्रतधारी चतुर्दश नियमान् प्रतिदिनं स्मरति सङ्क्षिपति च, नेत्र स्मरति तथापि तत्स्मरणोद्यमः कर्तव्य इति ॥ १२९ ॥

तथा—आचार्योपाध्यायप्रज्ञांशपादुका जिनगृहे गण्डितास्तन्ति, जिनप्रतिमापूजार्थमानीतश्रीखण्डकेसरपुष्पादिभ्यस्तासामर्चनं क्रियते नवा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—मुख्यवृत्त्योपाध्यायप्रज्ञांशपादुकाकरणविधिः परम्परया ज्ञातो नास्ति, स्वर्गप्राप्ताचार्यस्य पादुकाकरणविधिस्त्वस्ति, ततो जिनपूजार्थ-श्रीखण्डादिभिस्तत्पादुका न पूज्यते, देवद्रव्यत्वात् तथा श्रीखण्डादिकं साधारणं भवति, तेनापि प्रतिमा पूजयित्वा पादुका पूज्यते, परं पादुकामर्चयित्वा प्रतिमा नार्च्यते, देवाशातनाभयादिति ॥ १३० ॥

तथा—वस्तुपाल्लतेजपालौ प्राक् दशकौ श्रुतौ, जीर्णप्रबन्धानुसारेण पण्डितपद्मसागरगणिभिर्विशतिकावृत्तौ, तत्कथमिति : प्रश्नोऽत्रोत्तरं—तत्पितृआसराजेन सङ्घवीआभूषुत्रीविधवाकुमारदेवीनाम्या सार्द्धं तत्कुक्षिपुत्ररत्नोत्पत्तिरिति श्रीहेमप्रभसूरिवचसा ज्ञात्वा सम्बन्धः कृतः; पश्चात्पुत्रचतुष्टयं पुत्रीसप्तकं च जातमिति वस्तुपाल्लतेजपाल्लप्रबन्धे लिखितमस्ति, तथा परम्परयाऽपीत्यमेव कथ्यते । तथा पण्डितपद्मसागरगणिक्कथितप्रबन्धमध्योऽपि आसराजो विशतिकाप्राग्वाटः कथितो नास्ति, परं सामान्यतः प्राग्वाटः विशतिकाप्राग्वाटोऽभूत्तेन विशतिकाः प्राग्वाटः कथ्यते तदा युक्तमिति ॥ १३१ ॥

तथा—अष्टमप्रतिमानवमप्रतिमयोरारम्भवर्जनं दशमप्रतिमायां सावद्याहारवर्जनं च क्रियतेऽन्यथा वा इति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अष्टमप्रतिमायामारम्भोऽष्ट मासान् यावत्स्वकायेन त्यज्यते, नवम्यामप्यारम्भो नव मासान् यावत्परणे न कार्यते, दशम्यां च दश मासान् यावत्स्वार्थनिष्पन्नाहारपानीयादि वस्तु न गृह्णाति परार्थनिष्पन्नाहारादिकं तु गृह्णातीति ॥ १३२ ॥

तथा—प्रमत्तषष्ठगुणस्थानकवर्तिसाधूनां 'मज्ज विसयकसाये'ति गायोक्तपञ्चविधः प्रमादः कथं सम्भवतीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—प्रमत्तषष्ठगुण स्थानवर्तिसाधूनां 'मज्जं विसयकसाये'ति गायोक्तः पञ्चविधः प्रमादो मद्यस्य सदैवाभक्ष्यत्वेनाकरुष्यत्वाद् यथासम्भवं भवतीति ॥ १३३ ॥

तथा—‘भवंगुतदुवारे’ इत्यस्यार्थः प्रसाद्य इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अवबुधः अदुवारेति अप्रावृत्तद्वाराः—कपाटादिभिरस्थगितगृहद्वारा इत्यर्थः, सदर्शनलाभेन न कुतोऽपि पात्रण्डिकाद्विम्यति शोभनमार्गपरिग्रहेणोद्घाटशिरसास्तिष्ठन्तीति भाव इति वृद्धव्याख्या । अन्ये त्वाहुः—भिक्षुक-प्रवेशार्थमौदार्यादस्थगितगृहद्वारा इत्यर्थ इति श्रीभगवत्गीताद्वितीयशतकपञ्चमोद्देशकवृत्तौ उक्तमस्तीति ॥ १३४ ॥

तथा—कश्चित्परपक्षी प्रार्थनां करोति यदुपदेशमालागाभायां विलोकयन्तु, तदर्थमुपदेशमालागाथाविलोकने दूषणं लगति नवा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यदि स निष्कपटतया प्रार्थना करोति तदर्थमुपदेशमालागाथाविलोकने सर्वथा दूषणं ज्ञातं नास्ति इति ॥ १३५ ॥

तथा—परपक्षिणां प्रतिमास्थापनादिकं प्रतिष्ठाप्यार्प्यते नवा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यदि ततस्तद्वाशातना न भवति तदा तत्प्रतिष्ठाप्यार्पणे न काऽप्यावाधेति ॥ १३६ ॥

तथा—अनशनिश्राद्धस्य त्रिविधाहारप्रत्याख्यानं कारयित्वा रात्रावुष्णपानीयपानेनानशनस्य दूषणं लगति नवा इति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—तथा-कारणेनानशनस्य दूषणं न लगतीति ॥ १३७ ॥

## अथ भिन्नमालसङ्घट्टतप्रश्नास्तदुत्तराणि च

तथा—विकसितपुष्पतन्त्रालमध्ये जीवाः सङ्ख्याता असङ्ख्याता वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—केषुचित्पुष्पेषु सङ्ख्याताः केषुचिदसङ्ख्याताः केषुचिदनन्ताश्च प्रज्ञापनादिषु कथितास्सन्ति, जातिपुष्पमध्ये तु सङ्ख्याता एव कथितास्सन्तीति ॥ १३८ ॥

तथा—सामायिकादिषु उपवस्त्रमध्ये सन्ध्याप्रतिलेखनाया मुखवस्त्रिका प्रतिलिख्य प्रत्याख्यानं क्रियते, एकाशनादिप्रत्याख्याने च वन्दनकानि



दत्त्वा तत् क्रियते, तत्कथमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सामाचारीप्रभृतिग्रन्थेषु भोजनदिवसे वन्दनकानि दत्त्वा प्रत्याख्यान क्रियते इत्यक्षराणि सन्ति, उपवस्त्रदिवसे वन्दनकाधिकारो नास्ति, मुखवल्लिका तु प्रतिलिख्यते यतस्ता विना प्रत्याख्यानं न शुद्धयतीति सामाचार्यस्ति, तथोपधानमध्येऽपि तथैव प्रत्याख्यानं कार्यत इति ॥ १३९ ॥

तथा—देवान् वन्दित्वा भगवन्नित्यादि चत्वारि क्षमाश्रमणानि क्रियासम्बद्धान्यन्यथा वा १, तथा षड्विप्रभोः क्षमाश्रमणं पृथग् दातव्यं नवा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—भगवन्नित्यादि चत्वारि क्षमाश्रमणानि क्रियासम्बद्धानि सन्ति, तत्र सर्वेऽपि तीर्थकृतो वन्दिताः, अथ ये विशेषतो गुरुन् तथा षट्कप्रभुं वन्दन्ते तदौचित्यसत्यापनार्थमिति ॥ १४० ॥

तथा—प्रथमदिने चतुर्विधाहारोपवस्त्रं कृत्वा द्वितीयदिनोपवासमेकीकृत्य षष्ठाष्टमादिकं प्रत्याख्याति नवा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—प्रथमदिवसे एकोपवस्त्रं प्रत्याख्याति, द्वितीयदिवसे एकमेव प्रत्याख्याति, न तु षष्ठं, यदि द्वितीयदिने षष्ठादिकं तर्हि अग्रे तृतीयोपवासः कृतो युज्यते ईदृशी सामाचार्यस्तीति ॥ १४१ ॥

## अथ विभीतकसंघकृतप्रश्नौ तदुत्तरे च

यथा—केवली समुद्घातानन्तरं कियत्कालं ससारे तिष्ठतीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—केवलीसमुद्घातानन्तरमन्तमुहूर्तं ससारे तिष्ठति, पीठफलकादि च पश्चात्समर्प्य शैलेशीकरणं प्रतिपद्यते, एवविधाक्षराणि श्रीविशेषावग्रहके सन्ति । किञ्च-षाण्मासिकावस्थानं ससारे तत्रैव दूषितमस्ति, ततोऽन्त-मुहूर्त्तावशेषायुरेव समुद्घातं कर्तुं प्रवर्त्तते नान्य इति बोध्यम् ॥ १४२ ॥

तथा—भवनपतीनां भवनानि कुत्र सन्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—रत्नप्रभाया उपरि अधश्चैकं योजनसहस्रं मुक्त्वा विचाले सर्वत्र भवनानि सन्तीति ज्ञायते, यतोऽनुयोगद्वारसूत्रवृत्तिमध्ये भवनपतिभवनानि नरकवासकपार्श्वे कथितानीति बोध्यम् ॥ १४३ ॥

## अथ जालोरसंघट्टतप्रश्नास्तदुत्तराणि च

तथा—त्रिविधोपवासप्रत्याख्यानमन्यप्रत्याख्यानं च कया रीत्या पार्यते इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—उपवास कीधु त्रिविहार नमुक्कारसी पोरसी पुरिमड्ढादिक कीधु पाणहार पच्चक्खाण फासिउं १ पालिउं २ सोहिउं ३ तीरिउं ४ किट्ठिउं ५ आराहिउं ६ जं च नाराहिअं तस्स मिच्छामि दुक्कडं ' इत्युपवासप्रत्याख्यानपारणरीतिर्वृद्धपरम्परया ज्ञातव्या, अधुना केचन श्रद्धाः उपवास कीधु त्रिविहार नमुक्कारसि पुरिमड्ढादिक कीधो चउविहार पच्चक्खाण फासिउं १ पालिउं २ सोहिउं ३ तीरिउं ४ किट्ठिउं ५ आराहिअं ६ जं च नाराहिअं तस्स मिच्छामि दुक्कडं ' इत्यमपि पारयन्तो वृद्ध्यन्ते, तथा नमुक्कारेसि पोरसि पुरिमड्ढादिक कीधु चउविहार एकासणं विआसणु कीधु त्रिविहार चउविहार पच्चक्खाण फासिउं १ पालिउं २ सोहिउं ३ तीरिउं ४ किट्ठिउं ५ आराहिअं ६ जं च नाराहिअं तस्स मिच्छामिदुक्कडं इत्यन्यप्रत्याख्यानपारणरीतिरपि परम्परस्यैव ज्ञेयेति ॥ १४४ ॥

तथा—श्रद्धाः पौषधमध्ये सान्ध्यप्रतिलेखनाकाजकोद्धरणं कदा कुर्वन्तीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—श्रद्धाः पौषधमध्ये सान्ध्यप्रतिलेखनादेशो मार्गयित्वा प्रोञ्छनकं चरवलकं च प्रतिलिख्य यद्येकाशनकं तदा परिधानांशुकं परावृत्य पडिलेहणा पडिलेहावो इत्यादेशमार्गणं विधाय च काजकोद्धरणं कुर्वन्तीति श्रद्धाविधिप्रमुखग्रन्थेषु प्रोक्तमस्ति, पश्चादुपाधिं प्रतिलिख्य काजकं निष्कास्य परिष्ठापयन्तीति परम्पराऽस्तीति ॥ १४५ ॥

तथा—श्राद्धविध्यनुसारेण जलमार्गेण शतयोजनेभ्यः स्थलमार्गेण पष्टियोजनेभ्यश्च समागतानि हरितकयादिवस्तूनि प्रासुकीभवन्ति, तथा लवणमपि प्रासुकं भवति, तथा अहम्मदावादनपिष्वक्तसचित्तवस्तूनि नालिकेरपूणीफलादीनि उग्रसेनपुरादौ गतानि प्रासुकीभवन्ति नवा ? इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—श्राद्धविधिप्रयुतिग्रन्थानुसारेण जलमार्गेण शतयोजनेभ्यः स्थलमार्गेण पष्टियोजनेभ्यश्च समागतानि सर्वोप्यपि वस्तूनि प्रासुकीभवन्ति, परमाचीर्णानि ग्राह्याणि न त्वन्यानि । तथा लवणमग्निष्वक्त्वमेवाचीर्णं, तथा राजनगरनिष्वक्तसचित्तनालिकेरपूणीफलादीनि वस्तूनि उग्रसेनपुरादौ गतानि प्रासुकीभवन्ति, परमनाचीर्णानीति ॥ १४६ ॥

### अथ पालीसङ्घकृतप्रश्नौ तदुत्तरे च ।

तथा—प्रतिमाघरश्राद्धानीताहारं मुनयो गृह्णन्ति नवा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—प्रतिमाघरः स्वार्थानीताहारं ददाति तदा ग्रहीतुं कल्पत इति ॥ १४७ ॥

तथा—श्राद्धा नमस्कारमनानुपूर्व्या गणयन्ति नवा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—श्राद्धानामानुपूर्व्याऽनानुपूर्व्या नमस्कारगणनाधिकारः शास्त्रानुसारेण ज्ञायत इति ॥ १४८ ॥

### अथ मालपुरसङ्घकृतप्रश्नौ तदुत्तरे च ।

तथा—पुञ्जणिक्रया वायुकरणे लाभोऽलभो वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—मुख्यवृत्त्या पुञ्जणिक्रया वायुकरणं ज्ञातं नास्ति, परं गुर्वोदीनां मक्षिकोद्वापनार्थं वायुकरणे लाभोऽस्ति, न त्वलभो, यतो मक्षिकोद्वापन गुरुभाक्तिरेवेति ॥ १४९ ॥

तथा—रात्रौ सकलान्नपानमध्ये सूक्ष्माः तद्रूपा जीवा उत्पद्यन्ते प्रभाते विलयं यान्ति तत्सत्यमसत्यं वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—रात्रौ सम-  
स्त्रान्नपानमध्ये तद्रूपाः सूक्ष्मा जीवा उत्पद्यन्ते प्रभाते च विलयं यान्तीत्येतत् शास्त्रमध्ये क्वापि ज्ञातं नास्तीति ॥ १९० ॥

### अथ ऊणीयारसङ्घकृतप्रश्नौ तदुत्तरे च ।

तथा—दृढकल्पदिने पौषधकरणे लाभः पूजाकरणे वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—मुख्यवृत्त्या पौषधकरणे महान्न लाभः, कारणविशेषे तु  
यथा प्रस्तावो भवति तथा करणे लाभ एवास्ति, यतो जिनशासने एकान्तवादो ज्ञातो नास्तीति ॥ १९१ ॥

तथा—संवत्सरवासरे पूगीफलसहितनाणकप्रभावनां लान्ति नवाः इति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—पूगीफलादिसहितां तथा रहितां वा प्रभावनां  
लान्ति, पश्चाद् यस्मिन् ग्रामे या रीतिस्तदनुसारेण प्रवर्तितव्यमिति ॥ १९२ ॥

### अथ मेदिनीद्रङ्गसंघकृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च ।

तथा—पाक्षिकदिने द्वादशानां चतुर्मासके विंशतेः सांवत्सरिकदिने चत्वारिंशतो लोकोद्योतकराणां कायोत्सर्गः क्रियते, तत्किमिति  
प्रश्नोऽत्रोत्तरं—पाक्षिकादिविसेषु यत्कायोत्सर्गः क्रियते तत्तु प्रतिक्रमणं कुर्वतां यदतीचारशुद्धिर्नाभूत्तदतीचारशुद्धिर्निमित्तं, दिनप्रतिबद्ध-  
सङ्ख्यानियमे त्वाज्ञा प्रमाणमिति ॥ १९३ ॥

तथा—श्रीवीरहोरसूरीणां प्रतिमाग्रे यो देवान् वन्दते स वासक्षेपं कृत्वाऽन्यथा वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—श्रीगुरुप्रतिमाग्रे देवा वन्दिता न  
शुद्ध्यन्ति, यदि च तीर्थकृत्प्रतिमा पट्टदावलोकिता भवति तदा तदग्रे वासक्षेपं कृत्वा देवा वन्दिताः शुद्ध्यन्तीति ॥ १९४ ॥

तथा—चतुर्मासकत्रयाष्टाहिका कुत उपविशतीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सप्तमीत उपविशति, परं पूर्णिमावासरस्तु पर्वतिथित्वात्प्रात्यत  
इति ॥ १५१ ॥

तथा—स्थानकतपोऽष्टकर्मसूडणतपआंनिलवर्द्धमानतपसा मध्येऽस्वाध्यायदिनत्रयं गण्यते नवा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—स्थानकतपोऽष्टक-  
र्मसूडणतपसोर्मध्येऽस्वाध्यायदिनत्रयं न गण्यते, आम्बिलवर्द्धमानतपसो मध्ये गण्यते इति परम्पराऽस्तीति ॥ १५१ ॥

तथा—श्रीआणंदविमलसूरिकृताष्टकर्मतपो यद्युपवसेण कर्तुं न शक्नोति तदाचाम्लेन करोति किंवा नेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—यदि  
सर्वथोपवसकरणशक्तिर्न स्यात् तदाचाम्लेनापि करोतीति ॥ १५३ ॥

तथा—द्वयशतप्रत्याख्यानकर्त्ता वान्तौ जाताया द्वितीयवारं भुङ्क्ते नवा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—तस्मिन्नेव स्थानके स्थिते यदि वान्तिर्भवति  
मुखशुद्धिश्च कृता भवति तदा द्वितीयवारं भोक्तुं कल्पते, नान्यथा इति ॥ १५८ ॥

तथा—श्रीहीरविजयसूरीश्वरप्रसादितद्वादशजल्पपट्टके के द्वादश जल्प्याससन्तीति व्यक्त्या प्रसाद्यामिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—संवत् १६४६ वर्षे  
पौषासित १३ शुक्ले श्रीपचननगरे श्रीहीरविजयसूरिभिर्लिख्यते समस्तसाधुसाध्वीश्रावकश्राविकायोग्यं—श्रीविजयदानसूरिप्रसादीकृत 'सातबोलना  
अर्थ आश्री विंसाद डालवानि काजि ते सातबोलनु अर्थ विवरीनिं लिखिइ छइ, तथा बीजापणि केटलाएक बोल लिखिइ छइ, यथा—परपक्षीनिं कुणि  
किस्युं कठिनवचन न कहिनुं १ ॥ तथा परपक्षीकृतधर्मकार्यं सर्वथा अनुमोदवायोग्य नही इम कुणि न कहनुं, जे माटि दानसचिपणुं दाखिणालुपणुं  
दयालुपणुं प्रियभाषीपणुं इत्यादिक जे जे मार्गानुसारी धर्मकार्य ते जिनशासनयकी अनेरा समस्तजीवसम्बन्धिआ शास्त्रानि अनुसारि अनुमोदवायोग्य  
जणाइ छइ, तो जैनपरपक्षीसम्बन्धी मार्गानुसारी धर्मकर्तव्य अनुमोदवा योग्य हुइ ए वातनुं स्युं कहिनुं २ ॥ तथा—गच्छनायकानिं पूछ्या विना

किसी शास्त्रसम्बन्धिनी नवी प्ररूपणा कुर्णि न करवी ३ ॥ तथा दिग्गम्बरसम्बन्धिनां चैत्य १ केवलश्राद्धप्रतिष्ठितचैत्य २ द्रव्यलिङ्गीनि द्रव्यइ  
 निष्पन्नचैत्य ३ ए त्रिण्यं चैत्यविना बीजा सघलांइ चैत्य वांदावा पूजवा योग्य जाणवां, ए वातनी शङ्का न करवी ४ ॥ तथा स्वपक्षीना घरनी त्रिपइ  
 पूर्वोक्तात्रिणिनी अवन्दीनीक प्रतिमा हुइ ते साधुनि वासक्षेपि वांदावा पूजवा योग्य थाइ ५ ॥ तथा साधुनी प्रतिष्ठा शास्त्रि छइ ६ ॥ तथा साधर्भिक-  
 वात्सल्य करता स्वननादिक सम्बन्धभणी कदाचित्परपक्षीनिं जिमवा तेडइ तु ते माटिं साहमिवत्सल फोक न थाइ ७ ॥ तथा शालोक्तदेशवि-  
 संवादीनिहव सात सर्वविसंवादीनिहव एक ए टाली बीजा कुणनि निहव न कहिवुं ८ ॥ तथा परपक्षी सङ्घाति चर्चानि उदीरणा कुर्णि न करवी  
 परपक्षी कोई उदीरणा करइ तु शास्त्रनइ अनुसारि उत्तर देवो, पणि क्लेश वाधइ तिम न करवुं ९ ॥ तथा—श्रीविजयदानसूरिं बहुजनसमाक्षि जलशरण कीधु  
 जे उत्तमूत्रकन्दकुदालग्रन्थ ते तथा ते माहिलु असंमतअर्थ बीजा कोई शास्त्रमाहिं आप्णु हुइ तु ते अर्थ तिहां अप्रमाण जाणवुं १० ॥ तथा स्वपक्षीय-  
 सार्थनि अयोगिं परपक्षीयसार्थि यात्राकर्या माटिं यात्रा फोक न थाइ ११ ॥ तथा—पूर्वचार्यनिं चारइ जे परपक्षीकृत स्तुतिस्तोत्रादिक कहवातां ते  
 कहातां कुणि ना न कहिवी ॥ १२ ॥ ए बोलथी कोई अन्यथा प्ररूपइ तेहनइ गुरुनो तथा संघनो ठबको सही ॥ अत्र मतानि  
 श्रीविजयसेनसरिमतम्, उपाध्यायश्रीविमलहर्षगणिमतम् १ उपाध्यायश्रीधर्मसागरगणिमतम् २ उपाध्यायश्रीशान्तिचन्द्रगणिमतम् ३ उपाध्यायश्री-  
 कल्याणविजयगणिमतम् ४ उपाध्यायश्रीसोमविजयगणिमतम् ५ पन्न्याससहजसागरगणिमतम् ६ पण्डितकान्हर्षिगणिमतम् ७ एतद्द्वादश-  
 जल्पपट्टके एवंविधा द्वादश जल्पास्तन्तीति ॥ १९ ॥

तथा—राक्षसद्वीपो जम्बूद्वीपेऽस्ति लवणसमुद्रे वा ? स च प्रमाणजुल्लेनोत्सेधाङ्गुलेन वा इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—लवणोदे पयोराशौ, दुर्जयो  
 द्युसदामपि । योजनानां सप्तशतीं, दिक्षु सर्वोसु विस्तृतः ॥ ३१ ॥ राक्षसद्वीप इत्यस्ति, सर्वद्वीपाशिरामणिः । तदन्तरे त्रिकूटाद्रिर्भूमिनाभौ

सुमेखत् ॥ ३२ ॥ महर्द्धिर्वलयाकारो, योजनानि नवोन्नतः । पञ्चाशत् योजनानि, विस्तीर्णोऽस्त्यतिदुर्मदः ॥ ३३ ॥ तस्योपरिष्टात्सौवर्णप्राकार-  
गृहतोरणा । मया लङ्घेति नाम्ना पूरधुनैवास्ति कारिता ॥ ३४ ॥ पङ् योजनानि भूतस्यामतिकम्य विरतनी । शुद्धस्फटिकवप्राङ्का, नानारत्न-  
मयालया ॥ ३५ ॥ सपादयोजनशतप्रमाणा प्रवरा पुरी । मम पाताललङ्घेति, विद्यते चातिदुर्गमा ॥ ३६ ॥ पुरीद्वयमिदं वत्सा—दत्स्व तन्नपतिर्भव ।  
भवत्वधैव ते तीर्थनाथदर्शनज फलम् ॥ ३७ ॥ इत्युक्त्वा राक्षसपतिर्माणिक्यैर्नवभिः कृतम् । ददौ तस्मै महाहारं, सद्यो विद्यां च राक्षसीम् ॥ ३८ ॥  
भगवन्त नमस्कृत्य, तदैव घनवाहनः । आगत्य राक्षसद्वीपे, राजाऽभूद्भक्त्योस्तयोः ॥ ३९ ॥ राक्षसद्वीपराज्येन, राक्षस्या विद्ययापि च । तदादि  
तस्य वशोऽपि, ययौ राक्षससंशताम् ॥ ४० ॥ इति श्रीअजितनाथचरित्रानुसारेण राक्षसद्वीपो लवणसमुद्रेऽस्ति प्रमाणाद्भुलैश्चेति ध्येयम् ॥ ६० ॥

## अथ डुंगरपुरसङ्कृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च ।

यथा—सन्ध्याप्रतिक्रमणे सामागिकोच्चारानन्तर स्वाध्यायनमस्कारत्रय कथयित्वा वन्दनकप्रत्याख्यानमुखवस्त्रिका प्रतिलिख्यते सा क्षमा-  
श्रमण दत्त्वा प्रतिलिख्यते ? किं वा क्षमाश्रमण विना ? , तथा सा किं कथयित्वा प्रतिलिख्यत इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सामायिकं कृत्वा बेसणे  
संदिप्तौ प्रमुखक्षमाश्रमणचतुष्टयं दत्त्वा नमस्कारत्रयं कथयित्वा क्षमाश्रमणपूर्वकं ‘ इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! मुहपत्नी पडिलेहु ’ इत्यादेश-  
पूर्वं मुखवस्त्रिकां प्रतिलिख्य वन्दनकद्वयं च दत्त्वा प्रत्याख्यानं कर्तव्यमिति ॥ ६१ ॥

तथा—शत्रुञ्जयस्तोत्रमध्ये शाम्बप्रद्युम्नाभ्या सहाष्टौ कोटयः सिद्धाः कथितास्सन्ति, केचन सार्द्धकोटित्रय कथयन्त्यत्र निर्णयः  
प्रसाद्य इति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—श्रीशत्रुञ्जयमाहात्म्यानुसारेण श्रीशत्रुञ्जये शाम्बप्रद्युम्नाभ्यां सह सार्द्धकोटित्रय सिद्धमिति ज्ञायते ॥ १६२ ॥

तथा—स्नात्राविधौ ‘अठसहस्सचउसठिजुअपंचवरणकलसेहि’ इत्युक्तम् अन्तवाच्यमध्ये त्वेका कोटिः षष्टिलक्षाश्च कलशानामित्युक्तं तत्कथं सङ्गच्छते इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—अन्तर्वाच्यमध्ये एका कोटिः षष्टिलक्षाश्च कलशानामित्युक्तं तत्स्थाप्यरूपतया सम्भाव्यते, तेभ्यः पानीयं भूत्वा स्नात्रकरणार्थं तु चतुष्पष्ट्याधिकाष्टसहस्रकलशाः कथितास्सन्तीति सम्भाव्यते, तस्मादुभयमपि सङ्गच्छत इति ॥ १६३ ॥

तथा—वासुदेवबलेवमातरः सप्त चतुरश्र स्वस्मान् यथाकर्म पश्यन्ति तेषां कानि नामानीति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—सिंह १ सूर्य २ कुम्भ ३ समुद्र ४ श्री ५ रत्नराश्य ६ शि ७ रूपाणि नामानि, गज १ पद्मसर २ श्वन्द्र ३ वृषभलक्षणानि ४ नामानि च परम्परया ज्ञेयानीति ॥ १६४ ॥

### अथ उदयपुरसङ्घृतप्रश्नास्तदुत्तराणि च ।

यथा—चतुर्दशपूर्वधारिणो जवन्यतो लान्तकदेवलोक्रं यावद् यान्ति, कार्तिकश्रेष्ठिजीवस्तु चतुर्दशपूर्व्यपि सौवर्गमदेवलोक्रं गतस्तत्र को हेतुरिति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—तत्र पूर्वविस्मृतिरेव हेतुः सम्भाव्यत इति ॥ १६५ ॥

तथा—कश्चित्प्रातः कृतनमस्कारिकासहितप्रत्याख्यानः प्रतिलेखनायां त्रिविधाहारप्रत्याख्यानं करोति, स सन्ध्याया किं प्रत्याख्यानं विदधातीति, प्रश्नोऽत्रोत्तरं—एकाशनादिप्रत्याख्यानी विहितप्रतिलेखनात्रिविधाहारप्रत्याख्यानी च सन्ध्यायां पानकाहारप्रत्याख्यानं करोति, अकृत-प्रतिलेखनात्रिविधाहारप्रत्याख्यानस्तु चतुर्विधाहारप्रत्याख्यानं करोतीति परम्परास्ति ॥ १६६ ॥

तथा—त्रिकालपूजाकरणे प्रभाते मालादि निर्माल्यमपास्य सर्वस्नानेन वासपूजा क्रियतेऽन्यथा चेति ? प्रश्नोऽत्रोत्तरं—प्रभाते पुष्पमालादि निर्माल्यमनपास्य श्राद्धा वासपूजा कुर्वन्तो दृश्यन्ते, सर्वस्नानकरणेऽप्येकान्तो ज्ञातो नास्ति, हस्तपादप्रक्षालनेन शुद्धयतीति ॥ १६७ ॥



तथा—श्रद्धा दन्तधावनं कृत्वैव देवपूजा कुर्वन्त्यन्यथा वेति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—‘शुचिः पुष्पाभिषेक्तोत्रै’रिति योगशास्त्रादिवचनान्मुख्य-  
वृत्त्या दन्तधावनं कृत्वैव देवपूजा कुर्वन्ति, पौषधोपवासादि कर्तुं कामाश्च दन्तधावनं विनापि देवपूजा कुर्वन्ति, प्रत्याख्यानस्य बहुफलत्वा-  
दिति ज्ञायते ॥ १६८ ॥

तथा—‘विहारो जिनसद्वनी’तिवचनात् श्रीहीरगुरोः प्रतिमामन्दिरस्य हीरविहार इति नाम कथं दत्तमिति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—विहारो  
बौद्धाद्याश्रय इति प्रश्रव्याकरणप्रथमाश्रवद्वारद्वत्तौ विहाग विचित्रक्रीडास्तैरिति प्रश्नव्याकरणचतुर्थश्रवद्वारद्वत्तौ इत्यादिग्रन्थाक्षरानुसारेण

बौद्धाद्याश्रय इति प्रश्रव्याकरणप्रथमाश्रवद्वारद्वत्तौ विहाग विचित्रक्रीडास्तैरिति प्रश्नव्याकरणचतुर्थश्रवद्वारद्वत्तौ इत्यादिग्रन्थाक्षरानुसारेण  
श्रीहीरगुरुप्रतिमाप्रासादस्य श्रीहीरविहार इति नाम दत्तमिति ॥ १६९ ॥

तथा—“सुहिण्डु अ दुहिण्डु अ, जा मे अस्संजणसु अणुक्कंपा । रागेण व ठेसेण व तं निदे त च गरिहामि” ॥ १ ॥ एतद्वाक्याख्यान  
प्रसाद्यम् इति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—साधुष्विति विशेष्यमनुक्तमपि संविभागवत्प्रस्तावादध्याहार्यं, ततः साधुषु कीदृशेषु ?—सुष्ठु हितं—ज्ञानादित्रयं येषां  
ते सुहितास्तेषु, पुनः कथम्यभूतेषु ?—दुःखितेषु रोगेण तपसा वा ग्लानीभूतेषु उपाधिरहितेषु वा, पुनः कीदृशेषु ?—न स्वयं—स्वच्छन्देन यता—उद्यता  
अस्वयतास्तेषु गुर्वाज्ञैव विहरत्सु इत्यर्थः, या मया कृताऽनुकम्पा—कृताऽन्नपानवस्त्रादिदानरूपा भक्तिः, अनुकम्पाशब्देनात्र भक्तिः सूचिता-  
यथोक्तं—“आयिरिअणुक्कंपाए गच्छो अणुक्कंपिओ महाभागो । गच्छणुकपणाए अब्बुच्छित्ती कया तित्ये ॥ १ ॥ रागेण—स्वजनमित्रादिप्रेम्णा  
न तु गुणवत्त्वबुद्ध्या, तथा द्वेषेण—इह द्वेषः साधुनिन्दाख्यो, यथा धनधान्यादिरहिता ज्ञातिजनपरित्यक्ताः क्षुधात्ताः सर्वथानिर्गता अपी  
उपपृष्टम्भार्हाः इत्येवं निन्दापूर्वं याऽनुकम्पा साऽपि निन्दैव, अशुभदीर्घायुष्कहेतुत्वाद्, यदागमः—‘तहारूवं समणं वा माहणं वा संजयविरयपहि-  
हयपच्चक्खायपावकम्भं हीलित्ता निदित्ता खिसित्ता गरिहत्ता अवमन्नित्ता अमणुक्केणं अपीइकारगेणं असणपाणखाइमसाइमेणं पडिलाभित्ता असुह

दीहाउअंचाए कम्मं पगरेइत्ति । यद्वा—सुखितेषु दुःखितेषु वा असंयतेषु—पार्श्वस्थादिषु, शेषं तथैव, परं द्वेषेण ‘दगपाणं पुप्फफलं, अणेसणिज्जा’-मित्यादितत्तदोषदर्शनान्भत्सरेण, अथवा असंयतेषु—षड्विधजीविषधक्केषु कुलिङ्गिषु, रागेण एकदेशग्राभगोत्रोत्पत्त्यादिप्रीत्या द्वेषेण जिनप्रवचन-प्रत्यनीकतादिदर्शनेत्येन । ननु प्रवचनप्रत्यनीकोद्देशनिमेव कुतः?, उच्यते, तद्भक्तभूषण्यदिभयात्, तदेवंविधं दानं निन्दामि गृहे च, यत्पुनरौचित्येन दीनादीना तदप्यनुकम्पादानम्, यतः—“कूपणेऽनाथदरिद्रे व्यसनप्राप्ते च रोगशोकहृते । यद्दीयते कृपार्थं, अनुकम्पा तद्भवेद्दानम् ॥१॥” समर्पदेहस्यापि प्रार्थनाकारिणो दरिद्रप्रायत्वादनुकम्पादानं, तच्च न निन्दार्हं, जिनेन्द्रैरपि वार्षिकदानावसरे तस्य दर्शितत्वात्, उक्तं च—‘इयं भोक्षफले दाने, पात्रापात्रविचारणा । दयादानं तु सर्वज्ञैः, कुत्रापि न निषिद्धयते । १ ।’ तथा—“दानं यत्प्रथमोपकारिणि न तत्प्रायः स एवाप्यते, दीने याचनमूल्यमेव दयिते तर्हि न रागाश्रयात् । पात्रे यत्फलविस्तरप्रियतया तद्द्वार्षिकं न किं, तद्दानं यदुपेत्य निःस्पृहतया क्षीणे जने दीयते” ॥ १ ॥ इति गाथार्थो ज्ञेयः ॥ १७० ॥

तथा—विनीतानगर्या अष्टापदः कति योजनानीति प्रश्नोऽत्रोत्तरं—विनीताया द्वादशयोजनान्यष्टापद इति प्रघोषः श्रुतोऽस्तीति ॥ १७१ ॥

## अथ ग्रन्थप्रशस्तिः ।

श्रीआणंदविमलगुरुपदे श्रीविजयदानसूरिवराः । श्रीमच्चन्द्रगणाम्बरदिनमणयो जगति विजयन्ते ॥ १ ॥ तत्पट्टपूर्वपर्वतदिवाकरा नृपतिबोधनप्रवणाः । श्रीहीरविजयसूरीश्वरा जयन्ति प्रकटमहसः ॥ २ ॥ श्रीहीरसूरीश्वरवाग्बिलासादककब्बरो बब्बरवंशजन्मा । बभूव जीवाभय-

दानदाता, राजपिबत् द्वादशसूत्रेण ॥ ३ ॥ हंसोश्चद्विजराजकेकिमहिषेभादिस्त्वयानवानात्, ब्रह्मेशानमुरारिपण्मुत्र्यमप्राचीशमुख्याः सुराः । वाचाऽद्वैत-  
 कृपासुधाजलनिधेः सूर्यशिशुः क्षमाभुजः, श्रुत्वा जीवदयानिदानपटहात्प्रीतिं परा लेभिरे ॥ ४ ॥ कस्त्वं ? पापः कुशाङ्गः कथमजनि भवान् ? मे जनन्या  
 वियोगः, का माता ते ? वियोगः कथमजनि तथा ? मारिनाम्नी मदम्बा । नीता सा सौरिस्रस्त्र स्फुटतमवचसा साहिना हीरसूरः, क्व स्याता ?  
 हीरसूरैर्वचनमवितथं यो न मन्येत तस्मिन् ॥ ५ ॥ अमासभोक्ता मृताभोक्ता, नृदुःखहर्त्ता करमुक्तिहर्त्ता । अक्लब्धरो येन कृतो महीशस्तस्मै नमः  
 श्रीगुरुहीरसूरये ॥ ६ ॥ प्रीतेरक्लब्धरूपेण सभासमक्षं, दत्त जगद्गुरुहिरं विरुद्धं मुनीन्द्रोः । मार्त्तण्डमण्डलमिव प्रभुहीरसूरैर्जातं प्रसिद्धमखिलेऽपि  
 महीतिले तत् ॥ ७ ॥ पुस्तकभाण्डागार प्राज्ञेन्द्रोः पद्मसुन्दरारूपस्य । श्रीहीरविजयसूरिक्षोणीन्द्राणा ददे येन ॥ ८ ॥ शत्रुञ्जयोजयन्तक-  
 तीर्थादिषु कारिता च करमुक्तिः । आमरुकरकरमखिल, जगदरुकर कारितं येन ॥ ९ ॥ कालिमकृति कलिफले कालेऽभूत् कालिमा मनाग् नास्य । प्रत्युत  
 स एव येन स्वयशस्सुधया शुचीचक्रे ॥ १० ॥ अक्लब्धरः साधुजनस्य नेता, सूरिः पुनस्साधुजनस्य नेता । परापकर्त्ता प्रथमो द्वितीयः, परोपकर्त्ता  
 तु तदत्र चित्रम् ॥ ११ ॥ अहो हीरस्य माहात्म्यं, वर्ण्यते किमतः परम् ? । मुक्तानामप्यलङ्कारकारण यो विराजते ॥ १२ ॥ यः सकलसूरि-  
 चक्रे चक्रे रेखा विशेषचरणगुणैः । तच्छिष्यः शुभविजयः प्रश्नोत्तरसंग्रहं कृतवान् ॥ १३ ॥ श्रीसिद्धान्तप्रकरणटीकाभाष्यानुसारतः किञ्चित् ।  
 किञ्चिच्च परम्परया सम्भावनया तथा किञ्चित् ॥ १४ ॥ प्रश्नोत्तरसंग्रहाख्ये, ग्रन्थे प्रश्नोत्तरादिक सकलम् । श्रीविजयसेनसूरिप्रसादितं तन्मया  
 ग्रथितम् ॥ १५ ॥ युगम् ॥ सिद्धान्तवादिविरुद्धं यत्किञ्चिद् गुम्फितं मतिभ्रान्त्या । तत्सर्वं संशोध्यं कविभिः स्वधिया कृपापरया ॥ १६ ॥  
 यापन्मेरुमहीपीठे, जैनं तिष्ठति शासनम् । तावत्तिष्ठतु ग्रन्थोऽयं, वाच्यमानो वचस्विभिः ॥ १७ ॥

इति भूरिसूत्रिकोटीरहीरसकलमहीमण्डलाखण्डपातसाहस्रीअरुवरप्रतिबोधविधानधीरतत्प्रदत्तजगद्गुरुविरुद्धधरणधीरसत्त्ववान्  
प्रतिवर्षं षण्मासावधि समस्तजन्तुजाताभयदानप्रदानदानशौण्डीरश्रीशत्रुञ्जयोज्जयन्तकादिकतीर्थकरमुक्तियुक्तिप्रवीर (अष्ट इत्यनेकार्थ-  
नाममालायां ) जीजीआख्यदण्डादिविषमभूमिभञ्जनसीरकलिकालत्रिकालवित्समानामानमहिमतपागच्छाधिराजभट्टारकपुरन्दर  
भट्टारकश्री ५ श्रीहीरविजयसूरीश्वरपट्टालङ्कारहारभट्टारकश्रीविजयसेनसूरीशप्रसादीकृतमशोचरसङ्ग्रहे तत्पट्टपूर्वशेखरिशिखरसहस्र-  
किरणायमानआचार्यश्रीविजयदेवसूरीणामनुशिष्टया भट्टारकश्रीहीरविजयसूरीन्द्रशिष्यतर्कभापावार्त्तिरु १ काव्यरूपलतामकरन्द-  
२ स्याद्वादभाषासूत्र ३ तद्दृष्टि ४ काव्यकल्पलतावृत्त्यादि ५ ग्रन्थनिष्पादकपण्डितशुभविजयगणिसङ्गृहीते प्रश्नोत्तररत्नाकरापरनास्त्रि  
श्रावककृतप्रश्नाख्यश्रुतुर्थोल्लासः सम्पूर्णः ॥

॥ इति अष्टि देवचन्द्र लालभाई-जैनपुस्तकोदारे-ग्रन्थाङ्कः ५१ ॥

इति श्रीविजयसेनसूरीशमसादितश्रीशुभविजयगणिसङ्कलितप्रश्नोत्तरमयः

प्रश्नोत्तररत्नाकराख्य सेनप्रश्नः समाप्तः ।

इति श्रेष्ठि देवचन्द्र लालभ्रातृ-जैनपुस्तकोद्धार-ग्रन्थाङ्कः ५१.

